CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

5029

॥ श्री वीतरागाय नमः ॥

श्री वीतराग विज्ञान साहित्य प्रकाशन समिति उत्तर प्रदेशीय
मुमुक्षु मंडल का पुष्प नं० ५

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

[पाँचवाँ भाग]

10.6

प्रकाशक

श्री दिगम्बर जैन स्वाध्याय मण्डल
देहरादून-आगरा

पुस्तक प्राप्ति स्थान

नेमचन्द जैन
जैन बन्धु
पलटन बाजार,
देहरादून (यू० पी०)

पदमचंन्द जैन सर्राफ
चैतन्य विलास ३/२०,
महात्मा गांधी रोड,
आगरा-२

दूसरी बार ५०००
भगवान महावीर के पच्चीससौवें
निर्माण महोत्सव के अन्तर्गत प्रकाशित

मूल्य लागत मात्र
रु० २-५०

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान महावीर के पच्चीससौवें
निर्वाण महोत्सव के अन्तर्गत प्रकाशित
श्री वीतराग विज्ञान सहित्य प्रकाशन समिति
उत्तर प्रदेशीय मुमुक्षु मंडल का पुण्य नं० ५

जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला

पांचवा भाग

दूसरा सँस्करण

प्रकाशक:

वीतराग विज्ञान साहित्य प्रकाशन समिति
उत्तर प्रदेशीय मुमुक्षु मंडल

मूल्य लागत मात्र २-५०

पुस्तक प्राप्ति स्थान

(१) नेमचन्द्र जैन
जैन बंधु
पलटन बाजार
देहरादून (यू.पी.)

(२) पदमचन्द्र जैन सर्राफ
चैतन्य विलास
३/२० महात्मा गाँधी रोड
आगरा—२

केवल मुद्रक : बी० एम० इलैक्ट्रिक प्रेस, अलीगढ़।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला पाँचवा भाग की

प्रस्तावना

हमारे महान भाग्योदय से प्रथमबार आगरा नगर में पं० श्री कैलाशचन्द्र जी बुलन्दशहर वालों का आगमन हुआ। अध्यात्म की चर्चा एक वार पुनः जाग्रत हुई, पं० जी के प्रवचन शिक्षण लगातार तीन मास तक धाराप्रवाही रूप में चलते रहे, तथा प्रत्येक प्रवचनों में आपने जैन धर्म के महान् शास्त्रों में से मय गाथाओं के प्रमाण आदि दिये। पं० जी की स्मरण शक्ति इतनी विशाल है कि कैसा भी प्रश्न जटिल हो फौरन ही शास्त्राधार से निर्णय करा देना ऐसा किसी ही विद्वान में पाया जाता है।

संसारी जीव सुख के लिए ही अनेकानेक उपाय करता है परन्तु सुख का वास्तविक्र लक्षण पता न होने से भ्रम से सुख की खोज करता हुआ भी दुःखी ही रहता है। भ्रमजनित उपाय को दूर करने का एक मात्र उपाय तत्त्व ज्ञान पूर्वक वस्तुस्वरूप का निर्णय करना ही है और तत्त्व निर्णय किस प्रकार से हो, इसी का निर्देशन पं० जी ने अपनी पुस्तिका में नोट कर रक्खा था। इस पुस्तक के पूर्व चार भाग श्री दिगम्बर जैन मुमुक्षु मण्डल देहरादून के मुमुक्षु भाई-बहिनों एवं श्री नेमचन्द्र जी ने छपाया और हमारे स्वाध्याय मण्डय आगरा के सभी मुमुक्षु भाई-बहिन उनके बहुत आभारी है कि जिनकी सद्प्रेरणा से हमको यह भाव जाग्रत हुए कि बाकी की दो पुस्तिका जो पं० जी के पास नोट हैं यहां से प्रकाशित हो जाये तो आत्म कल्याण करने वाले मुमुक्षुओं को जो भी तत्त्व ज्ञान में आशंका होती हो, शीघ्र ही निर्णय करके स्वभाव सन्मुख हो, इसी हेतु से पं० जी से सभी ने प्रार्थना की और बड़े हर्ष की बात है कि उन्होंने हमारी विनती पर ध्यान देकर स्वीकारता दी, हम सब उनके चिरऋणी रहेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भव के अभाव की बात का सिंहानाद करने वाले अध्यात्म के महान् सन्त धर्मात्मा सम्यक्‌दृष्टि सत्पुरुष श्री कानजी स्वामी है। जिन्होंने महान् करुणा करके हम जैसे पामर प्राणियों में जो भगवान पने की शक्ति विराज रही थी और हमने मात्र पर पदार्थों में मोहित होकर अपने निज भगवान को भूल ही गये थे, स्मरण कराके सही सम्यक् मार्ग पर लगा दिया, उनके बारे में क्या कहें, क्या लिखें ? न तो कहने में आ सकती हैं, नाहीं लेखन में ही आ सकती है, वाणी और लेखनी ते परे हैं, अनन्त है उपकार जिनका, निकट भविष्य में हम सब सिद्ध दशा में मिलें यही भावना है, यही कामना है, और एकमात्र यही अभिलाषा है।

इस पुस्तक में श्रीमान् पं० प्रवर, श्री रामजी भाई दोशी एवं श्रीमान् पं० श्री खेमचन्द्रजी भाई के प्रवचनों एवं शिक्षण के अनेकानेक दृष्टान्त हैं, कार्य-कारण की स्वतन्त्रता, निमित्त उपादान की वार्ता निश्चय-व्यवहार एवं उपादान—उपादेय की वार्ता को बहुत सरल तरीके से बताया हैं; धर्म से परान्मुख जीवों को धर्म की बात सरलता से समझाई गयी है। ताकि पात्र जीव शीघ्र ही धर्म के मर्म को समझ सकें। आचार्य पद्मनन्दी ने पंचविशतिका में लिखा है, वे धन्य है वे लोग जो तत्व की बात प्रसन्न चित्त से सुनते हैं; अल्पकाल में निर्वाण को प्राप्त होंगे।

निवेदक—

पदमचन्द जैन सर्राफ
समस्त स्वाध्याय मण्डल
के सदस्यगण, आगरा

ता० १४-१-७४

वीर नि० सं० २५००

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकासकीय दूसरी आवृत्ति का निवेदन

प्रथम आवृत्ति बहुत शीघ्र बिक जाने से, दूसरी आवृत्ति की धर्म जिज्ञासुओं द्वारा बहुत माँग रही है अत: जिन दर्शन के रहस्य को स्पष्ट करने वाली अपनी विशेषता को लिए हुए यह जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नामाला की दूसरी आवृत्ति है।

श्रीमान् माननीय श्री खेमचन्द जी भाई, माननीय श्री बाबू भाई चुन्नीलाल मेहता तथा पं० कैलाश चन्द्र जी ने अपना अमूल्य समय देकर ग्रन्थ के संरक्षण में पूरा योगदान दिया है। हम सब मुमुक्षु इन सबके हृदय से अत्यन्त आभारी हैं।

निवेदक

(१) नेमचन्द्र जैन देहरादून (२) पदमचन्द्र जैन सर्राफ, आगरा
श्री वीतराग विज्ञान साहित्य प्रकाशन समिति,
उत्तर प्रदेशीय मुमुक्षु मंडल

भूमिका

अनादि काल से परमगुरु सर्वज्ञदेव, अपरगुरु गणधरादि ने जिस वस्तु स्वरूप का वर्णन किया है, वही वस्तु स्वरूप वर्तमान में पूज्य श्री कानजी स्वामी बतला रहे हैं। उसी वस्तु स्वरूप का ज्ञान हर वर्ष कक्षाओं द्वारा श्री रामजी भाई तथा श्री खेमचन्द्र जी भाई कराते रहे हैं। उन सबके द्वारा विवेचित वस्तु स्वरूप जो मेरे ज्ञान में आया उसे में सदैव प्रश्नोत्तरों के रूप में लेख बद्ध करता रहा हूँ। धीरे धीरे सरल प्रश्नोत्तरों के रूप में समस्त जैन शासन का सार लेखबद्ध हो गया।

मेरे विचार में सत्य बात समझ में ना आने का मुख्य कारण जिनेन्द्र देव की आज्ञा का पता ना होना और जिनागम का रहस्य दृष्टि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में ना आने से अपनी मिथ्याबुद्धि के अनुसार शास्त्रों का मिथ्या अभ्यास करना हैं। जिसके फल स्वरूप अज्ञानी जीव स्वयं को मिथ्याबुद्धि से संसार मार्ग का आचरण करते हैं। वस्तुत: किसी भी जैन शास्त्र का स्वाध्याय करने से पूर्व यदि निम्न प्रश्नोत्तरों का मनन कर लिया जाये तो शास्त्रों का सही अर्थ समझने में सुविधा रहेगी तथा संसार मार्ग से बचने का अवकाश रहेगा।

उ० १—चारों अनुयोगों के प्रत्येक वाक्य में से चार बातें कौन कौन सी निकालनी चाहिए ?

उ०—(१) जिन, जिनवर और जिनवरवृषभ क्या कहते हैं ? (२) जिन, जिनवर और जिनवर वृषभों के कथन को सुनकर ज्ञानी क्या करते हैं ? (३) मिथ्यादृष्टि पात्र भव्य जीव क्या करता है ? (४) मिथ्यादृष्टि अपात्र जीव क्या करता है ?

प्र० २—किसी भी अनुयोग का एक वाक्य लेकर चार बातें स्पष्ट कीजिए ?

उ०—(१) जिन, जिनवर और जिनवर वृषभों ने कहा है कि "अनादिनिधन वस्तु न्यारी न्यारो अपनी अपनी मर्यादा लिए परिणमें है; कोई किसी का परिणमाया परिणमता नाहीं, किसी को परिणमाने का भाव मिथ्यादर्शन है" इससे पता चल जाता है कि सम्पूण ज्ञानियों का एक ही मत है। (२) इस वाक्य का रहस्य ज्ञानी जानता है, वह अपने में स्थिरता करके श्रेणो मांडकर क्रम से सिद्धशाकी प्राप्ति कर लेता है। (३) अज्ञानी पात्र भव्यजीव अपनी भूल जानकर भूल-रहित स्वभाव का आश्रय लेकर ज्ञानी बनकर ज्ञानी की तरह क्रम से सिद्धदशा की प्राप्ति कर लेता हैं, (४) अज्ञानी अपात्र जीव इनका विरोध करके मिथ्यात्व की पुष्टि करके निगोद में चला जाता है।

प्र० ३—किस किस बात का निर्णय करके शास्त्राभ्यास करें, तो कल्याण का अवकाश है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—(१) व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध एक द्रव्य का उसकी पर्याय में होता है, दो द्रव्यों में व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध कभी भी नहीं होता। (२) अज्ञानी का व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध शुभाशुभ विकारी भावों के साथ कहो तो कहो, परन्तु पर द्रव्यों के साथ तथा आठकर्मों के साथ तो व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध किसी भी अपेक्षा नहीं; (३) ज्ञानी का शुद्ध भावों के साथ व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध है द्रव्यकर्म नोकर्म और भाव कर्म का व्यवहार से ज्ञेय-ज्ञायक सम्बन्ध है; (४) मैं आत्मा व्यापक और शुद्धभाव मेरा व्याप्य है ऐसा विकल्प भी रहेगा तो धर्म की प्राप्ति नहीं होगी; (५) मैं अनादिअनन्त एकरूप भगवान हूँ और मेरी पर्याय में मेरी मूर्खता के कारण एक समय का बहिरात्मपना है; ऐसा जानकर अनादि अनन्त एकरूप स्वभाव की दृष्टि करे तो संसार का अभाव हो जाता है। इन पाँच बातों का निर्णय करके शास्त्राभ्यास करे तो कल्याण का अवकाश है।

प्र० ४—शास्त्रों में जहाँ दो द्रव्यों को मिलाकर, दो गुणों को मिलाकर तथा दो पर्यायों को मिलाकर निरूपण किया हो वहाँ क्या समझना चाहिए ?

उ०—यह उपचार से कथन किया है। इसका अर्थ "ऐसा है नहीं, निमित्तादिक की अपेक्षा कथन किया है" ऐसा जानना चाहिए।

प्र० ५—कैसा जाने-माने तो सम्पूर्ण दुःख का अभाव हो ?

उ०—जैसा पदार्थों का स्वरूप है वैसा ही श्रद्धान-ज्ञान-आचरण करे तो सम्पूर्ण दुःख का अभाव हो।

प्र० ६—पदार्थों का स्वरूप कैसा है, जिसके श्रद्धान-ज्ञान-आचरण से सम्पूर्ण दुःख का अभाव हो जाता है ?

उ०—जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म-अधर्म-आकाश

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक-एक और लोक प्रमाण असंख्यात कालद्रव्य हैं, प्रत्येक द्रव्य में अनन्त अनन्त गुण हैं; प्रत्येक गुण में एक-एक समय में एक पर्याय का उत्पाद, एक पर्याय का व्यय और गुण ध्रौव्य रहता है; ऐसा प्रत्येक द्रव्य के प्रत्येक गुण में हो चुका है, हो रहा है और होता रहेगा। इसके जानने-मानने और आचरण करने से सम्पूर्ण दुःख का अभाव तुरन्त हो जाता है।

प्र० ७—आगम के प्रत्येक वाक्य का मर्म जानने के लिए क्या जानकर स्वाध्याय करे ?

उ०—चारों अनुयोगों के प्रत्येक वाक्य में शब्दार्थ, नयार्थ, मतार्थ, आगमार्थ और भावार्थ निकालकर स्वाध्याय करने से आगम का रहस्य समझ में आ सकता है।

प्र० ८—किसके समागम में रहकर तत्व का अभ्यास करना चाहिए ?

उ०—जैसे हीरे जवाहरात की दुकान का कार्य उस कार्य को भलीभाँति जानने वाला ही चला जा सकता है; उसी प्रकार जिन धर्म के रहस्य का वक्ता ज्ञानी ही हो सकता है; इसलिए ज्ञानियों के समागम में रहकर ही तत्त्व का अभ्यास करना चाहिए।

प्र० ९—ऐसा कहाँ लिखा है कि ज्ञानियों के समागम में रहकर अभ्यास करना चाहिए ?

उ०—पं० टोडरमल जी ने मोक्षमार्गप्रकाशक पृष्ठ १७ में लिखा है कि विशेष गुणों के धारी वक्ता का संयोग मिले तो बहुत भला है ही और ना मिले तो श्रद्धानादिक गुणों के धारी वक्ताओं के मुख से ही शास्त्र सुनना। इस प्रकार के गुणों के धारक मुनि अथवा श्रावक सम्यग्दृष्टि उनके मुख से शास्त्र सुनना योग्य है।

प्र० १०—किसका सहवास नहीं करना चाहिए ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—पाहुड़ दोहा २०वें दोहे में लिखा है कि "विष भला, विष-धर सर्प भला, अग्नि या बनवास का सेवन भी भला; परन्तु जिन धर्म से विमुख ऐसे मिथ्यात्वियों का सहवास भला नहीं।"

प्रत्येक प्रश्न व उत्तर जैन शास्त्रों से लिये गये हैं और साथ ही स्थान-स्थान पर शास्त्रों उल्लेख भी किया है। पूरा प्रयत्न किया गया है कि कोई अशुद्धि न रह सके, फिर भी यदि कोई अशुद्धि रह गई हो तो उसके लिए पात्र जीवों से क्षमा चाहता हूं।

निवेदक—

कैलाशचन्द्र जैन

c/o आजाद ट्रेडिंग कम्पनी जैनमन्दिर के नीचे

बुलन्दशहर (यू. पी.)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वस्तु स्वरूप समझने का सरल उपाय

पाँच बोल	नौ पदार्थ	चार काल	पाँच भाव	सुखदायक दुःखदायक	हेय, ज्ञेय उपादेय
संयोग	अजीव	अनादि अनन्त	×	×	ज्ञेय
संयोगी भाव	आस्रव-बंध पुण्य-पाप	अनादिसांत	औदयिक भाव	दुःखदायक	हेय
स्वभाव त्रिकाली	जीव	अनादि-अनन्त	पारिणामिक भाव	परम सुखदायक	परम उपादेय (आश्रय करने योग्य)
स्वभाव के साधन	सम्वर निर्जरा	सादिसांत	औपशमिक, धर्म का क्षायोपशमिक क्षायिकभाव	एकदेश सुखदायक	एकदेश उपादेय (प्रगटकरने योग्य)
सिद्धत्व	मोक्ष	सादिअनन्त	पूर्णक्षायिक भाव	पूर्णदेश सुखदायक	पूर्णदेश उपादेय (प्रगट करने योग्य)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुख्य विषय

पाठ नम्बर			पृष्ठ नम्बर
	मंगलाचरण	...	१
१	समयसार का प्रथम कलश	...	२
	पांच नमस्कार	...	४
	अपनी महिमा कैसे आवे ?	...	६
२	जैसीमति, वैसीगति का रहस्य	....	१०
	निगोद का क्या कारण हैं ?	...	१६
३	प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान का स्वरूप	....	२५
४	भगवांन आतमा की छह बोलों की सिद्धि	...	३६
	शुभभावों को शास्त्रों में क्या क्या कहा है ?	....	४५
	अपना विस्मय कैसे आवे ?	....	४९
	आत्मा का पर के साथ सम्बन्ध नहीं	...	५४
५	समयसार गा० १४ तथा कलश १० का रहस्य	...	६०
	सम्यग्दर्शन होते ही आठ कर्मों का अभाव कैसे हो ?	...	६२
	पंच परावर्तन का स्वरूप	...	६६
	मिथ्यात्व क्या है ?	...	६९
	सम्यग्दर्शन होते ही संसार के कारणों का अभाव कैसे ?	...	७२
६	ज्ञानज्ञेय की भिन्नता	....	७६
	शास्त्र में व्यवहार कथन किस प्रकार के होते हैं ?	...	८०
७	निश्चय स्तुति [समयसार गा. ३१]	...	८७
८	मुनि के स्वरूप का स्पष्टी करण	...	९४
	मुनि नग्न ही क्यों होना चाहिए ?	....	९६
	मुनि को कैसा विकल्प आता है, कैसा नहीं आता ?	...	१००
	ब्रह्म विलास में २७८ कवित्त में क्या बताया है ?	...	१०२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाठ नम्बर			पृष्ठ नम्बर
	मुनि के विषय में रत्नकरण्ड श्रावकाचार में क्या बताया है ?	...	१०३
	मुनि के विषय में कुन्द कुन्द भगवान ने क्या कहा है ?	...	१०४
	मुनि पद लेनें का क्रम क्या है ?	...	१०५
	मुनि शब्द किस किस को लागू पड़ता है ?	...	१०८
९	अष्ट द्रव्य से भगवान की पूजा क्या है ?	...	१११
१०	समयसार गा. १६० का रहस्य	...	१४६
	आत्म हित साधने के लिए किसकी आवश्यकता नही है ?	...	१४७
	समयसार कलश २११ का रहस्य	...	१५०
	२११ कलश के समझने वाले को तीन प्रश्न कैसे २ नहीं उठते हैं	...	१५३
११	प्रवचनसार ९३ वीं गाथा का रहस्य	...	१५७
	महा सिद्धान्त क्या है ?	....	१५९
	द्रव्यदृष्टि सो सम्यग्दृष्टि, पर्याय दृष्टि सो मिथ्यादृष्टि	...	१६३
	५० वें कलश का रहस्य	...	१६५
	ज्ञानी शब्द के कितने अर्थ है ?	...	१६७
	समयसार १०० वीं गाथा के चार बोल	....	१६८
१२	सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति का उपाय	...	१७०
	समयसार गा. ३८ का रहस्य	...	१७०
	समयसार गा. ७३ का रहस्य	...	१७२
	प्रवचन सार गा. १९२ का रहस्य	...	१७२
	नौ प्रकार के पक्ष का भेद विज्ञान किस प्रकार ?	...	१७५
१३	निश्चय व्यवहार को समझने की कुंजी	...	१८१
१४	जीव को धर्म प्राप्ति का पात्र कब कहा जा सकता है ?	...	२०३

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ नम्बर

पाठ १४—वीतराग विज्ञान प्रश्नोत्तरी

क्या जीव मेहनत करता है, तब संयोग रुपया आदि का सम्बन्ध होता है ? ... २१६
शास्त्राभ्यास किस लिए और कैसे करना चाहिए ? ... २१९
जैन धर्म का सेवन किस लिए है ? ... २२०
चन्दन, गन्ना आदि से हमें क्या-क्या शिक्षा मिलती है ? ... २२५
कर्म के उदय का क्या अर्थ है ? ... २३१
आजकल के पंडित त्यागी कहते हैं कि कर्म चक्कर कटाता है, क्या यह ठीक है ? ... २३२
रागादि को पुद्गल क्यों कहा है ? ... २३३
साकार, निराकार, का किस-किस अर्थ में प्रयोग होता हैं ? ... २३५
सामायिक कितने प्रकार की है ? ... २३८
मुक्ति के कितने भेद हैं ? ... २३९
आप्त किसे कहते हैं ? ... २४०
जो वीतराग हो वह सर्वज्ञ है या नहीं ? ... २४०
तीर्थंकर पद का बंध, तीर्थंकर के लिए कार्यकारी है, या भव्य जीवों के लिए कार्यकारी है ? ... २४०
आत्मा में बंध तथा पुद्गल में बंध कैसे होता है ? ... २४१
यह जीव स्वयं स्वर्ण अक्षरों में निगोद के टिकट पर हस्ताक्षर कैसे कर रहा है ? ... २४२
राग-द्वेष की उत्पत्ति का क्या कारण है ? ... २४३
सम्पूर्ण सुखी होने का उपाय क्या है ? ... २४५

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ नम्बर

बहुत से अज्ञानी दिगम्बर नाम धरा के निश्चय रत्नत्रय १२वें, कोई ८ वें, कोई १३ वें गुणस्थान में बतलाते है क्या यह बात ठीक है ? ... २४६

श्री कानजी स्वामीजी निश्चय को मानते हैं और व्यवहार को मानते ही नहीं क्या यह बात ठीक है? ... २४७

ध्यान वह धर्म है इससे क्या तात्पर्य है ? ... २५२

सर्वज्ञ इसकी सिद्धी किस प्रकार हो ? ... २५५

देवागम स्रोत में समत्तमद्र स्वामी और महावीर स्वामी की क्या वार्ता है ? ... २५५

क्या मिथ्यात्वी भगवान को नहीं पूज सकता ? ... २५६

उत्साह, आदर, भावना और फल से तात्पर्य क्या है ? ... २५७

पुद्गल कर्म, रागादिक किस अवस्था में निमित्त है ... २५७

कई पण्डित, त्यागी नाम धराने वाले केवली के विषय में क्या मानते हैं ? ... २५८

हमारे में थोड़ी बुद्धि हैं हमें ऐसी बात बताओ जिससे हमारा कल्याण हो जावे ? ... २६०

मनुष्यभव के लिए ज्ञानी देवता भी तरसते हैं यह बात कैसे हैं ? ... २६१

मिथ्यादृष्टि को सम्यग्दृष्टि से ज्यादा पुण्य का बंध होता है क्या ऐसा शास्त्रों में आया है ? ... २६२

भूमिका अनुसार शुभभाव का उदाहरण देकर समझाओ ... २६५

परिणामों की विचित्रता कैसी है ? ... २६८

श्रुत ज्ञान में ही नय पड़ते हैं और ज्ञान की पर्यायों में क्यों नहीं पड़ते हैं ? ... २६९

गाली क्या हैं—? ... २६९

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ नम्बर

तीन प्रकार के ईश्वर कौन-कौन से हैं उनके जानने का क्या लाभ है ? ... २७२
धर्म प्राप्ति के लिए क्या-क्या करना चाहिए ? ... २७२
ज्ञानी को बंध नहीं होता, और अज्ञानी को होता है वह क्यों ? ... २७३
समयसार गाथा ५० से ५५ तक २९ बोलो को तीन बोलो में किस-किस प्रकार बांटा है, इनसे क्या लाभ है ? ... २७५
करू विस्मरू और मरू से क्या तात्पर्य है ? ... २७६
मैं पर का ना करू, क्या ऐसे भाव में मोक्ष हैं ? ... २७६
आत्मा में जोड़, बाकी, गुण और भाग कैसे करना ? ... २७६
सबसे सूक्ष्म कौन है और उसके जानने से क्या लाभहै ? ... २७७
पात्र धीर पुरुष कौन है ? ... २७८
दिगम्बर नाम धराने पर भी, क्या बौद्ध, साख्य, चार्वाक, श्वेताम्बर हो सकता है ? ... २७८
इन्द्रियों को जीतना क्या है ? ... २७९
नन्द्र, आनन्द, महानन्द, सहजानन्द और परमानन्द्र से क्या तात्पर्य है ? ... २७९
अमृतचन्द्राचार्य जी ने सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उपाय क्या वताया है ? ... २८०
ज्ञानी के पास जाकर क्या करे ? तो कल्याण का अवकाश है ? ... २८०
जे विनयवन्त सुभव्य उर, अम्वुज प्रकाशन भान है जे एक मुख चारित्र भासित, "त्रिजग मांहि प्रधान है" इसका क्या अर्थ है ? ... २८१

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

	पृष्ठ प्रश्न
यह कहाँ आया है कि पहले चारित्र का उपदेश, जो चारित्र न ग्रहण कर सके तो श्रावक सम्यक्त्व का उपदेश देना चाहिए ? ...	२८२
दिव्य विपिट पहुपन की वर्षा, दुन्दुभि आसन्, वाणी सरशा, छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुव प्राप्ति हारी मन हारी इस छन्द का क्या अर्थ है ? ...	२८२
साम्यवाद कितने प्रकार का है ? ...	२८२
चार प्रकार की मुक्ति को कार्माण शरीर की अपेक्षा बाँटो ? ...	२८३
जगत में एक समय में पूरा होने वाला अद्‌भूत कार्य क्या है ? ...	२८३
धर्म का अवकाश कब है ? ...	२८३
शास्त्र ज्ञान कब कार्यकारी कहा जाता है, और कब नहीं ? ...	२८४
किसके आश्रय से शुद्ध पर्याय नियम से प्रकट हो ? ...	२८४
सिद्धान्त (नियम) किसे कहते हैं ? ...	२८४
मनुष्यगति मिलने पर आराधना न की, तो क्या फल होगा ? ...	२८५
गुरू के अनुसार शिष्य कैसा होता है ? ...	२८६
भगवान की भक्ति क्या है, और ज्ञानी भगवान की भक्ति कैसे करता है ? ...	२८६
मरण के भय का अभाव कैसे हो ? ...	२८६
वस, खस, रस, कस से क्या तात्पर्य है ? ...	२८७
ज्ञानी प्रतिकूलता के समय क्या विचारते हैं ? ...	२८७
अज्ञानी लोग चार सुख किसे कहते हैं और ज्ञानी क्या कहते हैं ? ...	२८७

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पृष्ठ नम्बर

शास्त्र में नींद आवे तो क्या नुकसान होगा ? ... २८८
निश्चय के बिना व्यवहार पर आरोप क्यों नहीं आता ? ... २८९
भेद विज्ञान (तत्व का अभ्यास) क्या है ? ... २९०
कैसा शुभभाव करे तो कल्याण का अवकाश है, और कैसे-कैसे भाव का कैसा-कैसा फल है ? ... २९१
जीव का कल्याण क्यों नहीं होता, इसका कारण क्या है ? ... २९२
जैन किसे कहते हैं और जैन कितने प्रकार के हैं ? ... २९६
अनन्त चतुष्टय क्या हैं, किसको इसकी प्राप्ति हैं ? ... २९८
भाव दीपिका में सम्यग्दृष्टि को आप्त क्यों कहा है ? ... २९९
श्री पंचास्तिकाय गा० ३ में 'समवाओ' शब्द आया है उसमें से अमृतचन्दाचार्य जी ने कौन-कौन से अर्थ निकाले हैं ? ... ३००
शास्त्रों में जैसा कथन आता है और जैसा देवगुरु कहते हैं वैसा ही हम मानते हैं फिर अन्दर क्यों नहीं उतरता है ? ... ३०२
अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ का स्वरूप क्या हैं ? ... ३०४
सम्यक्त्व होने पर मोह, राग, द्वेष का क्या होता है ?
क्या मोह, राग-द्वेष अभाव किये बिना जैन नहीं हो सकता ?
आराधना किसे कहते हैं और कितनी हैं ?
शंकित कौन होता है और कौन नही होता ?
ज्ञानी पर द्रव्यों के ग्रहण का भाव क्यों नही करता ?
ज्ञानी अपनी आत्मा का किस-किस से, प्रदेश भेद जानता है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

卐 श्री वीतरागायनमः 卐

जैन सिद्धांत प्रवेश रत्नमाला

पाँचवा भाग

मंगलाचरण

समयसार जिनराज है, स्याद्वाद जिनवैन।
मुद्रा जिन निरग्रंथता नमूं करै सब चैन॥
व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा सुदृष्टि निश्चय होय है॥
मैं एक शुद्ध सदा अरूपी, ज्ञानदृग हूँ यथार्थ से।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणुमात्र नहीं अरे।
जो कर्मका परिणाम, अरु नोकर्मका परिणाम है।
सो नहिं करे जो, मात्र जाणे, वो हि आत्मा ज्ञानि है॥
तू स्थाप निजको मोक्षपथमें ध्या अनुभव तू उसे।
उसमें हि नित्य विहार कर, न विहार कर परद्रव्य में॥
गुरु अरु देव दोनों खड़े, किसके लागू पाँय।
बलिहारी श्री गुरुदेव की, भगवन दियों बताय॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पहला पाठ

समयसारका प्रथम कलश

प्र० १—श्री समयसार जी का पहला कलश क्या है ?

उ०— नमः समयसाराय स्वानुभूत्या चकासते ।
चित्स्वभावाय भावाय सर्वभावांतरच्छिदे ।।१।।

प्र० २—"नमः समयसाराय" का क्या भावार्थ है ?

उ०—"समय" अर्थात् मेरी आत्मा जो द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्मसे रहित है उस (आत्मा) की ओर दृष्टि होना, यह 'नमः समयसाराय' का भावार्थ है ।

प्र ०३—'समय' शब्दके कितने अर्थ हैं ?

उ०—'समय' शब्दके अनेक अर्थ हैं; (१) आत्माका नाम समय है । (२) सर्व पदार्थका नाम समय है । (३) कालका नाम समय है । (४) शास्त्रका नाम समय है । (५) समयमात्र कालका नाम समय है । (६) मतका नाम समय है । [मो० प्र० पृष्ठ २८७]

प्र० ४—'समय' शब्द का अर्थ, आपने आत्मा कैसे कर दिया है ?

उ०—सम्' उपसर्ग है, 'सम्' का अर्थ 'एक साथ है । अय् गतौ धातु है, 'अय्' का अर्थ गमन और ज्ञान भी है; इसलिए एक ही साथ जानना और परिणमन करना, यह दोनों क्रियाएँ जिसमें हो, वह समय है. इस अपेक्षा भगवान अमृतचन्द्राचार्य जी ने 'समय' का अर्थ आत्मा किया है ।

प्र० ५—"नमः समयसाराय" में अपनी आत्माको ही क्यों नमस्कार किया है, औरो को क्यों नहीं ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—समयसार अर्थात् शुद्धजीव ही परमार्थसे नमस्कार करने योग्य है दूसरा नहीं।

प्र० ६—किसी इष्टदेवका नाम लेकर नमस्कार क्यों नहीं किया?

उ०—परमार्थतः इष्टदेवका सामान्यस्वरूप सर्वकर्म रहित, सर्वज्ञ, वीतराग, शुद्ध आत्मा ही है इसलिए उसको ही सारपना घटता है।

प्र० ७—शुद्ध जीवके ही सारपना घटता है यह कहाँ लिखा है?

उ०—सार अर्थात् हितकारी, असार अर्थात् अहितकारी। सो हितकारी सुख जानना, अहितकारी दुख जानना। कारण कि अजीव पदार्थ पुद्गल, धर्म, अधर्म, आकाश, कालके और संसारी जीवके सुख नहीं, ज्ञान नहीं और उनका स्वरूप जाननेपर जाननहारे जीवको भी सुख नहीं, ज्ञान भी नहीं। शुद्ध जीवके सुख है, ज्ञान भी है, उनको जाननेपर—अनुभवने पर जाननहारे को सुख है, ज्ञान भी है इसलिए ज्ञानियोंको ही सारपना घटता है। [कलश टीका पहला कलश]

प्र० ८—ज्ञानियों को ही सारपना घटता है ऐसा कहीं छहढाला में भी कहा है?

उ०—"तीन भुवनमें सार वीतराग विज्ञानता।
शिवस्वरूप शिवकार नमहुं त्रियोग सम्हारिकैं ॥१॥
आतमको हित है सुख, सो सुख आकुलता बिन कहिये।
आकुलता शिव माँहि न तातैं, शिवमग लाग्यो चहिए ॥

प्र० ९—'नमः' शब्द का क्या अर्थ है?

उ०—नमना, झुकना अर्थात् अपनी ओर लीन होना यह 'नमः' का अर्थ है।

प्र० १०—नमस्कार कितने हैं?

उ०—पाँच हैं; (१) शक्तिरूप नमस्कार। (२) एकदेश भाव-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नमस्कार। (३) द्रव्यनमस्कार। (४) जड़नमस्कार। (५) पूर्णदेश भाव नमस्कार।

प्र० ११—इन पाँच नमस्कारों को समझाइए ?

उ०—अनन्त गुणोंका अभेद पिण्डरूप ज्ञायकभाव वह शक्तिरूप नमस्कार है। शक्तिरूप नमस्कारका आश्रय लेनेसे प्रथम एकदेश भावनमस्कार की प्राप्ति होती है और अपने शक्तिरूपनमस्कार का पूर्ण आश्रय लेनेसे पर्यायमें पूर्णदेशभावनमस्कारकी प्राप्ति होती है, यह ज्ञानियोंको ही होता है। ज्ञानीको अपनी-अपनी भूमिका अनुसार जो वीतराग-सर्वज्ञ आदिके प्रति बहुमानका राग आता है वह द्रव्यनमस्कार है। शरीरकी क्रिया द्वारा जो नमस्कार होता है वह जड़नमस्कार है। द्रव्यनमस्कार और जड़नमस्कारका निमित्त-नैमित्तिक सम्बंध है।

प्र० १२—इन पाँच नमस्कारों में हेय, ज्ञेय, उपादेय किस-किस प्रकार हैं ?

उ०—"शक्तिरूप नमस्कार—आश्रय करने योग्य उपादेय। (२) एक देशभावनमस्कार—एकदेश प्रकट करनेयोग्य उपादेय। (३) द्रव्य नमस्कार—हेय। (४) जड़ नमस्कार—ज्ञेय। (५) पूर्णदेश भाव नमस्कार—पूर्णदेश प्रकट करने योग्य उपादेय।

प्र० १३—इन पाँच नमस्कारोंसे क्या सिद्ध हुआ ?

उ०—(१) "शक्तिरूप नमस्कारका आश्रय लेनेसे एकदेशभाव नमस्कारकी प्राप्ति होती है। (२) एकदेश भावनमस्कार की प्राप्ति होने पर द्रव्यनमस्कार पर उपचारका आरोप आता है, तभी निमित्त का निमित्त जड़नमस्कार कहा जाता है। (३) परिपूर्ण शक्तिरूप नमस्कार का परिपूर्ण आश्रय लेने पर ही पूर्वदेशभावनमस्कार प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है। पर या बिकारीभावोंके आश्रयसे मात्र संसार परिभ्रमण ही रहता है।

प्र० १४—"सार" शब्दका अस्ति और नास्तिसे अर्थ करके नौ पदार्थ लगाओ ?

उ०—'सार' शब्दका नास्तिसे अर्थ द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्मसे रहित है। द्रव्यकर्म और नोकर्ममें अजीव तत्त्व आगया और भावकर्ममें आस्रव-बन्ध, पुण्य-पाप आ गये। सारका अर्थ अस्तिसे परमसार जीव है। एकदेशसार सम्वर-निर्जरा हैं। पूर्णदेशसार मोक्ष है इस प्रकार नौ पदार्थ आ गये।

प्र० १५—अपनी आत्मा को सार करनेसे क्या प्राप्त होता है ?

उ०—वीतराग-विज्ञानता अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति होती है।

प्र० १६—अजीवको सार करनेसे क्या होता है ?

उ०—चारोंगतियोंमें घूमता हुआ निगोदमें चला जाता है।

प्र० १७—असार क्या है, और सार क्या है ?

उ०—नौप्रकारका पक्ष असार है एकमात्र अपनी आत्माही सार है। उसको सार करनेसे धर्मकी शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्र० १८—पाँच प्रकारके नमस्कारोंपर नौ पदार्थ, काल, पाँच भाव, संयोगादि पाँच भाव, देव-गुरु-धर्म, सुखदायक-दुखदायक, हेय-उपादेय-ज्ञेय, संयोग की पृथकतादि तीन बोल लगाकर बताओ और साथ-साथ क्या लाभ-नुकसान रहा यह भी बताओ ?

उ०—शक्तिरूप नमस्कार में जीवतत्त्व आया। एकदेश भाव नमस्कारमें सम्बर-निर्जरा तत्त्व आये। द्रव्यनमस्कारमें आस्रव-बन्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पुण्य-पाप आये। जड़नमस्कारमें अजीव तत्त्व आया। पूर्णदेशभाव नमस्कारमें मोक्षतत्त्व आया। अपने जीवका आश्रय ले, तो सम्वर-निर्जराकी प्राप्ति होकर क्रमसे मोक्षकी प्राप्ति हो और अजीव और आस्रव-वन्ध से भला-बुरा माने, तो चारों गतियोंमें घूमता हुआ निगोदकी प्राप्ति हो। इसीप्रकार बाकी बोल जवानी लगाकर स्पष्ट करो।

प्र० १९—"चित्स्वभावाय भावाय" का क्या भावार्थ है ?

उ०—(१) 'भावाय' अर्थात् त्रिकाली द्रव्य यह मेरी सत्ता है, पर द्रव्योंकी सत्तासे मेरा किसी भी प्रकारका कर्ता-कर्म भोक्ता-भोग्य सम्वन्ध नहीं है। ऐसा अनुभव-ज्ञान होते ही धर्मदशा प्रकट होना यह भावायको जाननेका लाभ है (२) 'चित्स्वभावाय' से मेरी आत्माका सम्बन्ध ज्ञान-दर्शनादि अनन्त गुणों से है, नौ प्रकारके पक्षोंसे मेरा किसी भी प्रकारका सम्बन्ध नहीं है। इसलिए ज्ञान—दर्शनसे आत्माकी पहिचान कराई है।

प्र० २०—'चित्स्वभावाय भावाय' में द्रव्य-गुण क्या-क्या है ?

उ०—'चित्स्वभावाय' गुणको बताता है और 'भावाय द्रव्य को बताता है।

प्र० २१—जैसे इस प्रथम कलशमें ज्ञान-दर्शनसे जीवकी पहिचान कराई है 'ऐसी पहचान और कहीं, किसी जगह, किसी शास्त्र में कराई है ?

(१) समयसार गा० २४ में "सर्वज्ञ ज्ञान विषै सदा, उपयोग लक्षण जीव है।" (२) मोक्षशास्त्रमें "उपयोगों लक्षमणम्' कहा है। (३) छहढालामें "चेतनको है उपयोगरूप "ऐसा कहा है। (४) द्रव्यसंग्रह में "सुद्धणया सुद्धंपुण दंसणं णाणं" कहा है (५) समयसार गा० ३८ में "मैं एक शुद्ध सदा अरुपी, ज्ञान दृग हूँ यथार्थ से" ऐसा बताया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० २२—सब अनुयोगों में जीवका लक्षण 'ज्ञान-दर्शन' क्यों बताया है ?

उ०—मैं परद्रव्योंको, शरीरादिको हिला-डुला सकता हूँ, ऐसी खोटी मान्यता का अभाव करनेके लिए ज्ञान-दर्शन जीव का लक्षण बताया है। क्योंकि नित्य उपयोग लक्षण वाला जीव द्रव्य कभी पर-द्रव्योरूप तथा शरीरादिपरू होता हुआ देखनें में नहीं आता हैं।

प्र० २३—"स्वानभूत्या चकासते" का क्या भावार्थ है ?

उ०—अपनी ही अनुभवनरूप क्रिया से प्रकाशते हैं अर्थात् अपनें से ही जानता है प्रगट करता है एक मात्र अपनें चित्स्वभावाय पर दृष्टि करते ही शान्ति की प्राप्ति होती है, यह तात्पर्य है।

प्र० २४—'स्वानभूत्या चकासते' के पर्यायवाची शब्द क्या-क्या हैं ?

उ० निराकुलता, शुद्धात्मपरिणमन, अतीन्द्रिय सुख, सम्वर-निर्जरा स्वभावके साधन आदि कहो, स्वानुभूति कहो एक ही बात है।

प्र० २५—'सर्वं भावान्तरच्छिदे' का भावार्थ क्या है ?

उ०—भगवान आत्मा सर्वंजीव और अजीवों को भूत-भविष्य—वर्तमान पर्याय सहित एक समयमें एकसाथ जानता है। करने वाला भोगने वाला नही है। ऐसा जाने-माने, तो अनन्त संसारका अभाव हो।

प्र० २६—"सर्वं भावान्तरच्छिदे" से क्या सिद्ध हुआ ?

उ०—हे आत्मा ! तू एक समय में लोकालोक को जानने-देखने के स्वभाव वाला है ऐसी तेरी अपूर्व महिमा है। इससे क्रमबद्ध पर्याय की सिद्धि होती है। क्रमबद्ध को मानते ही चारों गतियों का अभाव-रूप पंचमगतिका पात्र बन जाता है।

प्र० २७—आत्माका अनुभव होते ही क्या होता है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—जैसे एक रत्ती सोनेकी पहिचान होतेही विश्वके सम्पूर्ण सोनेकी पहिचान हो जाती है; उसीप्रकार अपनी आत्माका अनुभव होते हीं सिद्ध क्या करते हैं; सिद्धदशा क्या है। अरहंत क्या करते हैं, अरहंतदशा क्या है। मुनि क्या करते हैं मुनिदशा क्या हैं। श्रावक क्या करते हैं, श्रावकदशा क्या है। और अनादिसे निगोदसे लगा कर द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि क्या करते है, मिथ्यादृष्टिपना क्या है आदि सब बातोंका एक समयमें ही ज्ञान हो जाता है। केवलीके ज्ञान में और साधकके ज्ञानमें जाननेमें अन्तर नहीं हैं, मात्र प्रत्यक्ष-परोक्ष का ही भेद है। इसलिए हे भव्य! तू एक बार अपनीं ओर दृष्टि करके देख फिर क्या होता है, यह किसीसे पूछना नहीं पड़ेगा, क्योंकि आत्मानुभव का ऐसा ही अलौकिक चमत्कार है।

प्र० २८...स्वानुभूत्या चकासते, चित्स्वभावाय भावाय, और सर्व भावान्तरच्छिदे पर ९ पदार्थ लगाकर बताओ और लाभ-नुकसान भी बताओ ?

उ०—स्वानुभूत्या चकासते—सम्वर-निर्जरा। स्वानुभूत्या चकासते से विरुद्ध—आस्रव-बंध, पुण्य-पाप। चित्स्वभावाय भावाय —जीव। चित्स्वभावाय भावाय से विरुद्ध—अजीव। सर्वभावान्तर-च्छिदे—मोक्ष। चित्स्वभावाय भावायका आश्रय लेवे तो स्वानु-भूत्या चकासते को प्राप्ति होकर सर्व भावान्तरच्छिदेरूप बन जावे। चित्स्वभावाय भावायसे विरुद्ध का आश्रय माने तो स्वानुभूत्या चकासतेके विरुद्धकी प्राप्ति होकर चारोंगतियोंमें घूमता हुआ निगोद की प्राप्ति करेगा।

प्र० २९...स्वानुभूत्याचकासते, चित्स्वभावाय भावाय और सर्व-भावान्तरच्छिदे पर ५ नमस्कार, काल, पाँच भाव, संयोगादिभाव, देव-गुरु-धर्म, सुखदायक-दुःखदायक, हेय-उपादेय-ज्ञेय, संयोग की पृथक—तादि बोल लगाकर तथा प्रत्येक का लाभ-नुकसान समझाओ ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—जबानी लिखो या उत्तर दो।

प्र० ३०—भगवान ने अनेक बोलों से भगवान आत्मा की महिमा बतायी है, हमें महिमा क्यों नहीं आती है ?

उ०—चारोंगतियोंमें घूमकर निगोदमें जाना अच्छा लगता है, इसलिए अपने भगवान आत्माकी महिमा नहीं आती है।

प्र० ३१—अपनी महिमा कैसे आवे ?

उ०—(१) जीव अनन्त हैं। (२) जीवसे अनन्तगुणा अधिक पुद्गल द्रव्य है। (३) पुद्गल द्रव्य से अनन्तगुणा अधिक तीन काल के समय हैं। (४) तीनकालके समयों से अनन्तगुणा अधिक आकाशके प्रदेश हैं। (५) आकाश के प्रदेशों से अनन्तगुणा अधिक एक द्रव्य में गुण हैं। (६) एक द्रव्य के गुणों से अनन्तगुणा अधिक सब द्रव्योंके गुण हैं। (७) सब द्रव्यों के गुणों से अनन्तगुणा अधिक सब गुणोंकी पर्यायें हैं। (८) सब द्रव्यों की पर्यायों से अनन्तगुणा अधिक अविभाग प्रतिच्छेद हैं। विश्व में मात्र आठ नम्बर तक ही ज्ञेय है। (९) अब विचारो अपनी आत्मामें आकाशके प्रदेशोंसे अनन्तगुणा अधिक गुण है। उसमें ज्ञान नामका एकगुण है। उसकी केवलज्ञान रूप एक पर्याय है उसमें आठ नम्बर तक जो ज्ञेय है, वह एक समय में ज्ञेयरूपसे जाना जाता है ऐसी ताकत केवलज्ञानरूपी एक पर्याय में है यदि ऐसे-ऐसे अनन्त विश्व हो, वह भी केवलज्ञानकी पर्याय में ज्ञेय हो सकते हैं। एक समम को पर्याय की कितनी ताकत है। और केवलज्ञान, केवलज्ञान ऐसी अनन्त पर्यायें हैं। (१०) जब केवलज्ञान की इतनी ताकत है तो जिसमें से केवलज्ञान आता है उस ज्ञान गुण के ताकत की क्या मर्यादा हैं, अमर्यादित ताकत है। (११) ज्ञान गुण जैसे अनन्तगुण मेरेमें हैं। मैं उन अनन्तगुणोंका स्वामी हूँ। ऐसी अपनी महिमा समझमें आजावे तो जो अनादिसे नौ प्रकार के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पक्षों की महिमा है उसका अभाव होकर धर्मकी शुरुआत होकर, वृद्धि होकर, निर्वाण का पथिक बने ॥

प्र० ३२…नौ प्रकारका पक्ष कौन-कौनसा है ?

उ०—(१) अत्यन्त भिन्न परपदार्थका पक्ष (२) आँख-नाँक-कान आदि औदारिकशरीरका पक्ष (३) तैजस-कार्माणशरीर का पक्ष (४) भाषा और मनका पक्ष (५) शुभाशुभविकारीभावोंका पक्ष (६) अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्यायका पक्ष (७) भेदकर्मका पक्ष (८) अभेदकर्मका पक्ष (९) भेदाभेद कर्मका पक्ष ।

दूसरा पाठ

"जैसी मति वैसी गति, जैसी गति वैसी मति"

जीव भिन्न है देह—से, कमल भिन्न जल माहिं ।
भिन्न जान निज आत्मा, पर में राचों नाहिं ॥
आप अकेलो अवतरै, मरै अकेलो होय ।
यूं कबहूँ इस जीव को, साथी सगा न कोय ॥
इंद्रीनतें जाना न जावै, तू चिदानन्द अलक्ष है ।
स्वसम्वेदन करत अनुभव होत, तब प्रत्यक्ष है ॥
तन अन्य जड़ जानो, सरूपी तू अरूपी सत्य है ।
कर भेदज्ञान सो ध्यान धर निज, और बात असत्य है ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने-अपने सत्वकूं, सर्वं वस्तु विलसाय ।
ऐसे चितवै जीव तब, परतै ममत न थाय ॥
बोधि आपका भाव है, निश्चय दुर्लभ नाहिं ।
भवमें प्रापति कठिन है, यह व्यवहार कहाहिं ॥

प्र० १—भविष्यकी आयुका बंध कब और कैसे होता है ?

उ०—मनुष्योंके लिये यह नियम है कि जितनी भोगने वाली आयुकी स्थिति होगी उसके दो तिहाई बीत जानेपर पहली दफे अन्तर्मुहर्तके लिये आगामी भवका आयुबंध होता है। फिर दो तिहाई बीतनेपर दूसरी दफे, फिर दो तिहाई बीतनेपर तीसरी दफे, इस तरह दो तिहाई समयके पीछे आठ दफे ऐसा अवसर आता है। यदि इनमें भी नहीं बंधे, तो मरनेके अन्तर्मुहर्त पहले तो आयु बँधती ही है। यदि अपने परिणाममें कुछ सुधार-बिगाड़ हो जावे तो पहली बँधी हुई आयुकी स्थिति कम व अधिक हो सकती है।

जैसे किसी की आयु ८१ वर्ष की है तो—

(१) ५४ वर्ष बीतनेपर=२७ वर्ष शेष रहनेपर; (२) ७२ वर्ष बीतने पर=९ वर्ष शेष रहनेपर; (३) ७८ वर्ष बीतनेपर=३ वर्ष शेष रहने पर; (४) ८० वर्ष बीतनेपर=१ वर्ष शेष रहनेपर; (५) ८० वर्ष ८ मास बीतनेपर=४ मास शेष रहनेपर; (६) ८० वर्ष १० मास, २० दिन बीतनेपर=४० दिन शेष रहनेपर; (७) ८० वर्ष, ११ मास, १६ दिन १६ घण्टे बीतनेपर=१३ दिन ८ घण्टे शेष रहनेपर; (८) ८० वर्ष ११ मास, २५ दिन १३ घण्टे २० मिनट बीतने पर=४ दिन १० घण्टे, ४० मिनट शेष रहनेपर आयुका बंध होता है।

प्र० २—एकभव कितने कालका है ?

उ०—अरे भाई ! वास्तव में एक-एक समयका एक-एक भव है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ३—एक-एक समयका एक-एक भव है, यह कहाँ लिखा है और एक-एक समयका भव किसप्रकार है ?

उ०—भगवान कुन्दकुन्द स्वामी के भावपाहुड गाथा ३२ की टीकामें आवीचिकामरणके लिये लिखा है कि "आयुकर्म का उदय समय-समयमें घटता है। वह समय-समयका मरण है यह आवी—चिका मरण है।" देखो इसमें बताया है, समय-समयका मरण होता होता है, क्योंकि पर्यायकी स्थिति एक समयकी होती है। सूक्ष्मऋजु-सूत्रनय की अपेक्षा एक-एक समयका एक एक भव है। जिस समय जो जीव जो भाव करता है उस समय वह वही है इसलिये कहा जाता है "जैसी मति, वैसी गति" और आयु पूर्ण होने के समय "जैसी मति, वैसी मति" हो जाती है

प्र० ४—"जैसी मति, वैसी गति और जैसी गति वैसी मति" के पीछे क्या रहस्य है ?

उ०—यदि कोई गति धारण करनी ना हो तो अनादि अनन्तज्ञाय-कस्वभावी तेरी आत्मा है उसका आश्रय लेकर इनका अभाव करना की प्रत्येक पात्र जीव का परम कर्तव्य है।

प्र० ५—क्या मनुष्यभव होने पर 'साँप' कहला सकता है ?

उ०—मनुष्यभव होनेपर जैसे हमारे घरमें बहुतसे आदमी हैं, यदि हम फूं फाँ ना करें तो वह सब बिगड़ जावे। ऐसा मानकर जो फूं फाँ करता हैं वह उस समय मनुष्यभव होनेपर भी वह साँप ही है क्योंकि "जैसीं मति वैसी गति होती है। फूं फाँ करते समय आयु का बंध हो गया तो साँपकी योनिमें जाना पड़ेगा जहाँ निरन्तर फूं फाँ ही करना पड़ेगा।

प्र० ६—कोई कहे अरे भाई हमें साँप नहीं बनना है, क्योंकि साँप की योनि बहुत बुरी है तो वह क्या करे ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ—फूं फां रहित आत्माका स्वभाव है उसका आश्रय ले, तो भगवानके समान ज्ञाता-ज्ञेय बुद्धि प्रगट हो जावें और संसार के सम्पूर्ण दुख का अभाव हो जावें।

प्र० ७...क्या मनुष्य भव होनेपर 'गधा' कहला सकता है ?

उ०—मनुष्यभव होनेपर जैसे हमारे घरमें बहुत आदमी हैं। वह फूं फां से तो मानते नहीं हैं, उसके बदले उन्हें लातों से मारे चिल्लाये, तों वह उससमय मनुष्यभव होनेपर भी 'गधा' ही है क्योंकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। दुलत्ती चलानेके भाव के समय यदि आयु का बँध हो गया तो गधे की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर दुलत्ती चलाना और भौंकना पड़ेगा।

प्र० ८—कोई कहे, अरे भाई हमें गधा नहीं बनना है, क्योंकि गधे की योनि बहुत बुरी है तो वह क्या करे ?

उ०—दुलत्ती चलाने और भौंकनेके भाव रहित अपनी आत्मा का स्वभाव है। उसका आश्रय ले तो गधा नहीं बनना पड़ेगा, बल्कि मोक्षरूपी लक्ष्मीका नाथ बन जावेगा और संसारके मिथ्यात्व अविरति, प्रमाद, कषाय और योग पाँच संसारके कारणोंका अभाव हो जावेगा। इसलिये हे भव्य! तू दुलत्ती और भौंकने रहित अपने ज्ञायक भगवानका आश्रय ले, तो भगवानके समान ज्ञाता–दृष्टा बुद्धि प्रगट हो जावे और संसारके सम्पर्ण दुःख का अभाव हो जावे।

प्र० ९—क्या मनुष्यभव होनेपर "कुत्ता" कहला सकता है ?

उ०—(अ) जैसे कुत्ता, हड्डीमें से खून निकलता है, ऐसा मान कर उसीमें आसक्त रहता है; उसीप्रकार जो जीव मनुष्यभव पानेपर पाँचइन्द्रियोंके विषयोंमें सुख है, ऐसा मानकर उसीमें आसक्त रहता है। वह उससमय कुत्ता ही है क्योंकि "जैसी गति वैसी मति" होती है। पांच इन्द्रियोंकी आसक्तिके समय आयुका बँध हो गया

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तो "कुत्ता" की योनिमें जाना पड़ेगा जहाँ निरन्तर विषयों की आसक्ति में पागल बना रहैगा।

(आ) जैसे कुत्ता वगैर वातके भौंकता ही रहता है उसी प्रकार जीव मनुष्य भव प्राप्त होने पर भौंकता ही रहता है वह उस समय कुत्ता ही है क्योंकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। भौंकने के माव के समय यदि आयुका बँध हो गया "कुत्ता की योनिमें जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर चौबीस घण्टे "भौं भाँ" ही करता रहेगा।

प्र० १०—कोई कहे अरे भाई कुत्ता की योनि तो बहुत खराब है, हमको कुत्ता ना बनना पड़े, उसका क्या उपाय है ?

उ०—विषयोंकी आसक्तिके भावसे रहित, और "भौं भौं" के भावों से रहित अपना त्रिकाली स्वभाव है। उसका आश्रय ले तो 'कुत्ता' नहीं बनना पड़ेगा, बल्कि द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भाव ऐसे पंच परावर्तनरूप संसारका अभाव होकर क्रमसे सिद्धत्व की प्राप्ति होगी।

प्र० ११—क्या मनुष्यभव होनेपर 'मेंढक' कहला सकता है ?

उ०—जैसे मेंढक "टरटर करता रहता है; उसो प्रकार जो मनुष्य भव पाने पर सब कार्योमें 'टरटर' करता रहता है वह उससमय 'मेंढक, ही है, क्योंकि "जैसी मति, वैसी गति" होतीं है। "टरटर" भाव करने के समय यदि आयुका बंध हो गया तो "मेंढक" की योनि में जाना पड़ेगा जहां निरन्तर चौवीसों घण्टे "टर टर" ही करता रहेगा।

प्र० १२—कोई कहे अरे भाई हमें मेंढक नहीं बनना है, क्योंकि मेंढककी योनि अच्छी नहीं है ?

उ०—अरे भाई ! "टर टर" रहित अपने त्रिकाली भगवान का स्वभाव है। उसका आश्रय ले, तो मेंढक नहीं बनना पड़ेगा, वल्कि चारोंगतियोंका अभाव होकर पंचमगतिका मालिक बन जावेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिए हे भव्य ! तू एकबार अपने स्वभावकी दृष्टि कर, फिर देख क्या होता है किसी से पूछना नहीं पड़ेगा।

प्र० १३—क्या मनुष्य भव होने पर "बकरा" कहला सकता है ?

उ०—जैसे बकरा चौबीस घण्टे "मैं-मैं" करता है; उसीप्रकार जो जीव मनुष्य भव पानेपर "मैं-मैं" करता रहता है। वह उससमय बकरा ही है क्योंकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। 'मैं-मैं' भावके समय यदि आयु का बंध हो गया, तो भाई बकरे की योनि में जाना पड़ेगा जहाँ निरन्तर "मैं-मैं" ही जीवन बीतेगा।

प्र० १४—कोई कहे "बकरे" की योनि तो खराब है, जिससे हम बकरा ना बने, उसका कोई उपाय है ?

उ०—"मैं-मैं" के भाव रहित अपना पारिणामिकभाव है, उसका आश्रय ले, तो बकरा नहीं बनना पड़ेगा, बल्कि औदयिक-भावों का अभाव होकर औपशमिक, धर्मका क्षायोपशमिक और क्षायिकदशाकी प्राप्ति हो जावेगी।

प्र० १५—क्या मनुष्यभव होनेपर "बिल्ली" कहला सकता है ?

उ०—जैसे बिल्लीको चौबीसों घण्टे चूहोंको मारकर खाने का भाव रहता है; उसीप्रकार जो जीव मनुष्यभव होनेपर दूसरोंको मारकर खानेका भाव रखता है वह उससमय 'बिल्ली' ही है क्योंकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। दूसरोंको मारकर खानेके भाव के समय यदि आयुका बंध हो गया तो भाई ! बिल्लीकी योनिमें जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर चूहोंको मारकर खानेके ही भावों में पागल बना रहेगा।

प्र० १६—कोई कहे हमें 'बिल्ली' नहीं बनना है, क्योंकि गृद्धि का भाव बहुत बुरा है ?

उ०—दूसरोंको मारकर खानेके भावरहित अपना ज्ञायक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभाव है। उसका आश्रय ले, तो बिल्ली नहीं बनना पड़ेगा, बल्कि तेरी गिनती पंचपरमेष्ठीयोंमें होने लगेगी।

प्र० १७—क्या मनुष्यभव होनेपर "निगोदिया" कहला सकता है ?

उ०—निगोदके कारण अनेक हैं। परन्तु उन सबको तीन में समावेश करते हैं। (१) अज्ञानमोह अन्धकार, (२) देव-गुरु-शास्त्र की विराधना, (३) नये-नये भेषों में अपनेपने की मान्यता।

प्र० १८—"अज्ञान मोह अन्धकार" क्या है, जिसका फल निगोद है ?

उ०—(१) आत्मा की क्रिया ज्ञाता-दृष्टा है। इसके बदलेमें मैं पर जीवों को मारता हूं, जिलाता हूं। मैं झूट बोलता हूँ, मैं सत्य बोलता हूं। मै चोरी करता हूँ, मैं चोरी नहीं करता हूँ। मैं कुशील सेवन करता हूँ, मैं ब्रह्मचर्य से रहता हूं। मैं परिग्रह रखता हूँ, मैं परिग्रह का त्याग करता हूँ। ऐसी करोतिक्रिया और विकारीक्रियाको अपना मानना यह अज्ञान मोह अन्धकार हैं।

(२) मैं ज्ञायक भगवान हूँ, इसके बदले अपनेको मनुष्य, देव, तिर्यंच, नारकी आदिरूप मानना, यह अज्ञान मोह अंधकार है।

(३) आत्मा ज्ञानस्वरूप है इसके बदले पर पदार्थों से, ज्ञेय से अपना ज्ञान मानना, यह अज्ञान मोह अंधकार है।

प्र० १९—यह तीनोंप्रकार का अज्ञान मोह अंधकार है, ऐसा कहाँ कहा है ?

उ०—चारों अनुयोगोंमें कहा है परन्तु समयसार के बंध अधिकार गा० २६८ से २७० तक इसका साक्षी है। तथा १६९ वें कलशमें लिखा है कि "मैं देव, मैं मनुष्य, मैं तियंच, मैं नारकी, मैं दुखी, मैं सुखी ऐसी कर्मजनित पर्यायों में है आत्मबुद्धिरूप जो मग्नपना उसके द्वारा कर्मके उदयसे जितनी क्रिया होती है। उसे मैं करता हूँ, मैंने किया है, ऐसा करूँगा ऐसे ऐसे अज्ञान को लिए मानते हैं। वह जीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कैसे हैं ? "आत्महन:" अपने को घातनशील है। जो जीव मनुष्यभव होनेपर ऐसे ऐसे भाव करता है वह उस समय तो निगोदिया है ही, क्योंकि "जैसी मति वैसी गति" होती है और यदि ऐसे भावों के समय आयुका बंध हो गया, तो निगोदमें जाना पड़ेगा।

प्र० २०—देव-गुरू-शास्त्र की विराधना क्या है, जिसका फल निगोद है ?

उ०—एकमात्र अपने त्रिकाल भगवान के आश्रय से ही सम्यक्‌दर्शन, श्रावक, मुनि-श्रेणी अरहंत और सिद्धदशा की प्राप्ति होती है। किसी परके या विकारीभावोंसे आश्रयसे नहीं होती है। इसके वदले पर पदार्थोंके आश्रयसे, दयादान, पूजा अणुव्रत, महाव्रतादिके आश्रय से धर्मकी प्राप्ति होती है ऐसी मान्यता ही देवगुरू-शास्त्र की विराधना है। जिसका फल परम्परा निगोद है।

प्र० २१—नये नये भेषोंमें अपनेपनेकी मान्यता क्या है, जिसका फल निगोद है ?

उ०—श्री रत्नकरण्डश्रावकाचार श्लोक ४१ के अर्थ में सदासुख-दासजी ने लिखा है कि "मिथ्यादृष्टि परकृत पर्याय में आपा मानै हैं। मिथ्यादृष्टि का आपा जाति में, कुल मैं, देह में, धन में, राज्य में, ऐश्वर्य में, महल मकान-नगर कुटम्बनि में है। याकोलार हमारी घटी, हमारी वढ़ी, हमारा सर्वस्व पूरा हुआ, मैं नीचा हुआ, मैं ऊंचा हुआ, मैं मरा, मैं जिया, हमारा तिरस्कार हुआ, हमारा सर्वस्व गया, इत्यादि परवस्तुमें अपना संकल्प करि महा आर्त्तध्यान रौद्रध्यान करि दुर्गति को पाय संसार परिभ्रमण करै है। यह मान्यता नये-नये भेषों में अपनेपने की मान्यता निगोद का कारण है। दिगम्बर धर्म धारण करने पर ऐसी मान्यता के समय वह जीव निगोदिया ही है, क्योंकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। नये-नये भेषों की मान्यता के समय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यदि आयु का बंध हो गया, तो भाई निगोदमें जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर उसमें पागल बना रहेगा।

प्र० २२—कोई कहे कि भाई ! निगोद की पर्याय तो बहुत बुरी है, उसकी प्राप्ति हमें ना हो उसके लिए हम क्या करे ?

उ०—(१) अज्ञान मोह अंधकार रहित (२) देव-गुरू-शास्त्र की विराधना रहित, (३) नये-नये भेषों में अपनेपने की मान्यता रहित अनादिअनन्त तेरा स्वभाव है। उसका आश्रय ले, तो निगोद में नही जाना पड़ेगा, बल्कि सादिसान्त जो साधकदशा है। उसकी प्राप्ति होकर सादिअनन्त जो साध्यदशा है उसकी प्राप्ति हो जावेगी।

प्र० २३—क्या मनुष्यभव होने पर 'पृथ्वीकाय' कहला सकता है ?

उ०—जैसे हम पृथ्वीकाय पर चलते हैं दबनेसे जो वह दु:खका अनुभव करता है, लेकिन वह कुछ नहीं कह सकता है; उसीप्रकार मनुष्यभव होने पर मैं सबको दबाऊँ और कोई मेरे सामने एक शब्द भी उच्चारण ना कर सके ऐसा भाव करता है उससमय वह पृथ्वीकाय ही है क्योंकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। ऐसे भावके समय यदि आयुका वंध हो गया तो 'पृथ्वीकाय' की योनिमें जाना पड़ेगा जहाँ निरन्तर तुझे सब दवायेंगे और तू एक शब्द भी उच्चारण न कर सकेगा।

प्र० २४—कोई कहे हमें 'पृथ्वीकाय' न बनना पड़े, उसका क्या उपाय है ?

उ०—मैं सबको दबाऊँ और कोई मेरे सामने एक शब्द भी उच्चारण ना कर सके, ऐसे भावरहित अस्पर्श स्वभावी भगवान आत्मा है। उसका आश्रय ले, तो भगवानपना पर्यायमें प्रकट हो जावेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० २५—क्या मनुष्यभव पर होनेपर "जलकाय" कहला सकता है ?

उ०—जैसे तालाब का पानी ऊपर से देखने पर एक जैसा लगता है। लेकिन कही दो गजका खड्डा है, कहीं तीन गजका खड्डा है। कहीं ऊँचा है, कहीं नीचा है; उसीप्रकार मनुष्यभव होने पर ऊपर से चिकनी चुपड़ी बातें करता है अन्दर कपट रखता है वहजीव उस समय 'जलकाय' ही है क्योंकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। ऐसे भाव के समय यदि आयु का बंध हो गया तो 'जलकाय' की योनि में जाना पड़ेगा।

प्र० २६—कोई कहे हमें "जलकाय" न बनना पड़े, उसका कोई उपाय है ?

उ०—छलकपट रहित मेरी आत्माका स्वभाव है। उसका आश्रय ले, तो जलकाय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि मुक्ति-रूपी सुन्दरीका नाथ बन जावेगा।

प्र० २७—क्या मनुष्यभव होनेपर 'अग्निकाय' कहला सकता है ?

उ०—जैसे रोटी बनाने के बाद तवेको उतारते हैं तो तवेमें टिम-टिम की चिगारियाँ दिखती हैं। लोग कहते हैं कि तवा हँसता हैं। परन्तु वह वास्तव में अग्निकाय के जीव हैं; उसीप्रकार जो मनुष्यभव पानेपर दूसरों को वढ़ता हुआ देखकर ईर्ष्या करता है उस समय वह जीव 'अग्निकाय' ही है क्योंकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। यदि उससमय आयुका बंध हो गया तो 'अग्निकाय' की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर जलने में ही जीवन वीतेगा।

प्र० २८—कोई कहे अरे भाई हमें 'अग्निकाय' की योनि में ना जाना पड़े, ऐसा कोई उपाय है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—ईर्ष्या रहित त्रिकाली स्वभाव है। उसका आश्रय ले, तो अग्निकाय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि पर्याय में तीन लोक का नाथ कहलायेगा।

प्र० २९—क्या मनुष्यभव होनेपर "वायुकाय" कहला सकता है ?

उ०—जैसे हवाके झोंके कभी तेज कभी मन्द चलते रहते हैं, स्थिर नहीं रहते हैं; उसीप्रकार जो मनुष्यभव पानेपर भी जहाँपर जन्ममरण के अभाव की बात चलती है उसके बदले अन्य बात का विचार करता है, ऊँघता है या अन्य अस्थिरता करता है वह जीव उस समय वायुकाय ही है क्योंकि "जैसी मतिवैसी गति" होती है। यदि अस्थिरताके भावों के समय आयु का बँध हो गया तो"वायुकाय" की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर अस्थिरता रहेगी।

प्र० ३०—कोई कहे हमें वायुकाय नहीं बनना है, तो हम क्या करें ?

उ०—अस्थिरता के भावों से रहित परम पारिणामिक भाव है। उसकी ओर दृष्टि करे तो वायुकाय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा बल्कि क्रम से पूर्ण क्षायिकपना प्रगट करके पूर्ण सुखी हो जावेगा।

प्र० ३१—क्या मनुष्यभव होने पर "वनस्पतिकाय" कहला सकता है ?

उ०—जैसे बाजार से सब्जी लाते हैं, आप उसे चाकू से काटते हैं, वह आपसे कुछ नहीं कहती है; उसी प्रकार मनुष्यभव पाने पर मैं दूसरों को ऐसा मारु, वह एक पग भी ना चल सके, ऐसा भाव करता है, वह उस समय वनस्पतिकाय ही है क्योकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। यदि ऐसे भावों के समय आयु का बंध होगया तो वनस्पतिकाय की योनि में जाना पड़ेगा जहाँ एक-एक समय करके निरन्तर दुःख उठाना पड़ेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ३२—कोई कहे हमें "वनस्पतिकाय" में न जाना पड़े इसका कोई उपाय है ?

उ०—मैं सबको मारूँ और वह एक पग भी आगे न बढ़ सके इससे रहित तेरी आत्मा का स्वभाव है, उसका आश्रय ले तो वनस्—पतिकाय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि गुणस्थान-मार्गणा से रहित परमपद को प्राप्त करेगा।

प्र० ३३—क्या मनुष्यभव होनेपर "दो इन्द्रियवाला जीव" कहला सकता है ?

उ०—जैसे सीप, शंख, कौड़ी, केंचुआ, लट आदि रसना इन्द्रिय में मग्न है; उसीप्रकार जो जीव मनुष्यभव पाने पर रसनाके स्वाद में पागल हो रहा है, वह उससमय दो इन्द्रिय जीव ही है क्योंकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। रसना के स्वादमें पागलके समय यदि आयु का बंध हो गया तो दो इन्द्रियों में उत्पन्न होना पड़ेगा, जहाँ निरन्तर रसके स्वाद में ही पागल बना रहेगा।

प्र० ३४—कोई कहे हमें दो इन्द्रिय की योनि में ना जाना पड़े, इसका कोई उपाय हैं ?

उ०—रसना इन्द्रिय के स्वाद रहित अरस स्वभावी भगवान आत्मा है, उसका आश्रय ले तो दो इन्द्रिय की योनि में नही जाना पड़ेगा, बल्कि अरस स्वभाव पर्याय में प्रगट हो जावेगा।

प्र० ३५—क्या मनुष्यभव होने पर 'तीन इन्द्रिय' कहला सकता है ?

उ०—जैसे चींटी, बिच्छू, घुन, खटमल, जूं आदि घ्राणेन्द्रिय में पागल है उसीप्रकार मनुष्यभव पाने पर भी जो जीव सुगंध का सम्बन्ध मिलाने और दुर्गन्धको हटाने में पागल बना रहता है वह उस समय तीन इन्द्रिय जीव ही हैं क्योंकि "जैसी मति वैसी गति" होतीं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है। यदि उस समय आयुका बंध हो गया तो तीन इन्द्रिय की योनि में जाना पड़ेगा जहाँ निरन्तर घ्राण इन्द्रिय के विषय में ही पागल बना रहेगा।

प्र० ३६—कोई कहे हमें तीन इन्द्रिय की योनि में न जाना पड़े, ऐसा उपाय बताओ ?

उ०—सुगन्ध-दुर्गंध की इच्छा रहित अगंधस्वभावी भगवान आत्मा है, उसका आश्रय ले तो तीन इन्द्रिय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, वल्कि अगंध स्वभाव पर्याय में प्रगट हो जावेगा।

प्र० ३७—क्या मनुष्यभव होनेपर "चारइन्द्रिय जीव" कहला सकता हैं ?

उ०—जैसे मक्खी, डाँस, मच्छर, भिरड़, भ्रमर, पतंगा आदि रूप के विषय में पागल है; उसीप्रकार मनुष्यभव होने पर भी जो जीव रूप बनाने में, सिनेमा आदि देखने में पागल है वह उस समय चार इन्द्रिय का ही जीव है क्योंकि "जैसी मति बैसी गति" होती है। यदि उससमय आयु का बंध हो गया तो चार इन्द्रिय की योनि में जाना पड़ेगा जहाँ निरन्तर रूप में पागल रहेगा।

प्र० ३८—कोई कहे हमें चार इन्द्रिय ना बनना पड़े, इसका क्या उपाय हैं ?

उ०—पर के देखने में पागलपन से रहित अवर्णस्वभावी भगवान आत्मा स्वयं है, उसका आश्रय ले तो चार इन्द्रिय की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, बल्कि अवर्ण स्वभाव पर्याय में प्रगट हो जावेगा।

प्र०—२९ क्या मनुष्यभव होने पर 'नारकी' कहला सकता है ?

उ०—जो जीव मनुष्यभव होने पर भी सातव्यसनों को, पाँच पापों रूप महान् तीव्र अशुभभावों के सेवन में मग्न हैं, वह उसी समय 'नारकी' हो है क्योंकि 'जैसी मति वैसी गति' होती है। यदि तीव्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अशुभभावो के समय आयु का बंध होगया तो नारकी की योनि में जाना पड़ेगा, जहाँ एक-एक समय करके निरन्तर परस्पर एक-दूसरे से क्रोध करते हुए वचनप्रहार, शास्त्रप्रहार, काय प्रहार आदि से कष्ट देते व सहते रहते हैं वहां कुछ खानेको मिलता नहीं, पीने को पानी मिलता नहीं, क्षुधा-तृषा से निरन्तर व्याकुल रहते हैं।

प्र० ४०—कोई कहे हमें नारकी ना बनना पड़े, इसका क्या उपाय है ?

उ०—शुभाशुभभाव रहित आत्माका त्रिकाली स्वभाव है। उसका आश्रय ले तो नारी की योनि में नहीं जाना पड़ेगा, वल्कि सम्यक्दर्श—नादि की प्राप्तिकर मोक्ष का पथिक बन जावेगा।

प्र० ४१—क्या मनुष्यभव होनेपर 'तिर्यंच' कहला सकता है ?

उ०—मनुष्यभव होनेपर भी जो जीव 'मायातैर्यंग्योनस्य" अर्थात् माया छल कपट करता है वह जीव उस समय तिर्यंच ही है, क्योंकि 'जैसी मति वैसी गति होती है। माया छलकपट के समय यदि आयुका बंध होगया तो तिर्यंचकी योनिमें जाना पड़ेगा जहाँपर निरन्तर छल-कपट के भावों में ही पागल बना रहेगा।

प्र० ४२—कोई कहे हमें तिर्यंच की योनि में न जाना पड़े, इसके लिए क्या करे ?

उ०—छल-कपट रहित तेरा स्वभाव है। उसका आश्रय ले, तो तिर्यंच की योनि में नही जाना पड़ेगा बल्कि सम्यक्त्वादिकी प्राप्ति कर क्रमसे मुक्तिरुपी सुन्दरींका नाथ बन जावेगा।

प्र० ४३—क्या मनुष्यभव होनेपर 'देव' कहला सकता है ?

उ०—जो जीव मनुष्यभव होने पर अपनी आत्माका अनुभव हुए बिना शुक्ल लेश्या आदि महान् मंद शुभभाव करता है वह उस समय देव ही है क्योंकि "जैसी मति वैसी गति" होती है और ऐसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

महान् मन्द शुभभावके समय आयु का बंध हो गया, तो सम्यक्त्व रहित देव की योनि में जाना पड़ेगा जहाँ निरन्तरा अकुलता का सेवन करता हुआ दुखी होता रहेगा।

प्र० ४४—कोई कहे भाई सम्यकत्व रहित देवकी पर्याय हमको न मिले, इसका क्या उपाय है ?

उ०—महान् शुभभाव रहित आत्माका स्वाभाव है । उसका आश्रय ले तो धर्मकी प्राप्ति होकर क्रमसे वृद्धि करके पूर्ण परमात्म दशा की प्राप्ति हो जावेगी।

प्र० ४५—मनुष्यभव होने पर 'मनुष्यभव का भाव क्या है ?

उ०—जो जीव मनुष्यभव होनेपर मन्दकषायरूप शुभभाव करता है वह उससमय मनुष्य ही है, क्योंकि "जैसी मति वैसी गति" होती है। यदि ऐसे भाव के समय आयुका बंध हो गया तो फिर मनुष्य योनि में जाना पड़ेगा जहाँ 'वालपने में ज्ञान न लह्यो, तरण समय तरणी रत रह्यो। अर्धमृतक सम बूढ़ापनों, कैसे रूप लखै आपनों" ऐसी दशा में ही जीवन पूरा हो जावेगा।

प्र० ४६—कोई कहे अब हम क्या करे जिससे मनुष्यगति का अभाव होकर मोक्ष की प्राप्ति हो ?

उ०—एक मात्र अपने त्रिकाली भगवानका आश्रय ले तो प्रथम औपशमिक सम्यक्त्व की प्राप्ति होकर, फिर श्रावक दशा, मुनिदशा, श्रेणीदशा, अरहंत और सिद्धदशाकी प्राप्ति हो, तो फिर मनुष्यभव की योनि का सम्वन्ध नहीं रहेगा, बल्कि अनन्त ज्ञान, दर्शन, सुख, वीर्य आदिरूप शुद्ध दशा की प्राप्ति हो जावेगी। पर्याय में सादिअनन्त सुख दशा बनी रहेगी तब मनुष्यगति में जन्म हुआ सार्थक कहलायेगा।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे भव्य ! एक मात्र परमपारिणामिकभाव के आश्रयसे ही सम्यग्दर्शन, श्रावकपना, मुनिपना, श्रेणीपना, अरहंत और सिद्धपने की प्राप्ति होती है, इसलिए नौ प्रकारके पक्षोंका आश्रय छोड़कर अपने त्रिकाली भगवान का आश्रय लेना ही जिन, जिनवर और जिनवरवृषभों का आदेश है।

तीसरा पाठ

प्रतिक्रमण, आलोचना और प्रत्याख्यान का स्वरूप

प्र० १—प्रतिक्रमण का मंगलाचरण क्या है ?

उ०—नारक नहीं, तिर्यंच-मानव-देव पर्यय मैं नहीं।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं ॥७७॥
मैं मार्गणाके स्थान नहीं,गुणस्थान-जीवस्थान नहीं।
कर्ता न, कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नहीं ॥७८॥
बालक नहीं मैं, वृद्ध नहिं, नहिं युवक तिन कारण नहीं।
कर्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमंता भी नही ॥७९॥
मैं राग नहिं, मैं द्वेष नहिं, नहिं मोह तिन कारण नहीं।
कर्ता न कारयिता नहीं, कर्तानुमंता मैं नहीं ॥८०॥
मैं क्रोध नहिं, मैं मान नहि, माया नहिं, मैं लोभ नहि।
कर्ता न कारयिता नहीं कर्तानुमोदक मैं नहीं ॥८१॥
मिथ्यात्व आदिक भावकी, की जीवने चिर भावना।
सम्यक्त्व आदिक भावकी पर की कभी न प्रभावना ॥९०॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है जीव उत्तम अर्थ, मुनि तत्रस्थ हन्ता कर्म का।
अतएव है बस ध्यान ही प्रतिक्रमण उत्तम अर्थका ॥९१॥
(नियमसार)

प्र० २—प्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उ०—स्वास्थानात् यत्परस्थानं, प्रमादस्य वशाद्गतः।
भूयोऽप्यागमनं तत्र, प्रतिक्रमणमुच्यते ॥

अर्थ—प्रमादके वश होकर स्वस्थान (अपना त्रिकालीस्वभाव) को छोड़कर, परस्थान में (मोह, राग-द्वेष भावों) गया हो, वहाँ से अपने स्थानमें वापस आजाना, उसे प्रतिक्रमण कहते हैं।

प्र० ३—भगवान कुन्दकुन्द ने समयसार में प्रतिक्रमण किसे कहा है ?

उ०—शुभ और अशुभ अनेक विध, के कर्म पूरब जो किये।
उनसे निवर्ते आत्मको, वो आतमा प्रतिक्रमण है ॥३८३॥

अर्थ—पहले लगे हुए दोषों से आत्मा को निवृत करना सो प्रतिक्रमण है। इसलिए निश्चय से विचार करनेपर, जो आत्मा, त्रिकालके कर्मोंसे अपनेको भिन्न जानता है, श्रद्धा करता है और अनुभव करता है, वह आत्मा स्वयं ही प्रतिक्रमण है।

प्र० ४—प्रतिक्रमण के कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—द्रव्य प्रतिक्रमण और भाव प्रतिक्रमण।

प्र० ५—द्रव्यप्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उ०—वर्तमान में भूतकाल के संयोगों को ज्ञेयरूप जानना द्रव्यप्रतिक्रमण है। जैसे दिल्ली में बैठे हुए ज्ञानीको सम्मेदशिखर, गिरनार, ज्ञानी ध्यानियों का विचार आनेपर उन संयोगों को ज्ञेयरूप जानना, वह द्रव्यप्रतिक्रमण है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ६—भावप्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उ०—वर्तमान में भूतकाल के शुभाशुभावों को ज्ञेयरूपज्ञान में लेना, भाव भावप्रतिक्रमण है। जैसे दिल्लामें बैठे हुए ज्ञानीको सम्मेदशिखर और गिरनार में शुभाशुभभावों का ध्यान आने पर शुभाशुभावों को ज्ञेयरूप जानना, यह भावप्रतिक्रमण है।

प्र० ७—अप्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उ०—प्रमाद के वश होकर स्वस्थान को छोड़कर परस्थान में गया हो, फिर वहाँ से अपने स्थान में वापस नहीं आना, उसे अप्रतिक्रमण कहते हैं।

प्र ८—श्री कुन्दकुन्द भगवान ने समयसार में अप्रतिक्रमण किसे कहा है ?

उ०—अतीतकाल में जिन द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म को ग्रहण किया था उन्हें वर्तमानमें अच्छा समझना, उनके संस्कार रहना उनके प्रति ममत्व रहना, अप्रतिक्रमण है।

प्र० ९—अप्रतिक्रमण के कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—द्रव्यअप्रतिक्रमण और भावअप्रतिक्रमण।

प्र० १०—द्रव्यअप्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उ०—वर्तमान समय में भूतकाल के गुजरे हुए संयोगों को इष्ट-अनिष्ट मानना, द्रव्यअप्रतिक्रमण है। जैसे दिल्ली में बैठे हुए कोई जीव विचार कर रहा है कि सम्मेखदशिखर-गिरनार-ज्ञानी-ध्यानियों-का संयोग मुझे सदैव बना रहे और अनिष्ट संयोग कभी न रहे, यह द्रव्यअप्रतिक्रयण है।

प्र० ११—भावअप्रतिक्रमण किसे कहते हैं ?

उ०—वर्तमान में भूतकाल के शुभाशुभ भावों को इष्ट-अनिष्ट

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मानना, भावअप्रतिमक्रण है। जैसे—दिल्लीमें बैठे हुए कोई जीव सम्मेदशिखर और गिरनार में किये हुए शुभाशुभभावों में अशुभभाव जरा भी ना होवे और शुभभावों को बनाये रखनेका भाव, यह भाव-अप्रतिक्रमण है।

प्र० १२—प्रतिक्रमण से क्या तात्पर्य है ?

उ०—अनादिकालसे अज्ञानी भूतकाल की पर वस्तुओं को और शुभाशुभ भावों को स्मरण करके उन्हें इष्ट-अनिष्ट मानकर मिथ्यात्व-की पुष्टि कर रहा था, तो सत्गुरु कहते हैं। कि हे जीव ! भूतकाल सम्बन्धी द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म से दृष्टि उठाकर एकमात्र अपने भूतार्थ स्वभाव पर दृष्टि दे तो ज्ञेय-ज्ञायकपना प्रकट हो और शान्तिको प्राप्ति हो।

प्र० १३—आलोचना का मंगलाचरण क्या है ?

उ०—

नोकर्म, कर्म, विभाव, गुणपर्याय विरहित आतमा।
ध्याता उसे, उस श्रमणको होती परम-आलोचना ॥१०७॥
समभावमें परिणाम स्थापे और देखे आतमा।
जिनवर वृषभ उपदेशमें वह जीव है आलोचना ॥१०८॥
जड़कर्म-तरू-जड़नाश के सामर्थ्यरूप स्वभाव है।
स्वाधीन निज समभाव आलुंछन वही परिणाम है ॥११०॥
(नियमसार)

प्र १४—आलोचना किसे कहते हैं ?

उ०—अपने स्वरूप की (परमपारिणामिकभाव की) मर्यादा में रहकर ज्ञान करना, आलोचना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० १५—भगवान कुन्दकुन्द ने समयसार में आलोचना किसे कहा हैं ?

उ०—शभ और अशुभ अनेक विध है उदित जो इस काल में।
उन दोषको जो चेतता, आलोचना वह जीव हैं ॥३८५॥

अर्थ—वर्तमान दोष से आत्मा को पृथक करना सो आलोचना है। इसलिए निश्चयसे विचार करनेपर जो आत्मा त्रिकालके द्रव्यकर्म नोकर्म और भावकर्मों से अपने को भिन्न जानता है श्रद्धा करता है और अनुभव करता है वह आत्मा स्वयं ही आलोचना है।

१६—आलोचनाके कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—द्रव्य आलोचना ओर भावआलोचना।

प्र० १७—द्रव्यआलोचना किसे कहते हैं ?

उ०—वर्तमान में वर्तमान के संयोग सम्बन्ध को ज्ञेयरूप ज्ञानमें आना, द्रव्य आलोचना है। जैसे सम्मेदशिखर में बैठे हुए वर्तमानके संयोग सम्बन्ध को (नन्दीश्वरदीप की रचना, २४ टोकों, ज्ञानी ध्यानियोंको) ज्ञेय रूप ज्ञान में लेना, यह द्रव्य आलोचना है।

प्र० १८—भावआलोचना किसे कहते हैं ?

उ०—वर्तमान में हुए शुभशुभभावों को ज्ञेयरूप ज्ञान में लेना, भाव-आलोचना है। जैसे सम्मेदशिखर में बैठे हुए वर्तमान में होनेवाले शुभ-अशुभभावों को ज्ञेयरूप ज्ञान में लेना, यह भाव आलोचना है।

प्र० १९—अनालोचना किसे कहते हैं ?

उ०—अपने स्वरूप को मर्यादा में नहीं जानना, अनालोचना है।

प्र० २०—भगवान कुन्दकुन्द ने समयसार में अनालोचना किसे कहा है ?

उ०—वर्तमानकालमें जिन द्रव्यकर्म नोकर्म और भावकर्मको ग्रहण किया है। उन्हें वर्तमानमें अच्छा समझना, उनके संस्कार रहना उनके प्रति ममत्व रखना, अनालोचना है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० २१—अनालोचना के कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं-द्रव्य अनालोचना और भाव अनालोचना।

प्र० २२—द्रव्य अनालोचना किसे कहते हैं ?

उ०—वर्तमान में वर्तगान के संयोय सम्बन्धों को इष्ट-अनिष्ट मानना, द्रब्य अनालोचना हैं। जैसे गिरनार पर वैठे हुए वहाँ के संयोग सम्बन्धों की (पाँचवीटोंक-चौथीटोंक) चाहना करना और बुरे संयोग सम्बन्धों की चाहना ना करना, यह द्रव्य अनालोचना है।

प्र० २३—भावअनालोचना किसे कहते हैं ?

उ०—वर्तमान में वर्तमान के शुभशुभभावों को इष्ट-इनिष्ट मानना, भाव अनालोचना है। जैसे गिरनार पर्वतपर बैठे हुए वर्तमानके दया-दान-पूजा -अणुव्रत-महाव्रतादि भावोंको इष्ट मानना और अनिष्टभाव तनिक भी ना आवे, यह भाव अनालोचना है।

प्र० २४—वर्तमानमें हमको सच्चे-देव-गुरु-शास्त्र का संयोग मिला शुभभाव का अवसर मिला, क्या इसे भी हम अच्छा ना माने ?

उ०—वास्तवमें एकमात्र अपनी आत्माही भूतार्थ आश्रय करने योग्य है। स्वभावके आश्रयसे शुद्ध वीतरागदशा प्रकट करने योग्य उपादेय है। ज्ञानियों को भूमिकानुसार जो राग होता है उसे ज्ञानी हेय-ज्ञेय जानते हैं। परन्तु अज्ञानी अनादिसे एक-एक समय करके वर्तमान में देव-गुरु-शास्त्र के संयोग को, वर्तमान के शुभभावों को अच्छा मानकर पागल वना रहता है और इन्हें मोक्षमार्ग मानता है। आचार्य भगवान कहते हैं कि अपनी आत्माका अनुभव ना होनेसे शुभ अच्छा, अशुभ वुरा, यह अनन्त संसार का कारण है और महान पाप है।

प्र० २५—प्रत्याख्यान का मंगलाचरण क्या है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०

भावी शुभाशुभ छोड़कर, तजकर वचन विस्तार रे।
जो जीव ध्याता आत्म, प्रत्याख्यान होता है उसे ॥९५॥
कैवल्य दर्शन-ज्ञान-सुख कैवल्य शक्ति स्वभाव जो।
मैं हूँ वहीं, यह चिन्तवन होता निरन्तर ज्ञानि को ॥९६॥
निज भावको छोड़े नहीं, किंचित् ग्रहे परभाव नहिं।
देखे व जाने मैं वही, ज्ञानी करे चिन्तन यही ॥९७॥
जो प्रकृति स्थिति अनुभाग और प्रदेश बंध बिन आत्मा।
मैं हूँ वही, यों भावता ज्ञानी करे स्थिरता वहाँ ॥९८॥
मम ज्ञानमें है आत्मा, दर्शन चरितमें आतमा।
हैं और प्रत्याख्यान संवर, योगमें भी आतमा ॥१००॥
दृगज्ञान-लक्षित और शाश्वत मात्र-आतमा मम अरे।
अरू शेष सब संयोग लक्षित भाव मुझसे है परे ॥१०२॥

[नियमसार]

प्र० २६—प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उ०—आत्माकी जैसी प्रसिद्धि है वैसी ही उसकी मर्यादा में (स्वभाव सन्मुख) रहना उसे प्रत्याख्यान कहते हैं।

प्र० २७—भगवान कुन्दकुन्द ने समयसार में प्रत्याख्यान किसे कहा है ?

उ०—शुभ अरू अशुभ भावी करम का बंध हो जिनभाव में।
उनसे निर्वतन जो करे वो आतमा पचखाण है ॥३८४॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—भविष्य में दोष लगाने का त्याग करना, सो प्रत्याख्यान है। इसलिए निश्चय से विचार करनेपर, जो आत्मा त्रिकाल के द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्मों से अपने को भिन्न जानता है, श्रद्धा करता हैं, और अनुभव करता है, वह आत्मा स्वयं ही प्रत्गाख्यान है।

प्र० २८—समयसार गा० ३४ में "ज्ञान ही प्रत्याख्यान है" ऐसा क्यों कहा है ?

उ०—"सब भाव पर ही जान, प्रत्याख्यान भावों का करे।
इससे नियम से जानना कि, ज्ञान प्रत्याख्यान है ॥३४॥
ये और का है जानकर, पर द्रव्य को नर तजे।
त्यों और के हैं जानकर परभाव ज्ञानी परित्यजे ॥३५॥

भावार्थ—जैसे किसी पुरुष ने धोबीं के घर से अपने वस्त्र के धोखे से दूसरे का वस्त्र आने पर बिना पहिचान के उसे पहिनकर अपना जाना। बादमें उस वस्त्र का धनी जो कोई था, उसने अञ्चल पकड़कर कहा कि "यह वस्त्र तो मेरा है, पुनः कहा कि मेरा ही है" ऐसा सुनने पर उस पुरुष ने चिह्न देखा,जाना कि मेरा चिह्न तो मिलतानहीं, इससे निश्चय से यह वस्त्र मेरा नहीं है, दूसरे का है। उसके ऐसी प्रतीति होने पर त्याग हुआ घटित होता है। वस्त्र पहिने ही है तो भी त्याग घटित होता है, क्योंकि स्वामित्वपना छूट गया है; उसीप्रकार अनादिकाल से जीव मिथ्यादृष्टि है, इसलिए कर्मजनित जो शरीर, दुःख-सुख, रागद्वेष आदि विभाव पर्याय, उन्हें अपना ही जानता है और उन्हीं रूप प्रवर्तता है, हेय-उपादेय-ज्ञेयको नहीं जानता है। सत्गुरुका उपदेश सुना, हे भव्य ! जितने हैं जो शरीर, सुख-दुःख राग-द्वेष, मोह जिनको तू अपना जानता है और इनमें रत हुआ है, वे तो सब ही तेरे नहीं है। तू तो ज्ञानदर्शन का धारी शुद्ध चिद्रुप है। ऐसा निश्चय जिसकाल हुआ उसीसमय सकल द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्मका त्याग है। याद रहे—शरीर, सुख-दुख, जैसे ही थे वैसे हो है, परिणामों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से त्याग है, क्योंकि स्वामित्वपना छूट गया है इसका नाम "ज्ञान ही प्रत्याख्यान है" देखो ! ज्ञान हो गया कि वे मेरा नहीं, पीछे क्या उनको छोड़ना पड़ता है ? अरे भाई ! नहीं, परन्तु स्वयं छूट ही जाता है इसलिए ज्ञान ही प्रत्याख्यान है।

प्र० २९—प्रत्याख्यान के कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं—द्रव्य प्रत्याख्यान और भाव प्रत्याख्यान।

प्र० ३०—द्रव्य प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उ०—वर्तमान में जैसा संयोग सम्बन्ध है भविष्यके लिए भी ऐसा ही संयोग सम्बन्ध बना रहे ऐसे भाव का नहीं आना। यदि ऐसे संयोग आये तो ज्ञेयरूपसे आये, यह द्रव्य प्रत्याख्यान है। जैसे वर्तमान में सच्चेदेव-गुरु-धर्म का संयोग सम्बन्ध है। आगामी काल में ऐसा ही बना रहे, ऐसा भाव नहीं आता। परन्तु ज्ञेय रूप ज्ञान में आवे, यह द्रव्य प्रत्याख्यान है।

प्र० ३१ भाव प्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उ०—वर्तमान के शुभभावों को आगामी काल में वनाये रखने का भाव और अशुभभाव न आये ऐसा भाव, भविष्य के लिए नहीं आना अथवा आने पर उन्हें ज्ञेय रूप ज्ञान में लेना, भाव प्रत्याख्यान है। जैसे वर्तमान सम्मेदशिखर में बैठे हुए शुभभाव तो आते हैं, अशुभभाव नही आते हैं; भविष्य के लिए शुभाशुभ ज्ञेयरूप ज्ञान में आना, यह भाव प्रत्याख्यान है।

प्र० ३२—अप्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उ०—आत्मा की जैसी प्रसिद्धि हैं उसके सम्मुख ना रहकर उसकी मर्यादा का उल्लंघन करना अप्रत्याख्यान है।

प्र० ३३—भगवान कुन्दकुन्द ने समयसार में अप्रत्याख्यान किसे कहा है ?

उ०—आगामीकाल सम्बन्धी द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्मों की इच्छा रखना, ममत्व रखना, अप्रत्याख्यान है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ३४—अप्रत्याख्यान के कितने भेद हैं ?

उ०—दो भेद हैं-द्रव्यअप्रत्याख्यान और भाव अप्रत्याख्यान।

प्र० ३५—द्रव्य अप्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उ०—वर्तमान में द्रव्यकर्म-नोकर्म का जैसा सम्बन्ध है वैसा ही सम्बन्ध भविष्य में भी बनाये रखने का भाव द्रव्य अप्रत्याख्यान है। जैसे वर्तमान में सच्चेदेव गुरु-धर्म का संयोग सम्बन्ध हैं।आगामीकाल में ऐसा ही बना रहे, ऐसा भाव, द्रव्य अप्रत्याख्यान है।

प्र० ३६—भाव अप्रत्याख्यान किसे कहते हैं ?

उ०—वर्तमान में जैसे शुभभाव हैं, अशुभभाव नहीं है। आगामीकाल में ऐसे ही भाव बना रहे तो अच्छा हो, वह भाव अप्रत्याख्यान है। जैसे वर्तमान सम्मेदशिखर में वैठे हुए शुभभाव तो आते हैं और अशुभभाव जरा भी नहीं आते, भविष्य में भी ऐसे शुभभावोंको वनाये रखने का भाव, यह भाव अप्रत्याख्यान है।

प्र० ३७—आपने वर्तमान में जो अच्छा संयोग सम्बन्ध है और शुभभाव हैं, उन्हें आगामी बनाये रखने के भावका क्यों निषेध किया है ?

उ०—वर्तमान में जैसा अच्छा संयोग सम्बन्ध है, शुभभाव है वैसे ही आगामीकाल में बने रहेनेका तात्पर्य यह हुआ कि संसारमें ही घूमता रहे और निर्वाण की प्राप्ति ना हो। अरे भाई! ऐसे भाव अनन्त संसार का कारण है; इसलिए एक मात्र परम पारिणामिकरूप अपने आत्मा का आश्रय लेकर धर्मकी प्राप्ति ही सुख पानेका उपाय है।

प्र० ३८—श्री भगवान कुन्दकुन्द और अमृतचन्द्राचार्य जी ने प्रतिक्रमण-अप्रतिक्रमण, आलोचना-अनालोचना और प्रत्याख्यान-अप्रत्याख्यानका स्वरूप किन-किन गाथाओं और टीकामें बताया है ?

उ०—(१) समयसार गा० २८३ से २८५ तक तक अप्रतिक्रमणादिका स्वरूप समझाया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) समयसार गा० ३०६ तथा ३०७ में प्रतिक्रमण क्या है तथा गा० ३८३ से ३८६ तक प्रतिक्रमण आलोचना आदिका स्वरूप स्पष्ट किया है।

(३) समयसार गा० २१५ में "ज्ञानीके त्रिकाल सम्बन्धी परिग्रह नहीं हैं ऐसा बताया है।

प्र० ३९—क्या नियमसार में प्रतिक्रमणादि का स्वरूप बताया है ?

उ०—(१) नियमासार गा० ३८ से ५० तक किसके आश्रयसे प्रतिक्रमणादि उत्पन्न होते हैं, यह बताया है।

(२) गा० ७७ से १५८ तक की गाथाओं में प्रतिक्रमण आदि निश्चय चारित्र का वर्णन किया है।

(३) नियमसार गा० ११९ की टीका तथा फुटनोट में बताया है कि "मात्र परम पारिणामिकभाव का—शुद्धात्मद्रव्य सामान्य का—आलम्बन लेना चाहिए। उसका आलम्बन लेनेवाला भावही (वीतरागभाव ही) महाव्रत, समिति, गुप्ति, प्रतिक्रमण, आलोचना, प्रत्याख्यान, प्रायश्चित आदि सब कुछ है। (आत्मस्वरूपका आलम्वन, आत्मस्वरूपका आश्रय, आत्मस्वरूप के प्रति सन्मुखता, आत्मस्वरूपके प्रति झुकाव, आत्मस्वरूपका ध्यान, परम पारिणामिकभावकी भावना, मैं ध्रुव-शुद्ध-आत्मद्रव्यसामान्य हूँ "ऐसी परिणति—इन सबका एकही अर्थ हैं।)

प्र० ४०—समयसार में विषकुम्भ किसे कहा है ?

उ०—प्रतिक्रमण अरु प्रतिसरण, त्यों परिहण, निवृत्ति धारणा।
अरु शुद्धि, निन्दा, गर्हणा, ये अष्ट विध विष कुम्भ है ॥३०६॥

प्र० ४१—समयसार में अमृतकुम्भ किसे कहा है ?

उ०—अन प्रतिक्रमण अन प्रतिसरण, अनपरिहरण अन धारणा।
अनिवृत्ति, अनगर्हा, अनिन्द, अशुद्धि-अमृत कुंभ है ॥३०७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चौथा पाठ

भगवान आत्माकी छहबोलोसे सिद्धि

भगवान आत्मा परद्रव्यों से भिन्न ज्ञान स्वभावी है।

प्र० १—समयसार में भगवान आत्मा पर द्रव्यों से भिन्न है उसका मंगला चरण क्या है ?

उ०—रे ! शास्त्र है नहि ज्ञान, क्योंकि शास्त्र कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रू, शास्त्र अन्य प्रभू कहे ॥ ३९० ॥
रे ! शब्द है नहिं ज्ञान क्योंकि शब्द कुछ जाने नहीं।
इस हेतु से है ज्ञान अन्य रू, शब्द अन्य प्रभू कहे ॥ ३९१ ॥
रे ! रूप है नहिं ज्ञान, क्योंकि रूप कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रू रूप अन्य प्रभू कहे ॥ ३९२ ॥
रे ! वर्ण है नहिं ज्ञान क्योंकि वर्ण कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान, अन्य रू, वर्ण अन्य प्रभू कहे ॥ ३९३ ॥
रे गंध है नहिं ज्ञान, क्योंकि गंध कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रू, गंध अन्य प्रभू कहे ॥ ३९४ ॥
रे रस नहीं है ज्ञान क्योंकि रस जु कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रू अन्य रस जिनवर कहे ॥ ३९५ ॥
रे स्पर्श है नहि ज्ञान, क्योंकि स्पर्श कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रू, स्पर्श अन्य प्रभू कहे ॥ ३९६ ॥
रे कर्म है नहिं ज्ञान, क्योंकि कर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे हैं ज्ञान अन्य रू, कर्म अन्य जिनवर कहे ॥ ३९७ ॥
रे ! धर्म नहि है ज्ञान क्योंकि धर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रू, धर्म अन्य जिनवर कहे ॥ ३९८ ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहिं है अधर्म जु ज्ञान, क्योंकि अधर्म कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य, अधर्म अन्य जिनवर कहे ॥ ३९९ ॥
रे ! काल है नहिं ज्ञान, क्योंकि काल कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे है ज्ञान अन्य रू, काल अन्य प्रभू कहे ॥ ४०० ॥
आकाश है नहिं ज्ञान, क्योंकि आकाश कुछ जाने नहीं।
इस हेतुसे आकाश अन्य रू, ज्ञान अन्य प्रभू कहे ॥ ४०१ ॥
रे ! ज्ञान अध्यवसान नहिं क्योंकि अचेतन रूप है।
इस हेतुसे ज्ञान अन्य रू, अन्य अध्यवसान है ॥ ४०२ ॥
रे ! सर्वदा जाने हि इससे जीव ज्ञायक ज्ञानि है।
अरू ज्ञान है ज्ञायकसे, अव्यतिरिक्त यों ज्ञातव्य है ॥ ४०३ ॥
सम्यक्त्व अरु संयम तथा, पूर्वांगत सब सूत्र जो।
धर्माधरम दीक्षा सबहि, बुध पुरुष माने ज्ञानको ॥ ४०४ ॥

प्र० २—इन १५ गाथाओं में क्या बताया है ?

उ०—भगवान आत्माका शास्त्र, शब्द, गुरुका वचन, दिव्यध्वनि किसी प्रकारके आकारके साथ, काला-पीला, नीला, लाल, सफेदरूप के साथ, सुगंध, दुर्गन्धरूप गंधके साथ, खट्टा-मीठा-कड़ुआ-चर्परा-कषायला रुप रसके साथ, हल्का-भारी, ठंडा-गरम, रूखा-चिकना, कड़ा-नरमरूप स्पर्श के साथ, आठकर्मोंके साथ, धर्म, अधर्म, आकाश, कालके साथ, कर्म के उदयरूप अध्यवसानके साथ सम्बन्ध नहीं है। ऐसा अनादिसे जिनदेव कहते हैं क्योंकि आत्मा निरन्तर जानता है इसलिए ज्ञायक ऐसा जीव ज्ञानवाला है और ज्ञान ज्ञायकसे अभिन्न है ऐसा जानना चाहिए। यहाँ ज्ञान कहनेसे आत्माही समझना चाहिए ज्ञानी ज्ञान को ही सम्यग्दृष्टि, संयम, अंग पूर्वगतसूत्र, पुण्य-पाप, दीक्षा मानते हैं। तात्पर्य यह है कि अनादि अज्ञानसे होने वाली शुभाशुभ उपयोगरूप परसमय की प्रवृति को दूर करके सम्यक्‌दर्शन-ज्ञान-चारित्र में प्रवत्तिरूप स्वसमयको प्राप्त करके,उस स्वसमयरूप परिणमन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वरूप मोक्षमार्गमें अपने को परिणमित करके, जो सम्पूर्ण विज्ञानघन स्वभावको प्राप्त हुआ है, और जिसमें कोई त्याग-ग्रहण नहीं है। ऐसे साक्षात समयसार स्वरूप, परमार्थभूत, निश्चल रहा हुआ, शुद्ध पूर्ण आत्म द्रव्यको देखना चाहिये।

प्र० ३—आत्मा क्या करता है ?

उ०—आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम्।
परभावस्य कर्तात्मा,मोहोऽयं व्यवहारिणाम् ॥ ६२ ॥

अर्थ—चेतन आत्मा चेतनमात्र परिणाम को करता है अतः आत्मा स्वयं चेतना परिणाम मात्र स्वरूप है। आत्मा परभावका करता है ऐसा मानना सो व्यवहारी जीव का मोह (अज्ञान) है।

प्र० ४—क्या चेतन परिणाम से भिन्न अचेतन पुद्गल परिणाम-रूप कर्मका जीव करता है ?

उ०—सर्वथा नहीं करता है। चेतन द्रव्य ज्ञानावरणादि कर्मको करता है, ऐसा जानपना, ऐसा कहना मिथ्यादृष्टि जीवोंका अज्ञान है। ज्ञानावरणीय कर्म का कर्त्ता जीव है सो कहना झूठा है।

प्र० ५—आत्मा का कार्य ज्ञान है, उस ज्ञानका परसे सम्बन्ध नहीं है, इसके उपरसे कितने बोल निकलते हैं ?

उ०—हजारों वोल निकालते हैं, परन्तु उन सबका छह बोलोंमें समावेश करते हैं।

प्र० ६— छह बोल कौन-कौन से हैं ?

उ०—(१) ज्ञान अरूपी है। (२) ज्ञानको कोई काल या क्षेत्र विघ्न नहीं कर सकता है। (३) ज्ञान अविकारी है। (४) ज्ञान चैतन्य चमत्कार-स्वरूप है। (५) ज्ञान परका कुछ भी नहीं कर सकता है। (६) ज्ञान सर्व समाधानकारक है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ७—"ज्ञान अरूपी है" यह किसप्रकार है ?

उ०—भगवान आत्मा अरूपी है। उसके गुण अरूपी है और उसकी पर्याय भी अरूपी है, इसलिए आत्माका रूपीसे किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है।

प्र० ८—शास्त्रों से, भगवान की दिव्यध्वनि से, गुरु के वचनों से तो ज्ञान होता है ना ?

उ०—(१) बिल्कुल नहीं होता है, क्योंकि शास्त्र, दिव्यध्वनि, गुरु का शब्द-पुद्गल की स्कंधरूप रूपी पर्याय है, इनमें ज्ञानपना नहीं है। इसलिये जो रूपी है और जिसमें ज्ञान नहीं है ऐसा जो शास्त्र दिव्यध्वनि, शब्द आदि अरूपी ज्ञानघन आत्मा को, ज्ञान का कारण बने, ऐसा नहीं हो सकता है। अतः ज्ञान अरूपी है ऐसा सिद्ध होता है।

(२) यह हजारों शास्त्र हैं, यह स्थूल-स्थूल स्कंध है। इनमें वजन है। देखो, हजारों पुस्तकों का वजन उठाया नहीं जा सकता, लेकिन हजारों पुस्तकों का ज्ञान होने पर ज्ञान में जरा भी वजन नहीं लगता; इससे सिद्ध होता है कि "ज्ञान अरूपी है।"

प्र० ९—शास्त्रों से, दिव्यध्वनि से, गुरु के वचनों से, द्रव्यकर्म के क्षयोपशमादि से, और ज्ञेयों से ज्ञान होता है, ऐसा शास्त्रों में क्यों कहा है ?

उ०—कहने को तो है, वस्तु स्वरूप विचारने पर उसमें कर्त्ता-कर्म संबन्ध नहीं है। झूठा व्यवहारदृष्टि से ही जीव इनका कर्त्ता है, यह कहने के लिए सत्य है, क्योंकि व्याप्य-व्यापकपना एक ही द्रव्य में होता है, दो द्रव्यों में कभी भी नहीं होता है।

प्र० १०—जहाँ दो द्रव्यों का कर्त्ता-कर्म लिखा हो, वहाँ क्या अर्थ जानना चाहिए ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—जहाँ पर दो द्रव्यों का कर्त्ता कर्म लिखा हो, वहाँ पर व्यवहारनय की मुख्यता सहित व्याख्यान है उसे "ऐसा नहीं है, किन्तु निमित्तादि की अपेक्षा से यह उपचार किया है" ऐसा जानना।

प्र० ११—कोई कहे हम तो शास्त्रों से, दिव्यध्वनि से, गुरु के वचनों से, कर्म के क्षयादि से और ज्ञेयों से ही ज्ञान मानेंगे, तो उसके लिये क्या क्या कहा है ?

उ०—(१) "तस्य देशना नास्ति" जिनवाणी सुनने के अयोग्य है। (पुरुषार्थ सिद्धिपाय) (२) वह पद-पद पर धोखा खाता है; (प्रवचनसार) (३) ज्ञेयों से ज्ञान होता है ऐसो श्रद्धा को मिथ्यादर्शन, ऐसे ज्ञान को मिथ्याज्ञान और ऐसे आचरण को मिथ्याचारित्र कहा है; (समयसार २७०) (४) पर द्रव्य के कर्तृत्व का महा अहंकार रूप अज्ञान अंधकार है, जो अत्यन्त दुर्निवार है। (समयसार कलश ५५)

प्र० १२—'ज्ञान अरूपी है' इससे क्या तात्पर्य रहा ?

उ०—अरे भाई! जैसे ज्ञान से पर का सम्बन्ध नहीं है; उसीप्रकार सुख के लिए पाँचों इन्द्रियों के विषयों का, सम्यक्दर्शन के लिए दर्शन मोहनीय के उपशमादिक का और चारित्र के लिए बाहरी क्रिया तथा शुभभावों की आवश्यकता नहीं है।

प्र० १३—"ज्ञान को कोई काल या क्षेत्र विघ्न नहीं कर सकता है" यह किस प्रकार है ?

उ०— [अ] ज्ञान को कोई काल विघ्न नहीं कर सकता है। विचारो, पाँच मिनट पहले समय का ज्ञान करने में पाँच मिनट लगे और पाँच वर्ष पहले के समय का ज्ञान करने में पाँच वर्ष लगे, क्या ऐसा होता है ? आप कहेंगे नहीं; क्योंकि पाँच मिनट पहले और पांच वर्ष पहले के समय का ज्ञान करने में समान समय ही लगता है। इससे निर्णय हुआ "ज्ञान को कोई काल विघ्न नहीं कर सकता है।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[आ] ज्ञान को कोई क्षेत्र भी विघ्न नहीं कर सकता है। विचारो। जैसे हम दिल्ली में बैठे हैं तो दिल्ली का ज्ञान करने में थोड़ा समय लगे और दूर क्षेत्र बम्बई का ज्ञान करने में ज्यादा समय लगे, क्या ऐसा होता है? आप कहेंगे नही, क्योंकि क्षेत्र नजदीक का हो या दूर का हो, दोनों के ज्ञान करने में बराबर का समय लगता है। इससे यह निर्णय हुआ ज्ञान को कोई क्षेत्र भी विघ्न नहीं कर सकता है।

(ई) इसलिये ज्ञान को कोई काल या क्षेत्र विन्घ नहीं कर सकता है, ऐसा पात्र जीव जानते हैं।

प्र० १४—कोई ऐसा कहता है पंचम काल है यहाँ मोक्ष नहीं होता, और भरत क्षेत्र है यहाँ से मोक्ष नहीं होता है। देखो, मोक्ष प्राप्ति के लिए काल और क्षेत्र ने विघ्न डाला, और आप कहते हो "ज्ञान को कोई काल और क्षेत्र विघ्न नहीं करता" इसलिए आपकी बात झुठी है?

उ०—(१) तुम कभी चौथेकाल और विदेह क्षेत्र में थे या नहीं? तुम कहोगे कि 'थे'। तो हम पूछते हैं तुमको मोक्ष नहीं हुआ।

(२) जम्बुस्वामी आदि पंचमकाल में ही मोक्ष गये हैं।

(३) पूर्वभव का कोई बैरी देव विदेह क्षेत्र के भावलिंगी मुनि को यहाँ पटक जावे, तो वह मुनि उग्र पुरुषार्थ करके मोक्ष प्राप्त कर लेता है। यदि काल और क्षेत्र विघ्न करता हो इनका मोक्ष नहीं होना चाहिए था, इसलिए याद रक्खो, काल अच्छा हो या खराब हो, क्षेत्र अनुकूल हो या प्रतिकूल हो, किसी भी जीव को किसी भी समय क्षेत्र या काल विघ्न नहीं कर सकता हैं।

प्र० १५—फिर शास्त्रों में क्यों लिखा हैं कि पंचमकाल में मोक्ष नहीं होता?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—जो जीव पंचमकाल में उत्पन्न होगा, वह जीव इतना तीव्र पुरुषार्थ नहीं कर सकेगा कि वह दृष्टिमोक्ष को छोड़कर मोह-मुक्त मोक्ष, जीवनमुक्त मोक्ष और विदेह मुक्त मोक्ष को प्राप्त कर सके। ऐसा केवलज्ञानी के ज्ञान में आया है, इस अपेक्षा अर्थात् तीव्र पुरुषार्थ ना करने की अपेक्षा पंचम काल में मोक्ष नहीं होता है ऐसा शास्त्रों में लिखा है।

प्र० १६—क्या मोक्ष कई प्रकार के होते हैं ?

उ०—मोक्ष पाँच प्रकार के हैं, (१) शक्तिरूप मोक्ष, (२) दृष्टि मोक्ष, (३) मोह मुक्त मोक्ष, (४) जीवन मुक्त मोक्ष, (५) विदेह मुक्त मोक्ष,

प्र० १७—इन पाँचों मोक्षों को गुणस्थान की अपेक्षा समझाओ ?

उ०—(१) शक्ति रूप मोक्ष तो निगोद से लेकर सिद्ध दशा तक प्रत्येक जीव के पास अनादि अनन्त है। (२) दृष्टि मोक्ष, शक्ति रूप मोक्ष का आश्रय लेने से चौथे गुणस्थान में प्रकट होता है। (३) मोह मुक्त मोक्ष शक्ति रूप मोक्ष में विशेष एकाग्रता करने से दृष्टि मोक्ष के पश्चात् १२ वें गुणस्थान में प्रकट होता है। (४) जीवन मुक्त मोक्ष १३, १४वें गुणस्थान में प्रकट होता है (५) विदेह मुक्त मोक्ष १४ वें गुणस्थानों से पार सिद्ध दशा में प्रगट होता है।

प्र० १८—सब मोक्ष किसके आश्रय से प्रगट होते हैं ?

उ०—एक मात्र शक्ति रूप मोक्ष के आश्रय से ही चारों प्रकार के मोक्ष पर्याय में प्रगट होते हैं। इसलिए शक्ति रूप मोक्ष का आश्रय लिए बिना दृष्टि मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। (२) दृष्टि मोक्ष प्राप्त किये बिना मोह मुक्त मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। (३) मोह मुक्त मोक्ष प्राप्त किये बिना जीवन मुक्त मोक्ष की प्राप्ति नहीं होती है। (४) जीवन मुक्त मोक्ष प्राप्त किये बिना विदेह मुक्त मोक्ष

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की प्राप्ति नहीं होती है। यह जिन, जिनवर और जिनवर वृषभों से कथित अनादिअनन्त नियम है।

प्र० १९—पंचम काल में इन पाँच मोक्षों में से कोन-कोन से मोक्ष प्राप्त हो सकते हैं तथा ऐसे जीवों के नाम बताओ, जिनको इनकी प्राप्ति हुई हो ?

उ०—(१) शक्ति मोक्ष तो प्राणी मात्र के पास हैं। (२)दृष्टि-मोक्ष प्राप्त वर्तमान में सोनगढ़ के सन्त श्री कानजी स्वामी हैं, और जीव भी दृष्टि मोक्ष प्राप्त विचरते हैं ऐसा पात्र भव्य जीव जानते हैं।

प्र० २०—पंचम काल में दृष्टि मोक्ष की ही प्राप्ति हो सकती है, ऐसा कहीं शास्त्रों में उल्लेख है ?

उ०—(१) भगवान कुन्दकुन्दने मोक्षपाहुड गा० ७७ में कहा है कि "अभी इस पंचम काल में भी जो मुनि सम्यक्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की शुद्धता युक्त होते हैं, वे आत्मा का ध्यान कर इन्द्र पद अथवा लोकान्तिक देव पद को प्राप्त करते और वहाँ से चय कर निर्वाण को प्राप्त होते है।"

(२) आचार्य कल्प पं० टोडरमल जी ने आठवें अधिकार में लिखा है कि "यह काल साक्षात् मोक्ष न होने की अपेक्षा निकृष्ट है, आत्मानुभवनादिक द्वारा सम्यक्त्वादिक होना इस काल में मना नहीं हैं; इसलिए आत्मानु भवनादिक के अर्थ द्रव्यानुयोग का अवश्य अभ्यास करना।"

(३) कार्तिकेयानुप्रेक्षा के धर्तानुपेक्षा भावना में गाथा ४८७ की टीका में बतायाहै कि "इस काल में शुक्ल ध्यान तो नहीं होता, किन्तु धर्मध्यान होता है" तथा मोक्ष प्राभृत का हवाला दिया है। धर्म-ध्यान शुद्ध भाव है, यह चौथे गुणस्थान से सातवें गुणस्थान तक होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० २१—कोई कहे, हमको तो दृष्टि मोक्ष वाले जीव भी कहीं दिखाई नहीं देते हैं ?

उ०—जैसे सूर्य का प्रकाश होने पर उल्लू को दिखाई नहीं देता; उसी प्रकार अज्ञानी मूढ़ों को दृष्टि मोक्ष वाले जीव नहीं दिखाते हैं।

प्र० २२—बहुत से कहते हैं कि पंचम काल में निश्चय सम्यकत्व होता ही नही, क्या यह बात ठीक हैं ?

उ०—बिल्कुल गलत है, क्योंकि ज्ञानार्णव में लिखा है कि इस काल में दो-तीन सत्पुरुष है, अर्थात् थोड़े हैं।" यह सिद्ध हुआ पंचम काल में मोक्ष है। इसलिए पात्र-जीवों को जिनमत में जो मोक्ष का उपाय कहा है इससे मोक्ष होता ही होता है। इसलिए "ज्ञान को कोई काल या क्षेत्र विघ्न नहीं कर सकता" यह सिद्ध हो गया।

प्र० २३—"ज्ञान अविकारी है" यह किस प्रकार है ?

उ०—ज्ञान अविकारी है अर्थात् ज्ञान में विकार नहीं हैं। जैसे दस दिन पहले हमारी किसी के साथ लड़ाई हो गयी। लड़ाई के समय खूब लाल, पीले हुए। विचारो, वर्तमान समय में लड़ाई का ज्ञान तो कर सकते हैं, लेकिन लड़ाई के समय जैसे लाल, पीले हो रहे थे वैसे अब नहीं हो सकते और ज्ञान करते समम क्रोधादि भी मालूम नहीं पड़ता है। इसलिए यदि ज्ञान में विकार हो तो ज्ञान के समय क्रोधादि भी होना चाहिए, परन्तु ऐसा नहीं होता। इससे सिद्ध होता है ज्ञान में विकार नहीं है।

प्र० २४—'ज्ञान अविकारी है' इसका कोई दूसरा दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उ०—आज से पाँच वर्ष पहले हमने किसी को कटुवचन कह दिया हो, तो क्या आज ज्ञान करते समय ज्ञान में कटुता आवेगी ? आप कहेंगे, कभी नहीं। इसलिए यह सिद्ध हुआ ज्ञान अविकारी है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० २५—क्या शुभाशुभ विकारी भाव भी आत्मा से पृथक हैं ?

उ०—हाँ पृथक हैं। उपयोग उपयोग में है, क्रोधादि में उपयोग नहीं है; क्रोध-क्रोध में ही है, उपयोग में निश्चय से क्रोध नहीं है।

प्र० २६—शुभाशुभ भाव आत्मा में नहीं है ऐसा कहीं शास्त्रों में आया है ?

उ० (१) समयसार गा० ७१ की टीका में "क्रोधादि के और आत्मा के निश्चय से एक वस्तुत्व नहीं।" तथा ऐसा भी लिखा है कि "ज्ञान होते समय जैसे ज्ञान होता हुआ मालूम पड़ता है; उसी प्रकार क्रोधादि भी होते हुए मालूम नहीं पड़ते हैं।"

(२) समयसार गा० १८१ से १८३ तक में जैसे द्रव्यकर्म-नोकर्म आत्मा से भिन्न है। उसो प्रकार भावकर्म भी आतमा से भिन्न है। क्रोधादि में और ज्ञान में प्रदेश भेद होने से अत्यन्त भेद है, ऐसा कहा है।

(३) समयसार गा० २९४ में रागादि का और आत्मा का निज-निज लक्षण जान कर अपनी प्रज्ञारूपी छैनी को अपनी ओर सन्मुख करने से अलग-अलग हो जाते हैं।

इसलिए समयसार गा० ७१, १८१ से १८३ तक तथा २९४ की टीका भावार्थ सहित अभ्यास करना चाहिए। इससे सिद्ध होता है "ज्ञान अविकारी है।"

प्र० २७—बहुत से आदमी शभभावों से धर्म की प्रप्ति होती है, वह ऐसा क्यों कहते हैं ?

उ०—(१) शुभभावों से धर्म की प्राप्ति होती है ऐसा कोई मिथ्यावादी मानता है। क्योंकि जैसे लहसुन खाने से कस्तूरी की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

डकार नही आती उसी प्रकार शुभभावों से कभी भी मोक्षमार्ग की प्राप्ति नहीं होती।

प्र० २८—शुभभावों को समयसार में क्या क्या कहा है ?

उ०—(१) पुण्य भाव को धर्म का कारण मानने वाले को समयसार गा० १५४ में 'नपुंसक' कहा है। (२) गा० ७२ में पुण्यभाव को मल, मैल, अपवित्र, घिनावना, अशुचि, जड़स्वभावी, चैतन्य से अन्य स्वभाव वाला, आकुलता को उत्पन्न करने वाला, और दुःख का कारण कहा है। (३) गा० ७४ में विरुद्धस्वभावी, अध्रुव, अनित्य, अशरण, वर्तमान, में दुखरूप और भविष्य में भी दुःख का कारण, कहा है। (४) गा० ३०६ में विषकुम्भ कहा है। (५) समयसार गा० १५२ में आत्मा का अनुभव हुए विना व्रत-तप को बालव्रत और बालतप, कहा है।

प्र० २६—शुभभावों को छहढाला में क्या क्या कहा है ?

उ०—(१) पाँचवी ढाल में "आस्रव दुःखकार घनेरे, बुधिवन्त तिन्हें निरवेरे। जिन पुण्य-पाप नहिं कीना, आतम अनुभव चित दीना। तिन ही विधि आवत रोके, सम्वर लहि सुख अवलोके।"

(२) छठी ढाल में "यह राग-आग दहै सदा" कहा है।

(३) दूसरी ढाल में "शुभ-अशुभ बन्ध के फल मझार, रति-अरति करे निजपद विसार," कहा है। तथा "रागादि प्रगट ये दुःख देन," कहा है।

(४) पहली ढाल में "जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यक्दर्शन बिन दुःखपाय," कहा है।

प्र० २६—प्रवचनसार में शुभभावों को क्या कहा है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—गा० ११ की टीका में "शुभोपयोग हेय" कहा है। गा० ७७ में "पुण्यपाप में अन्तर डालता है वह घोर अपार संसार में भ्रमण करता है," ऐसा कहा है।

प्र० ३०—सोलह कारण की पूजा में पुण्यभाव को क्या कहा है ?

उ०—"पुण्य-पाप सब नाश के, ज्ञानभानु परकाश" तथा मंगल विधान में "पुण्यं समग्रमहमेकमना जुहोमि" अर्थात् समस्त पुण्य को एकाग्रचित्त से अग्नि में हवन करता हूँ। देव-गुरु शास्त्र की पूजा में "शुभ और अशुभ कीं ज्वाला से झुलसा है मेरा अंतस्तल" ऐसा कहा है।

प्र० ३१—योग सार में पुण्य को क्या कहा हैं ?

उ०—दोहा ७१ में ज्ञानी पुण्य को पाप जानते हैं, ऐसा कहा है।

प्र० ३२—पुरषार्थसिद्धिउपाय में पुण्य को क्या कहा है ?

उ०—गा. २२० में "शुभोपयोग अपराध" ऐसा कहा है।

प्र० ३३—शुभभाव को नपुंसक, अपराध आदि कहने से तात्पर्य क्या है ?

उ०—ज्ञान अर्थात् आत्मा अविकारी है। उसकी प्राप्ति किसी भी प्रकार के शुभभावों से नहीं हो सकती है, एक मात्र भूतार्थ का आश्रय लेकर अपना अनुभव करे, तो "ज्ञान अविकारी है" ऐसा माना।

प्र० ३४—"ज्ञान चैतन्य चमत्कार स्वरूप हैं" यह किस प्रकार हैं ?

उ०—केवलज्ञान में त्रिकालवर्ती सर्व पदार्थों का सम्पूर्ण स्वरूप प्रत्येक समय में सर्व प्रकार से एक साथ स्पष्ट ज्ञात होता है, ऐसी केवलज्ञान की अचिन्त्य अपार शक्ति है और प्रत्येक आत्मा में शक्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रूप से ऐसा ही स्वभाव है, ऐसा अरहंत-सिद्ध भगवान दर्शा रहे हैं। ऐसा जिसने जाना, माना, तब "ज्ञान चैतन्य चमत्कार स्वरूप है" कहा जावेगा।

प्र० ३५—"ज्ञान चैतन्य चमत्कार स्वरूप है" ऐसा छहढाला में कहीं बताया है ?

उ०—"सकल द्रव्य के गुण अनन्त, परजाय अनन्ता।
जानै एकै काल, प्रगट केवलि भगवन्ता॥
ज्ञान समान न आन जगत में सुख को कारन।
इहि परमामृत जन्म जरामृति-रोग निवारन॥

इसी कारण से "ज्ञान को चैतन्य चमत्कार स्वरूप कहा है।"

प्र० ३६—"ज्ञान चैतन्य चमत्कार स्वरूप है" जरा इसे खोल-कर समझाइए ?

उ०—(१) अनेक प्रकार की अलग-अलग चीजें कभी इकठ्टी नहीं हो सकती, परन्तु वे सब वस्तुएँ ज्ञान की एक समय की पर्याय में एक साथ जानी जा सकती है इसीलिए "ज्ञान चैतन्य चमत्कार स्वरूप है" कहा जाता है।

(२) बहुत वस्तुओं का भोगना एक साथ नहीं हो सकता, परन्तु ज्ञान बहुत वस्तुओं का भोग एक समय में एक साथ कर सकता है, इसलिए "ज्ञान चैतन्य चमत्कार स्वरूप है" कहा जाता है।

(३) एक बड़े कमरे में कुर्सी, मेज, पलंग आदि अनेक चीज पड़ी हैं आप उन्हें इकठ्टी नही कर सकते, परन्तु ज्ञान में एक साथ ले सकते हैं, इसीलिए "ज्ञान चैतन्य चमत्कार स्वरूप है" कहा जाता है।

(४) थाली में ५० चीजों का एक साथ भोग नहीं हो सकता, परन्तु ज्ञान में एक साथ भोग कर सकते हैं, इसीलिए "ज्ञान चैतन्य चमत्कार स्वरूप है" कहा जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ३७—पर वस्तु का विस्मय क्यों आता हैं ?

उ०—चारों गतियों में घूमकर निगोद में जाने की तैयारी है, इसलिए अज्ञानियों को पर वस्तु का विस्मय आता है।

प्र० ३८—पर वस्तु का विस्मय अज्ञानी किस-किस प्रकार करता है, उसका दृष्टान्त देकर समझाइए ?

उ०—(१) किसी के पास भूत-व्यन्तर आवे उसे सब नमस्कार करने पहुँच जाते हैं, क्योंकि अज्ञानी को उसकी महिमा है इसलिए पर वस्तु का विस्मय आता है आत्मा का विस्मय नहीं आता है।

(२) रूस ने बिना ड्राईवर का राकेट छोड़ा उसका विस्मय अज्ञानी को आता है परन्तु ज्ञान करने वाला स्वयं ज्ञान स्वरूप है उसका (अपनी आत्माका) विस्मय नहीं आता है, क्योंकि पर की महिमा है।

(३) अज्ञानी २४ घण्टे नौ प्रकार के पक्षों में पागल बन रहा है क्योंकि वह अनादि से एक-एक समय करके पर के विस्मय में पागल है।

प्र० ३९—पर का विस्मयपना कैसे मिटे ?

उ०—विस्मय करने वाले का जब तक विस्मय ना आवे, तब तक परवस्तु का विस्मयपना नहीं मिटता है। इसलिए पात्र जीव को अपनी आत्मा का विस्मय लाना चाहिए।

प्र० ४०—अपनी आत्मा का विस्मय कैसे, आवे ?

उ०—[उत्तर के लिए पृष्ठ ९ का प्रश्न नं० ३१ देखो।]

प्र० ४१—अपनी आत्मा का विस्मय लाने का कोई दूसरा भी उपाय है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—जब तक सच्चे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति ना हो, अर्थात् जब तक अपना विस्मय ना आवे, तब तक इनको भी अनुक्रम ही से अंगीकार करना :

(१) प्रथम तो परीक्षा द्वारा कुदेव, कुगुरु और कुधर्म की मान्यता छोड़कर, अरिहन्त देवादिकका श्रद्धान करना चाहिए क्योंकि उनका श्रद्धान करने से गृहीत मिथ्यात्व का अभाव होता है। मोक्षमार्ग में विघ्न करने वाले कुदेवादिकका निमित्त दूर होता है।

(२) फिर जिनमत में कहे हुए छह द्रव्य, सात तत्त्व, हेय-उपादेय ज्ञेय, त्यागने योग्य मिथ्यादर्शनादिक का स्वरूप और ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शनादिकका स्वरूप, निश्चय-व्यवहार, उपादान उपादेय, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, छह कारक, चार अभाव और छह सामान्य गुण आदि के नाम लक्षणादि सीखना चाहिए, क्योंकि इस अभ्यास से तत्त्व श्रद्धान की प्राप्ति होती है।

(३) फिर जिनसे स्व-पर का भिन्नत्व भासित हो, वैसे विचार करते रहना चाहिए, क्योंकि इस अभ्यास से भेद ज्ञान होता है।

(४) तत्पश्चात् एक स्वमें स्वपना मानने के हेतु, स्वरूप का विचार करते रहना चाहिए, क्योंकि इस अभ्यास से आत्मानुभव की प्राप्ति होती है।

इस प्रकार अनुक्रम से अंगीकार करके फिर उसी में से किसी समय देवादिक के विचार में, कभी तत्त्व विचार में, कभी स्व-पर के विचार में तथा कभी आत्मविचार में उपयोग लगाना चाहिए··· .... जीव पुरूषार्थ चालू रक्खे तो उसी क्रम से उसे सम्यग्दर्शन की प्राप्ति अर्थात् अपनी आत्मा का विस्मय आ जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ४२—मोक्षमार्ग में विघ्न करने वाले कुदेवादिक की क्या पहिचान है ?

उ०—(१) शरीर की क्रिया से,कर्म के क्षयादि से, शुभभाव करने से धर्म की प्राप्ति होती है।

(२) निमित्त मिले तो कल्याण हो।

(३) दया-दान, पूजा-यात्रा-अणुव्रत-महाव्रतादि के शुभ भावों से मोक्ष होता है आदि कथन करने वाले कुदेवादिक हैं। और जो एक मात्र अपनी आत्मा के आश्रय से ही धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है ऐसा कथन करने वाले वही सच्चे देवादिक है। इस निमित्त से अपना आश्रय ले, तो "ज्ञान चैतन्य चमत्कार-स्वरूप है" माना कहलायेगा।

प्र० ४३—"ज्ञान पर का कुछ नहीं कर सकता है" यह किस प्रकार है ?

उ०—एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता, उसे परिण-मित नहीं कर सकता, प्रेरणा नहीं कर सकता, लाभ-हानि नहीं कर सकता, उस पर प्रभाव नहीं डाल सकता, उसकी सहायता या उपकार नहीं कर सकता, उसे मार-जिला नहीं सकता—ऐसी प्रत्येक द्रव्य-गुण-पर्याय की सम्पूर्ण स्वतन्त्रता अनन्त ज्ञानियों ने पुकार-पुकार कर कही है, क्योंकि जगत में छहों द्रव्य नित्य स्थिर रहकर प्रति समय अपनी अवस्था का उत्पाद-व्यय करते रहते हैं; इस प्रकार अनन्त जड़ और चेतन द्रव्य एक-दूसरे से स्वतंत्र है; इसलिए वास्तव में किसी का नाश नहीं होता, कोई नया उत्पन्न नहीं होता है, और न दूसरे उनकी रक्षा कर सकते हैं; इसलिए ज्ञान पर का कुछ नहीं कर सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ४४—"ज्ञान पर का कुछ नहीं कर सकता है।" कुछ दृष्टान्त देकर समझाइए ?

उ०—(१) शरीर की बाल्य अवस्था के बाद कुमार अवस्था आती है। कुमार अवस्था के वाद युवा अवस्था आती है। युवा अवस्था के बाद प्रौढ़ अवस्था आती है। प्रौढ़ अवस्था के समय, बाल्य अवस्था का, कुमार अवस्था का, युवा अवस्था का ज्ञान एक साथ हो सकता है, परन्तु आत्मा इन सब अवस्थाओं को एक साथ नहीं ला सकता, क्योंकि "ज्ञान पर का कुछ नहीं कर सकता है।"

(२) शरीर की नीरोग अवस्था या शरीर की रोग अवस्था में से एक अवस्था हो, उस समय आत्मा दूसरी अवस्था का ज्ञान कर सकता है, परन्तु दूसरी अवस्था नहीं ला सकता, क्योंकि "ज्ञान पर का कुछ नहीं कर सकता है।"

(३) एक क्षेत्रावगाही रूप से रहने वाला इस शरीर की एक अवस्था के समय, दूसरी अवस्थाओं का ज्ञान आत्मा कर सकता है, परन्तु आत्मा उन अवस्थाओं को ला नहीं सकता, बदल नहीं सकता है। तब अत्यन्त भिन्न, परक्षेत्र में रहने वाले पदार्थों की कोई भी अवस्था आत्मा ला सके, बदल सके ऐसा त्रिकाल में नहीं हो सकता है, क्योंकि "ज्ञान पर का कुछ नहीं कर सकता है।"

(४) बुखार आया, खाँसी हुई, क्षय रोग हुआ, वुढ़ापा आया, बाल सफेद हो गये, मुंह साँपों जैसा भट्टा बन जाता है, सिनक बहता है, दस्त लग जाते हैं, फोड़ा हो जाता है, लड़का मर जाता है, माल चोरी हो जाता है, आग लग जाती है, आत्मा इन सबका ज्ञान कर सकता है परन्तु इनमें जरा भी हेर-फेर नहीं कर सकता है।"

प्र० ४५—कोई मनाषी कहता है कि आप कहते हो कि जीव शरीर आदि पर द्रव्यों का कुछ नहीं कर सकता, लेकिन हम प्रत्यक्ष देखते

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं कि हमने भाव किया तो हाथ उठाया, हमने चलने का भाव किया-तो चल निकले, हमने भाव—किये—तो शब्द निकाला, यह बात कैसे है ?

उ०—अज्ञानी को मिथ्यात्वरूपी पीलिया रोग हो गया है, इसलिए उसे जिनेन्द्र भगवान से विरुद्ध ही दिखता है। अच्छा भाई, तुम्हारे विचार में जीव शरीरादि पर का कार्य कर सकता है। तो हम तुमसे पूछते हैं—देखो, यह हाथ सीधा था, अब टेढ़ा हो गया, यह हमने किया। अब तुम इस हाथ को पीछे की तरफ लगा दो। वह कहता है कि ऐसा नहीं हो सकता, क्योंकि शरीर का ऐसा स्वभाव नहीं है। तो याद रखो, हाथ टेढ़ा भी अपने स्वभाव से ही हुआ है, जीव से नहीं।

(१) बाल सफेद हैं, आप तो नहीं चाहते, तो कर दो काले।
(२) शरीर का रंग काला है, आप तो नहीं चाहते, तो कर दो गोरा।
(३) शरीर में बुखार है, आप तो नहीं चाहते, तो कर दो दूर।
(४) बहरा है; वह तो नहीं चाहता, तो कर दो ठीक।
(५) अन्धा है, वह तो नहीं चाहता, कर दो ठीक।
(६) जुखाम-खाँसी हो गया, आप तो नहीं चाहते, कर दो दूर।
(७) फोड़ा हो गया, आप तो नहीं चाहते, कर दो ठीक।
(८) बवासीर हो गयी, आप तो नहीं चाहते, कर दो ठीक।
(९) बुढ़ापा आ गया, आप तो नहीं चाहते, कर दो ठीक।
(१०) धन सब चाहते हैं क्यों नहीं होता, ला दो तुम।
(११) माल खाया जाता है, बनता है विष्टा; आप तो खून चाहते हैं, बना दो।
(१२) टाँग कट गयी, आप तो नहीं चाहते, जोड़ दो।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

याद रखो, शरीर में जुखाम-खाँसी, फोड़ा फुन्सी, काला-गोरा यह पुद्गल का स्वतन्त्र परिणमन है, यह अपने स्वभाव से ही स्वयं बदलता है, क्योंकि प्रत्येक द्रव्य कायम रहता हुआ, अपना प्रयोजन भूत कार्य करता हुआ, स्वयं बदलता है—ऐसा वस्तु स्वभाव है।

(अ) अनादि काल से आज तक अनन्त शरीर धारण किये, लेकिन एक रजकण भी अपना नहीं बना।

(आ) केवली भगवान को अनन्त चतुष्ट्य प्रगटा है, वह उसी समय चार अघाति कर्म और औदारिक शरीर का अभाव नहीं कर सकते हैं। उनका भक्त कहलाने वाला कहे, हम कर सकते हैं, यह आश्चर्य है।

(इ) अज्ञानी को शरीरादि का कार्य मैं कर सकता हूँ, ऐसा दिखता है। जैसे चलती रेल में बैठकर बाहर देखें तो पेड़ चलते दिखते हैं। घोड़े के अण्डे के दृष्टान्त के समान समझना चाहिए।

प्र० ४६—आत्मा पर का कुछ नहीं कर सकता, ऐसा कहीं समयसार में लिखा है ?

उ०—(१) नास्ति सर्वोऽपि सम्बन्धः पर द्रव्यात्मतत्वयोः।
कर्तृकर्मत्व सम्बन्धाभावे तत्कर्तृता कुतः॥ कलश २००॥

अर्थ—पर द्रव्य और आत्म तत्व का (कोई भी) सम्बन्ध नहीं है, तब फिर उनमें कर्ता कर्म सम्बन्ध कैसे हो सकता है ? इस प्रकार जहाँ कर्ता कर्म सम्बन्ध नहीं है, वहाँ आत्मा के परद्रव्य का कर्तृत्व कैसे हो सकता है ? कभी भी नहीं हो सकता है।

(२) कलश १९९ में "जो अज्ञान अन्धकार से आच्छादित होकर आत्मा को (पर का) कर्ता मानते हैं, वे चाहे मोक्ष के इच्छुक हों, तोभी लौकिक जनों की तरह उनको भी मोक्ष नहीं होता।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कलश २०१ में "जो व्यवहार से मोहित होकर पर द्रव्य का कर्तापना मानते हैं। वह लौकिक जन हो या मुनिजन हो—वह मिथ्या दृष्टि हो है।"

(३) समयसार गा. ३०८ से ३११ तक में बताया है कि "समस्त द्रव्यों के परिणाम जुदे-जुदे हैं। सभी द्रव्य अपने-अपने परिणामों के कर्ता हैं; निश्चय से वास्तव में किसी का किसी के साथ कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं है; इसलिए जीव अपने परिणाम का ही कर्ता है, अपना परिणाम कर्म है। इसीतरह अजीव अपने परिणाम का ही कर्ता है, अपना परिणाम कर्म है। इस प्रकार जीव दूसरे के परिणामों का अकर्ता है।

(४) अज्ञानीजन ही व्यवहार विमूढ़ होने से पर द्रव्य को ऐसा देखते मानते हैं कि "यह मेरा है।" (समयसार गा० ३२४ से ३२७ की टीका से)।

(५) इस जगत में अज्ञानी जीवों का "पर द्रव्य को मैं करता हूँ" ऐसा पर द्रव्य के कर्तृत्व का महा अहंकार रूप अज्ञान अन्धकार जो अत्यन्त दुर्निवार है वह अनादि संसार से चला आ रहा है।

(समयसार कलश ५५)

(६) दो द्रव्य की क्रियाओं को एक द्रव्य करता है। ऐसा मानना जिनेन्द्र भगवान का मत नहीं है।

(समयसार गा० ८५ का भावार्थ)

(७) समयसार कलश ५१ से लेकर ५५ तक देखो।

(८) इस लोक में एक वस्तु का अन्य वस्तु के साथ समस्त सम्बन्ध ही का निषेध किया गया है। भिन्न-भिन्न वस्तुओं में कर्ता-कर्म की घटना नहीं होती; इसलिए ऐसा श्रद्धान करो कि कोई किसी का कर्ता नहीं है। पर द्रव्य पर का अकर्ता ही है।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ४६—मोक्षमार्ग प्रकाशक में एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कुछ नहीं कर सकता, कहीं कहाँ है ?

उ०—अनादिनिधन वस्तुएं भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती है, कोई किसी के आधीन नहीं है, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती। उन्हें परिणमित कराना चाहे, वह कोई उपाय नहीं है, वह तो मिथ्यादर्शन ही है।

प्र० ४७—"ज्ञान पर का कुछ नहीं कर सकता है" इसका रहस्य क्या है ?

उ०— हे आत्मा ! तेरा कार्य–ज्ञाता दृष्टा है। तू पर में जरा भी हेर-फेर नहीं कर सकता है, ऐसा जाने-माने तो उसकी दृष्टि अपने स्वभाव पर होती है वह पर्याय में भगवान बन जाता है, इस प्रकार धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता की प्राप्ति होती है।

प्र० ४८—"ज्ञान सब समाधान कारक है" यह किस प्रकार है ?

उ०—जैसे किसी जगह एक पागल बैठा था। वहाँ अन्य स्थान से आकर मनुष्य, घोड़ा और धनादिक उतरे, उन सबको वह पागल अपना मानने लगा, किन्तु वे सब अपने-अपने आधीन है, अत: इसमें कोई आवे, कोई जाय और कोई अनेक रूप से परिणमन करता है, इस प्रकार सब की क्रिया अपने-अपने आधीन है, तथापि वह पागल उसे अपने आधीन मानकर पागल होता है और उस पागल को किसी भले आदमी ने कहा, तू तो अलग है और यह सब अलग है, इनसे तेरा कोई सम्बन्ध नहीं है। उस पागल के दिमाग में यह बात आते ही बड़ा आनन्दित हुआ; उसी प्रकार यह जीव जहाँ शरीर धारण करता है, वहाँ किसी अन्य स्थान से आकर पुत्र, घोड़ा, धनादिक स्वयं प्राप्त होते हैं; यह जीव उन सबको अपना जानता है; परन्तु ये सभी अपने-अपने आधीन होने से कोई आते, कोई जाते और कोई अनेक अवस्था रूप से परिणमते हैं। क्या यह उसके

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आधीन है ? वास्तव में उसके आधीन नहीं है, तो भी अज्ञानी जीव उसे अपने आधीन मानकर खेद खिन्न होता है ऐसे समय में सद्गुरु देव ने कहा, तू तो अमूर्तिक प्रदेशों का पुंज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारक, अनादिनिधन, वस्तुरूप है तथा शरीर मूर्तिक पुद्गल द्रव्यों का पिंड, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों से रहित, नवीन ही जिसका संयोग हुआ है ऐसे यह शरीरादि पुद्गल जो कि तेरे से पर है, इनसे तेरा सम्बन्ध नहीं हैं, इतना सुनते ही सर्वसमाधान हो गया अर्थात् शान्ति की प्राप्ति हो गई इसलिए "ज्ञान सर्व समाधानकारक है" कहा जाता है।

प्र० ४६—"ज्ञान सर्व समाधानकारक हैं" इसको जरा और स्पष्ट कीजिए ?

उ०—अज्ञानी जीव तो रागादि भावों के द्वारा सर्व द्रव्यों को अन्य प्रकार से परिणमाने की इच्छा करता है, किन्तु ये सब द्रव्य जीव की इच्छा के आधीन नहीं परिणमते, इसलिए अज्ञानी को आकुलता होती है। यदि जीव की इच्छानुसार सब ही कार्य हो, अन्यथा न हों, तो ही निराकुलता रहे। तब सद्गुरुदेव ने कहा ऐसा तो हो ही नहीं सकता, क्योंकि किसी द्रव्य का परिणमन किसी द्रव्य के आधीन नहीं है। इसलिए सम्यक् अभिप्राय द्वारा स्व सन्मुख होने से ही रागादि भाव दूर होकर निराकुलता होती है ऐसा सुनते ही सर्व समाधान हो गये और परमें कर्ता-भोक्ता की खोटी बुद्धि का अभाव हो गया, इसलिए कहा जाता है "ज्ञान सर्व समाधानकारक है ?"

प्र० ५०—कोई लौकिक दृष्टान्त देकर समझाइये "ज्ञान सर्व समाधानकारक है ?"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—एक सेठजी थे। उनकी उम्र ८० वर्ष की थी। उनके एक ही एकलौता लड़का श्यामसुन्दर था। उनके पास १० लाख रुपया नकद था। सेठजी ने श्यामसुन्दर को बुलाकर कहा, देखो बेटा श्यामसुन्दर हमारे पास १० लाख रुपया नकद है बाकी जेवर दुकान मकान है ही। तुम तमाम उम्र कुछ न करो तो भी यह रुपया समाप्त ना होगा। इसका बैंक सूद ही इतना बैठता है कि तुम रुपये पैसों की तरफ से दुःखी ना रहोगे, लेकिन तुम याद रखना कि तुम किसी भी प्रकार का व्यापार ना करना। लड़के ने पिताजी के सामने तो हाँ करली। लेकिन बाद में उसने विचारा यह रुपयां तो पिताजी का कमाया हुआ है, मुझे स्वयं भी कमाना चाहिए। ऐसा विचार कर सट्टे का काम किया, उसमें जल्दी ही ५ लाख रुपया का घाटा हो गया। अब रुपया देने को चाहिए, यदि ना दिया जावे तो सात दिन बाद दिवाला करार दे दिया जाता था। चार दिन तो जैसे तैसे बीत गये। पाँचवे दिन श्यामसुन्दर ने अपने पिताजी के मित्र से कहा, चाचाजी, मैंने पिताजी के मने करने पर भी सट्टे का काम किया उसमें ५ लाख रुपया का घाटा हो गया। पिताजी को पता चलेगा, वह मुझे मारेंगे और घर से बाहर निकाल देंगे। अब आप किसी प्रकार कृपा करके पिताजी से यह रुपया दिलवाओ। वह मित्र उसके पिताजी के पास गया और कहा, कि श्यामसुन्दर ने सट्टे में ५ लाख रुपया का घाटा दे दिया है। यह सुनते ही सेठजी आपे से बाहर हो गये और कहा मैंने तो उसे व्यापार करने की मनाही की थी उसने व्यापार क्यों किया। मैं ५ लाख रुपया नहीं दूंगा, चाहे वह पकड़ा जावे—मर जावे। मैं तो अब उसका मुंह भी देखना नहीं चाहता।

मित्र ने कहा कल १२ बजे तक ५ लाख रुपया ना दोगे तो श्याम सुन्दर जहर खा कर मर जावेगा। फिर मित्र ने कहा जरा विचारा!

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तुम्हारी उम्र ८० वर्ष की हो गयी, अब दो चार साल ही जीना है परलोक में रुपया साथ जावेगा नहीं। सब रुपया आपने उसी को दे देना ही था, तो उसने उसमें से ५ लाख रुपया खो दिया, उसमें तुम्हारा क्या गया, उसी का गया। सेठजी को यह बात जच गयी, उनका सर्व समाधान हो गया और आकुलता मिट गयी। इससे सिद्ध हुआ "ज्ञान सर्वसमाधान कारक है।"

प्र० ५१—इन छह बोलों से क्या तात्पर्य रहा ?

उ०—शरीर, धन, सुख-दुख, अथवा शत्रु-मित्र जन (यह सब कुछ) जीव ध्रुव नहीं है के ध्रुव तो ज्ञानात्मक, दर्शनरूप, इन्द्रियों के बिना सबको जानने वाला महापदार्थ, ज्ञेय-पर्यायों का ग्रहण-त्याग न करने से अचल और ज्ञेय-पर द्रव्यों का आलम्बन न लेने से निरालम्ब है; इसलिए भगवान आत्मा एक है। एक होने से वह शुद्ध है। शुद्ध होने से ध्रुव है। ध्रुव होने से एक मात्र वही उपलब्ध करने योग्य है। ऐसा श्रद्धान-ज्ञान-अनुभव होना, यह ज्ञान के छह बोलो के जानने का तात्पर्य है। [प्रवचनसार गा० १९२ से १९३ तक का सार]

प्र०—इन छह बोल समझने वाले जीव को कैसे-कैसे भाव उत्पन्न नहीं होते हैं ?

उ०—(१) ऐसा क्यों, (२) इससे यह, (३) यह हो, यह ना हो आदि प्रश्न उपस्थित नहीं होते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाँचवा पाठ

समयसार गा० १४ तथा कलश १० का रहस्य

प्र० १— शुद्धनय क्या है ?

उ०—आदि अन्त पूरन-सुभाव-संयुक्त है। पर-स्वरूप पर-जोग कल्पना मुक्त है।। सदा एक रस प्रगट कहीं है जैन में, शुद्धनयातम वस्तु विराजै बैन में।।

अर्थ—जीव निगोद से लगाकर सिद्ध दशा तक परिपूर्ण स्वभाव से संयुक्त है और पर द्रव्यों की कल्पना से रहित है, सदैव एक चैतन्य रस से सम्पन्न है। ऐसा शुद्धनय की अपेक्षा जिनवाणी में कहा है। ऐसे त्रिकाली एक रूप का अनुभव होना, तव शुद्धनय का पता चलता है, अपने आपका अनुभव हुऐ त्रिना शुद्धनय का ज्ञान, अज्ञान है। वुधजनजी कहते हैं कि "जो निगोद में सो ही मुझमें, सो ही मोक्ष मंझार,निश्चय भेद कछु भी नाहीं, भेद गिनै संसार।

इसी वात को नियमसार में कहा है कि"जैसे सिद्ध आत्मा है; वैसे संसारी जीव है, जिससे (वे संसारी जीव सिद्धात्माओं की भाँति) जन्म-जरा-मरण से रहित और आठ गुणों से अलंकृत है ।।४७।। जिस प्रकार लोकाग्र में सिद्धभगवन्त अशरोरी, अविनाशी, अतीन्द्रिय, निर्मल और विशुद्धात्मा है; उसी प्रकार संसार में (सर्व) जीव जानना ।।४८।।

प्र० २—दसवें कलश में "शुद्धनय" को कैसा बताया है ?

उ०—आत्म स्वभावं परभाव भिन्नमापूर्णमाद्यंत विमुक्तमेकम्। विलीन संकल्प-विकल्प जालं प्रकाशयन् शुद्धनयोऽभ्युदेति ।।१०।।

अर्थ—शुद्धनय आतमा स्वभाव को प्रगट करता हुआ उदय रूप हुआ है। (१) वह शुद्धनय कैसा है ? (परभाव भिन्नम्)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर द्रव्यों और परभावों से भिन्न है। (२) और कैसा है ? (आपूर्णम्) आत्म स्वभाव समस्त रूप से पूर्ण है (३) और कैसा है ? (आद्यन्त विमुक्तं) आदि और अन्त से रहित अर्थात् अनादि अनन्त है। (४) और कैसा है ? (एकं) एक सर्वगुण भेदों से रहित है। (५) और कैसा है ? (विलीन संकल्प विकल्प जालं) संकल्प और विकल्पों से रहित है।

प्र० ३—समयसार गा० १४ में इन पाँचों बोलों को किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उ०—"अनबद्ध स्पृष्ट अनन्य अरु, जो नियत देखे आत्म को।
अविशेष अनसंयुक्त उसको शुद्धनय तू जान जो ॥१४॥

अर्थ—(१) [अबद्धस्पृष्टम्] बन्ध रहित और परके स्पर्श से रहित। (२) [अनन्यकं] अन्य-अन्यपने से रहित। (३) [नियतम्] चलाचल रहित। (४) [अविशेषम्] विशेष रहित अर्थात् भेद रहित। (५) [असंयुक्तं] अन्य के संयोग से रहित, बताया है।

प्र० ४—दसवें कलश और गा० १४ में जो पाँच पाँच बोल है, वह किस-किस अपेक्षा से है ?

उ०—(१) [द्रव्य अपेक्षा] पर द्रव्य और परभावों से भिन्न। अबद्धस्पृष्ट अर्थात् बन्धरहित पर के स्पर्श से रहित, ऐसा शुद्धनय है। (२) [क्षेत्र अपेक्षा] आपूर्ण अर्थात् समस्त रूप से पूर्ण। अनन्य अर्थात् अन्य-अन्यपने से रहित, ऐसा शुद्धनय है। (३) [काल अपेक्षा] अनादिअनन्त। नियत अर्थात् चलाचलता रहित, ऐसा शुद्धनय है। (४) [भाव अपेक्षा] एक अर्थात् अभेद। अविशेष अर्थात् विशेष रहित, ऐसा शुद्धनय है। (५) [भव अपेक्षा] संकल्प विकल्प जालों से रहित असंयुक्त अर्थात् अन्य के संयोग रहित, ऐसा शुद्धनय है। जो भव्यजीव ऐसे पाँच भाव रूप से एक अपनी आत्मा को देखता है। वह मोक्षरूपी लक्ष्मी का नाथ बन जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ५—द्रव्य अपेक्षा से आत्मा अबद्ध-अस्पृष्ट, पर द्रव्य और परभावों से भिन्न है। इसका क्या रहस्य है, दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उ०—जैसे कमलिनी का पत्र जल में डूबा हुआ है उसका जल से स्पर्शित रूप अवस्था से अनुभव किये जाने पर जल से स्पर्श रूप अवस्था भूतार्थ है—सत्यार्थ है उसीसमय कमलिनी पत्र के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर जल से स्पर्श रूप दशा अभूतार्थ है-असत्यार्थ है; उसीप्रकार आत्मा अनादि पुद्गल कर्म से बद्ध स्पर्श रूप अवस्था से अनुभव किये जाने पर बद्ध-स्पर्शपना भूतार्थ है—सत्यार्थ है उसीसमय पुद्गल से किंचित मात्र भी बद्ध-स्पर्श न होने योग्य आत्म स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर बद्ध-स्पर्शता अभूतार्थ है—असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है आत्मा कर्मों से बंधा हुआ-स्पर्शा हुआ है उसीसमय स्वभाव की अपेक्षा से देखने पर कर्मों से बंधा और स्पर्शा हुआ नहीं है, ऐसा जानकर अपने स्वभाव की दृष्टि करे, तो आठों कर्मों का अभाव होकर "स मुक्त एव" बन जाता है।

प्र० ६—क्या आत्मा का कर्मों से सम्बन्ध होते हुए भी आत्मा का अनुभव हो सकता है और उसका क्या फल है ?

उ०—हाँ, हो सकता है, क्यों कि कर्मों का सम्बन्ध अभूतार्थ है और भगवान आत्मा भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने यही बात इसमें बतलायी है और इसका फल (आत्मा के अनुभव का फल) आठों कर्मों का अभाव वताया है।

प्र० ७—सम्यग्दर्शन होते ही आठों कर्मों का अभाव कैसे हो जाता है ?

उ०—(१) जीव अज्ञान दशा में अपने स्वरूप की असावधानी रखता था उसमें मोहनीय कर्म का उदय निमित्त होता था, अब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपना अनुभव होने पर अपने स्वरूप की सावधानी रखता है। इस से मोहनीय कर्म का अभाव होगया।

(२) स्वरूप की असावधानी होने से अज्ञानी जीव अपना ज्ञान पर की ओर मोड़ता था उसमें ज्ञानावरणीयकर्म का उदय निमित्त होता था, अब अपना ज्ञान अपनी ओर लगाने से ज्ञानावरणीय कर्म का अभाव होगया।

(३) स्वरूप की असावधानी होने से अज्ञानी जीव अपना दर्शन पर की ओर मोड़ता था उसमें दर्शनावरणीय कर्म का उदय निमित्त होता था, अब अपना दर्शन अपनी ओर लगाने से दर्शनावरणीय कर्म का अभाव होगया।

(४) स्वरूप की असावधानी होने से अज्ञानी जीव अपना वीर्य पर कीओर मोड़ता था। उसमें अन्तराय कर्म का उदय निमित्त होता था, अब अपना वीर्य अपनी ओर लगाने से अन्तराय कर्म का अभाव हो गया।

(५) पर की ओर झुकाव से अज्ञानी जीव को पर का संयोग होता था। इसमें नाम कर्म का उदय निमित्त होता था, अब पर की ओर झुकाव ना होने से, अपनी ओर झुकाव होने से नाम कर्म का अभाव हो गया।

(६) जहाँ शरीर हो वहाँ ऊँच-नीच कुल में उत्पत्ति होती थी उसमें गोत्रकर्म का उदय निमित्त होता था, अब ऊँच-नीच पना से रहित ज्ञायक स्वभाव की ओर झुकाव होने से गोत्र कर्म का अभाव हो गया।

(७) जहाँ शरीर होता है, वहाँ बाहर की अनुकूलता-प्रतिकूलता, रोग-निरोग आदि होते थे उसमें वेदनीय कर्म का उदय निमित्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता था, अब शरीर की अनुकूलता-प्रतिकूलता आदि का भाव ना होने की अपेक्षा वेदनीय कर्म का अभाव होगया।

(८) अज्ञानदशा में भव के भाव जीव ने किये होने से आयु का बंध होता था, अब भव के भाव का अभाव होने से आयु का अभाव हो गया।

इस अपेक्षा से सम्यग्दर्शन होते ही आठों कर्मों का अभाव हो जाता है। इसलिए अबद्धस्पृष्ट रूप अपने भगवान का आश्रय लेकर शान्ति की प्राप्ति करना भव्य जीव का परम कर्तव्य है।

प्र० ८—क्षेत्र अपेक्षा से आत्मा अनन्य, समस्त प्रकार से पूर्ण है, इसका क्या रहस्य है, दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उ०—जैसे मिट्टी का, ढक्कन, घड़ा, झारी इत्यादि पर्यायों से अनुभव करने पर अन्यत्व भूतार्थ है—सत्यार्थ है, उसीसमय सर्व पर्याय भेदों से किंचित् मात्र भी भेदरूप न होने वाले ऐसे एक मिट्टी के स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व अभूतार्थ है—असत्यार्थ है; उसीप्रकार आत्मा का नारक आदि पर्यायों के अन्य-अन्य रूप से अन्यत्व भूतार्थ है—सत्यार्थ है उसीसमय सर्व पर्याय भेदों से किंचित् मात्र भेद रूप न होने वाले एक चैतन्याकार असंख्यात प्रदेशी आत्म स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अन्यत्व अभूतार्थ है—असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि गति सम्वन्धी शरीर होने पर, शरीर सम्वन्धी नाम कर्मादि का उदयादि होने पर और गति सम्वन्धी भाव होने पर भी गति रहित स्वभाव एक रूप पड़ा है। जरा उसको ओर दृष्टि करते ही चारों गतियों का अभाव होकर पंचम गति की प्राप्ति होती है।

प्र० ९—क्या चारों गतियों का शरीर, कर्मादि और भावकर्म होने पर भी आत्मा का अनुभव हो सकता है और उसका फल क्या है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—हाँ, हो सकता है, क्योंकि गति सम्बन्धी शरीर, कर्म का उदय और गति सम्बन्धी भाव अभूतार्थ हैं और भगवान आत्मा गति रहित स्वभाव भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य जी ने यही बात दूसरे बोल में समझायी है और इसका फल चारों गतियों के अभाव रूप मोक्ष की प्राप्ति बताया है। इसलिए शरीर, कर्म और शरीर सम्बन्धी भावों से रहित अगति स्वभाव पर दृष्टि करके पात्र जीवों को अपना कल्याण तुरन्त कर लेना चाहिए।

प्र० १०—क्या आत्मा का अनुभव होते ही चारों गतियों के अभाव रूप मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है ?

उ०—जैसे लड़की का रिस्ता पक्का करने पर सगाई, विवाह ना होने पर भी विवाह हो गया; उसी प्रकार सम्यग्दर्शन होने पर एक दो भव होने पर भी ज्ञानी की दृष्टि अगति स्वभाव पर होने से चारों गति के अभावरूप मोक्ष प्राप्ति कही जाती है। वास्तव में जब तक सम्यक्दर्शन नहीं है, तब तक चार गति रूप निगोद है और सम्यग्दर्शन होते ही चार गति के अभाव रूप मोक्ष हैं, क्योंकि चार गतियों के भाव के फल के अन्त में निगोद है और अगति रूप स्वभाव के लक्ष्य से मोक्ष हैं।

प्र० ११—मोक्ष कितने प्रकार का है ?

उ०—पाँच प्रकार का है—(१) शक्ति रूप मोक्ष, (२) दृष्टि मोक्ष, (३) मोह मुक्त मोक्ष, (४) जीवन मुक्त मोक्ष, (५) विदेह मुक्त मोक्ष। याद रखना चाहिए (अ) शक्ति रूप मोक्ष के आश्रय से ही दृष्टि मोक्ष की प्राप्ति होती है। (आ) दृष्टि मोक्ष प्राप्त होने पर मोह मुक्त मोक्ष की प्राप्ति होती है। (इ) मोह मुक्त मोक्ष प्राप्त होने पर ही जीवन मुक्त मोक्ष की प्राप्ति होती है। (ई) जीवन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुक्त मोक्ष प्राप्त होने पर ही विदेह मुक्त मोक्ष की प्राप्ति होती है, यही अनादिअनन्त नियम है।

प्र० ९२—काल अपेक्षा से आत्मा नियत, अनादिअनन्त है, इसका रहस्य क्या है, द्रष्टान्त देकर समझाइए ?

उ०—जैसे, समुद्र का वृद्धि-हानि रूप अवस्था में अनुभव करने पर अनियतता भूतार्थ-सत्यार्थ है उसीसमय नित्य स्थिर समुद्र स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अनियतता अभूतार्थ है—असत्यार्थ है; उसीप्रकार आत्मा का, वृद्धि-हानि रूप पर्याय भेदों से अनुभव करने पर अनियतता भूतार्थ है-सत्यार्थ है उसीसमय नित्य-स्थिर आत्म स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर अनियतता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है । तात्पर्य यह है कि आत्मा की पर्याय में हानि-वृद्धि होने पर भी हानि-वृद्धि रहित एक रूप स्वभाव पृथक् पड़ा है, उसकी ओर दृष्टि करे, तो पंच परावर्तन रूप संसार का अभाव हो जाता है।

प्र० ९३—क्या पर्याय में हानि-वृद्धि होने पर भी पंच परावर्तन रूप संसार का अभाव हो सकता है और उसका फल क्या है ?

उ०—हाँ, हो सकता है, क्योंकि पर्याय में हानि-वृद्धि पना अभूतार्थ है और स्वभाव भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्यजी ने तीसरे बोल में यही बात बतलायी है और हानि-वृद्धि रहित स्वभाव के आश्रय का फल पंच परावर्तन का अभाव बताया है।

प्र० ९४—पंच परावर्तन का स्वरूप संक्षेप में क्या है ?

उ०—(१) जीव का विकारी अवस्था में कर्म-नोकर्म रूप पुद्गलों के साथ जो सम्बन्ध होता है उसे द्रव्य परावर्तन कहते हैं। इस जीव ने लोककाश में जितने पुद्गल हैं उनका अनन्तबार ग्रहण किया और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छोड़ा लेकिन मैं भगवान आत्मा हूँ ऐसा नहीं समझा अतः द्रव्य परावर्तन करना पड़ा। (२) जीव को विकारी अवस्था में आकाश-के क्षेत्र के साथ होने वाले सम्बन्ध को क्षेत्र परावर्तन कहते हैं। इस जीव ने सम्पूर्ण लोकाकाश के क्षेत्रों में अनन्तबार जन्मा और मरा लेकिन मैं भगवान आत्मा हूँ ऐसा अनुभव नहीं किया, अतः क्षेत्र परावर्तन करना पड़ा। (३) उत्सर्पिणी और अवसर्पिणी काल में ऐसा कोई काल नहीं,जहाँ यह जीव अनन्तबार जन्मा और मरा ना हो, परन्तु मैं भगवान आत्मा हूँ ऐसा अनुभव नहीं किया अतः काल परावर्तन करना पड़ा। (४) मिथ्यात्व के संसर्ग सहित नरकादि की जघन्य आयु वाले भव से लेकर नववें ग्रैवेयक तक भवों की स्थिति को यह जीव ने अनन्तबार प्राप्त की और छोड़ी, परन्तु मैं भगवान आत्मा हूँ ऐसा अनुभव नहीं किया अतः भव परावर्तन करना पड़ा। (५) अशुभ भाव से लेकर शुक्ललेश्या तक के भाव इस जीव ने अनन्तबार किये और छोड़े परन्तु मैं भगवान आत्मा हूँ ऐसा अनुभव नहीं किया अतः भाव परावर्तन करना पड़ा। यदि एक बार हानि-वृद्धि रहित स्वभाव की दृष्टि कर ले, तो उसी समय पंच परावर्तन का अभाव हो जाता है।

प्र० १५—यदि मनुष्य भव में जहाँ सच्चेदेव-गुरु-धर्म का सम्बन्ध मिला, वहाँ जीव अपना कल्याण ना करे, व्यर्थ के कोलाहल में लगा रहे, तो क्या होगा ?

उ०—चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद में चला जायेगा।

प्र० १६—मनुष्य भव में दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी यदि व्रतादिक में ही लाभ मानता रहा तो निगोद जाना पड़ेगा, यह कहाँ लिखा है ?

उ०—(१) जब तक लोहा गरम है तब तक उसे पीट लो-गढ़

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लो; इस कहावत के अनुसार इसी मनुष्य भव में जल्दी आत्म स्वरूप को समझ लो, अन्यथा थोड़े ही समय में त्रस काल पूरा हो जायेगा और एकेन्द्रियनिगोद पर्याय प्राप्त होगी और उसमें अनन्तकाल तक रहना होगा इसलिए इस मनुष्य भव में ही पात्र जीवों को आत्मा का सच्चा स्वरूप समझकर सम्यक्दर्शनादि की प्राप्ति कर लेना चाहिए, क्योंकि आचार्य कल्प पं० टोडरमल जी ने कहा है कि "यदि इस अवसर में भी तत्त्व निर्णय करने का पुरुषार्थ न करे, प्रमाद से काल गंवाये,या तो मन्द रागादि सहित विषय-कषायों के कार्यों में ही प्रवर्तें या व्यवहार धर्म कार्यों में प्रवर्ते, तब अवसर चला जावेगा और संसार में ही भ्रमण होगा………ऐसे समय में मोक्षमार्ग में प्रवर्तन नहीं करे, तो किंचित् विशुद्धता पाकर फिर तीव्र उदय आने पर निगोदादि पर्याय को प्राप्त करेगा, इसलिए अवसर चूकना योग्य नहीं है। अव सर्व प्रकार से अवसर आया है ऐसा अवसर प्राप्त करना कठिन है। इसलिए वर्तमान में श्री गुरु दयालु होकर मोक्ष-मार्ग का उपदेश दे रहे हैं, उसमें भव्य जीवों को प्रवृत्ति करना योग्य है।

प्र० १७—भाव अपेक्षा से आत्मा अविशेष-एक है इसका क्या रहस्य है, द्रष्टान्त देकर समझाइए ?

उ०—जैसे सोने का, चिकनापन, पीलापन, भारीपन इत्यादि गुण रूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता भूतार्थ है—सत्यार्थ है उसी समय जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये है ऐसे स्वर्ण स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर विशेषता अभूतार्थ है—असत्यार्थ है; उसीप्रकार आत्मा का, ज्ञान—दर्शन आदि गुण रूप भेदों से अनुभव करने पर विशेषता भूतार्थ है—सत्यार्थ है, उसीसमय जिसमें सर्व विशेष विलय हो गये हैं ऐसे आत्म स्वभाव के समीप जाकर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अनुभव करने पर विशेषता अभूतार्थ है—असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि आत्मा में गुण भेद संज्ञा, संख्या प्रयोजन आदि की अपेक्षा से है प्रदेश भेद नहीं है। आत्मा में गुणभेद होने पर तू अभेद भगवान ज्ञायक स्वभावी है ऐसा जानकर अभेद स्वभावी का आश्रय ले, तो मिथ्यात्व अविरति प्रमाद, कषाय और योग का अभाव होकर शान्ति की प्राप्ति हो।

प्र० १८—क्या गुणभेद होने पर भी पाँच संसार के कारणों का अभाव हो सकता है और उसका फल क्या है ?

उ०—हाँ, हो सकता है क्यों कि गुणभेद अभूतार्थ है और भगवान आत्मा अभेद भूतार्थ है। भगवान अमृतचन्द्राचार्य जी ने चौथे बोल में यही बात समझाई है कि तू अभेद स्वभाव की दृष्टि करे तो पाँच संसार के कारणों का अभाव होकर सिद्धदशा की प्राप्ति हो।

प्र० १९—संसार के पाँच कारण कौन-कौन हैं, जिनसे संसार परिभ्रमण होता है ?

उ०—मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग है जो संसार परिभ्रमण के कारण है।

प्र०—मिथ्यात्व क्या है।

उ०—(१) मिथ्यात्व—अनादि से एक-एक समय करके अज्ञानी की मिथ्यात्व दशा है। सम्पूर्ण दुःखों का मूलकारण मिथ्यात्व ही है। जीव के जैसा श्रद्धान है, वैसा पदार्थ स्वरूप न हो और जैसा पदार्थ स्वरूप ना हो वैसा यह माने यह मिथ्यादर्शन है। अज्ञानी जीव स्व और शरीर को एक मानता है, किसी समय अपने को पतला, मोटा, बुखार वाला, कड़ा, नरम, काला गौरा, आदि मानता है यह मिथ्या दर्शन है।

प्र० २०—मिथ्या दर्शन को समझाने के लिए आचार्य कल्प पं० टोडरमल जी ने क्या द्रष्टान्त और सिद्धान्त समझाया है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—(अ) (१) जैसे पागल को किसी ने वस्त्र पहिना दिया। वह पागल उस वस्त्र को अपना अंग जानकर अपने को और वस्त्र को एक मानता है; उसीप्रकार इस जीव को कर्मोदय ने शरीर सम्बन्ध कराया। यह जीव इस शरीर को अपना अंग जानकर अपने को और शरीर को एक मानता है।

(२) जैसे वह वस्त्र पहिनाने वाले के आधीन होने से कभी वह फाड़ता है, कभी जोड़ता है, कभी खोंसता है, कभी नया पहिनाता है इत्यादि चरित्र करता है; उसी प्रकार वह शरीर कर्म के आधीन (निमित्त से) कभी कृष होता है, कभी स्थूल होता है, कभी नष्ट होता है, कभी नवीन उत्पन्न होता है इत्यादि चरित्र होते हैं।

(३) जैसे वह पागल उसे अपने आधीन मानता है; उसकी पराधीन क्रिया होती है, उससे वह महाखेद खिन्न होता है; उसीप्रकार यह जीव उसे अपने आधीन मानता है, उसकी पराधीन क्रिया होती है, इससे वह महा खेद खिन्न होता है।

(आ) (१) जैसे जहाँ वह पागल ठहरा था, वहाँ अन्य स्थान से आकर मनुष्य, घोड़ा और धनादिक उतरे उन सबको वह पागल अपना मानने लगा, किन्तु वे सभी अपने अपने आधीन हैं, अतः इसमें, कोई आवे और कोई जावे अनेक अवस्था रूप से परिणमन करता है, इस प्रकार सबकी क्रिया अपने अपने आधीन है तथापि वह पागल उसे अपने आधीन मानकर खेदखिन्न होता है; उसीप्रकार यह जीव जहाँ शरीर धारण करता है वहाँ किसी अन्य स्थान से आकर पुत्र, घोड़ा, और धनादिक स्वयं प्राप्त होते हैं; यह जीव उन सबको अपना जानता है; परन्तु ये सभी अपने-अपने आधीन होने से कोई आते हैं कोई जाते हैं, और अनेक अवस्था रूप से परिणमते हैं। क्या यह उसके आधीन है? ये जीव के आधीन नही है, तो भी यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव उसे अपने आधीन मानकर खेदखिन्न होता है यह सब मिथ्यादर्शन है।

प्र० २२—यह जीव स्वयं जिस प्रकार है उसी प्रकार अपने को नहीं मानता, किन्तु जैसा नहीं है वैसा मानता है यह मिथ्यादर्शन है, यह जरा खोलकर समझाइए ?

उ०—जीव स्वयं अमूर्तिक प्रदेशों का पुंज, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों का धारक अनादिनिधन वस्तु स्व है। तथा शरीर मूर्तिक पुद्‌गल द्रव्यों का पिण्ड, प्रसिद्ध ज्ञानादि गुणों से रहित, नवीन ही जिसका संयोग हुआ है ऐसे यह शरीरादिक पुदगल पर हैं। इन दोनों के संयोग रूप मनुष्य तिर्यंचादि अनेक प्रकार की अवस्थाएँ होती हैं। मूढ़ जीव इनमें अपना पना मानता है, स्व और पर का विवेक ना होने से यह मिथ्यादर्शन है।

प्र० २२—मिथ्यादर्शन की कुछ पहिचान बताइये ?

उ०—(१) नौ प्रकार के पक्ष में अपने पने की बुद्धि; (२) स्व-पर की एकत्व बुद्धि; (३) शुभभावों से धर्म होता है ऐसी बुद्धि; (४) ज्ञेय से ज्ञान होना मानना; (५) शुभाशुभ भावों का ग्रहण-त्याग रूप बुद्धि; (६) अपने को नरकादि रूप मानने की बुद्धि; (७) पर में इष्ट-अनिष्ट की बुद्धि; (८) मनुष्य-तिर्यंचों के प्रति करुणाभाव आदि मान्यताएँ, मिथ्यादर्शन के चिन्ह है।

प्र० २३—मिथ्यात्व की पहिचान क्यों बताई है ?

उ० मिथ्यात्व का स्वरूप जानकर, भव्य जीवों को मिथ्यात्व छोड़ देना चाहिए, क्योंकि सब प्रकार के बंधका मूल कारण मिथ्यात्व है। मिथ्यात्व नष्ट हुए बिना अविरति आदि दूर नहीं होते, इसलिए प्रथम मिथ्यात्व को छोड़ना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० २४—अविरति किसे कहते हैं ?

उ०—पाँच इन्द्रिय और मन के विषय, एवं पाँच स्थावर और त्रस की हिंसा, इन १२ प्रकार के त्याग रूप भाव न होना, सो १२ प्रकार की अविरति है। अविरति को असंयम भी कहते हैं।

प्र० २५—प्रमाद किसे कहते हैं ?

उ०—उत्तम क्षमादि दश धर्मों में उत्साह न रखना, यह प्रमाद है।

प्र० २६—कषाय किसे कहते हैं ?

उ०—कष्=संसार। आय्=लाभ। जिस भाव से संसार का लाभ हो वह कषाय है अर्थात् जो आत्मा को दुःखदे उसे कषाय कहते है, कषाय २५ होती हैं।

प्र० २७—योग किसे कहते हैं ?

उ०—आत्मा के प्रदेशों का सकंप होना, सो योग है, योग के १५ भेद निमित्त की अपेक्षा से है। आत्मा में योग नाम का गुण हैं। इसमें शुद्ध और अशुद्ध दो प्रकार का परिणमन है।

प्र० २८—क्या सम्यग्दर्शन होते ही संसार के पाँच कारणों का अभाव हो जाता है ?

उ० (१) जैसे किसी को ९९९९९९) रुपया देना है। वह यदि ९००००) हजार रुपया दे दे, तो ९९९९९) रुपया बाकी रहता है; जिसने ९००००) हजार दे दिया, तो बाकी आही जाता है; उसीप्रकार मिथ्यात्व का अभाव होना ९००००) देने के बराबर है। जहाँ मिथ्यात्व का अभाव हो गया, वहाँ अविरति, प्रमाद, कषाय और योग का अभाव अल्प काल में हो ही जाता है इसलिए सम्यक्त्व होते ही संसार के पाँच कारणों का अभाव हो जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) अनन्त संसार का कारण तो मिथ्यात्व है। उसका अभाव हो हो जाने पर अन्य बंध की गणना कौन करता है ? जैसे वृक्ष की जड़ कट जाने पर फिर हरे पत्ते की अवधि कितनी रहती है ? इसलिए सम्यग्दर्शन होने पर जो कुछ कमी होती है वह सहज मिट ही जाती है। अतः मिथ्यात्व का अभाव होते ही संसार के पाँच कारणों का अभाव हो जाता है।

प्र० २९—भव अपेक्षा से आत्मा असंयुक्त, संकल्प विकल्प जालों से रहित है इसका क्या रहस्य है, जरा द्रष्टान्त देकर समझाइए ?

उ०—जैसे जलका, अग्नि जिसका निमित्त है ऐसी उष्णता के साथ संयुक्तता रूप तप्तता रूप अवस्था से अनुभव करने पर(जल का) उष्णता-रूप संयुक्तता भूतार्थ है-सत्यार्थ है,उसीसमय एकान्त शीतलतारूप जल स्वभाव के समीप जाकर अनुभव करने पर (उष्णता के साथ) संयुक्ता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है, उसीप्रकार आत्मा का कर्म जिसका निमित्त है ऐसे मोह के साथ संयुक्ततारूप अवस्था से अनुभव करने पर संयुक्तता भूतार्थं है-सत्यार्थ उसीसमय जो स्वयं एकान्त ज्ञायक जीव स्वभाव(पर के, निमित्त के, भेद से रहित स्वाश्रित रूप से स्थायी ज्ञान स्वभाव) है उसके (चैतन्य स्वभाव के) समीप जाकर अनुभव करने पर संयुक्तता अभूतार्थ है-असत्यार्थ है। तात्पर्य यह है कि आत्मा की पर्याय में मोह राग-द्वेष होने पर, कर्म का निमित्त होने पर भी आत्मा का परम पारिणामिक भाव एक रूप पड़ा है उसकी ओर दृष्टि करे, तो औदयिक भावों अभाव के रूप औपशमिक भाव-धर्म का क्षयोपशमपना प्रगट होकर क्रम से पर्ण क्षायिकपना प्रगट होता है। ऐसा जानकर अपने पारिणामिक भाव का आश्रय लेकर क्षायिकदशा प्रगट करना, पात्र जीव का परम कर्तव्य है ।

प्र० ३०—क्या पर्याय में मोह, राग-द्वेष होने पर, कर्म का निमित्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होने पर भी औदयिक भावों का अभाव हो सकता है और उसका फल क्या है ?

उ०—हाँ, हो सकता है क्योंकि पर्याय में मोह राग-द्वेष का भाव अभूतार्थ है और भगवान आत्मा भूतार्थ है भगवान अमृतचन्द्राचार्यजी ने यही इस बात पाँचवें बोल में समझाई है कि तेरी पर्याय में मोह राग-द्वेष होने पर भी जरा तू अपने परम पारिणामिक भाव की दृष्टि करे, तो पूर्ण क्षायिक दशा प्रगट होती है ।

प्र० ३१—पाँच भावों का विशेष खुलासा समझाओ ?

उ० पाँच भावों का विशेष खुलाषा के लिए जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्न माला भाग चार में "जीव के पाँच असाधारण भावों का वर्णन" किया है वहाँ से देखियेगा, आपका कल्याण होगा ।

प्र० ३२—कलश १० तथा गाथा १४ में जो आत्मा को अवद्धस्पृष्ट आदि पाँचभाव रूप से देखता है । उसे तू शुद्धनय जान, इसको समझाने से क्या तात्पर्य है ?

उ०—पाँच रूप से नहीं, परन्तु एक रूप से जानता-अनुभवता और स्थिर करता है,उसने शुद्धनय को जाना। वास्तव में इस गाथा में पाँच प्रकार से कथन किया है। आचार्य भगवान को पात्र भव्य जीवों के प्रति करुणा है किसी भी प्रकार इस अज्ञानी जीव का अज्ञान मिटकर धर्म की प्राप्ति हो,वास्तव में प्रथम बोलके समझने से ही कल्याण हो जाना चाहिए जो इतने से नहीं समझा उसे दूसरे बोल से, फिर तीसरे बोलसे,फिर चौथे बोल से और फिर पाँचवे बोल से समझाया है। यदि पात्र जीव समझ जावें तो स्वयं भगवान बन जाता है और यदि ना समझे तो चारों गतियों में घूमकर निगोद चला जाता है। अबद्धस्पृ-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ष्टादि को समझने से मोक्ष का पथिक बनें। यह तात्पर्य पांच बोलों से है।

प्र० ३३—जो शुद्धनय को जान जाता है उसका फल अनादि से जिन, जिनवर और जिनवरवृषभों ने क्या क्या बताया है?

उ०—(१) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग इन पाँच कारणों का अभाव होकर मोक्ष का पथिक बन जाता है। (२) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप पांच परावर्तन का अभाव होकर क्रम से सिद्ध दशा की प्राप्ति, इसका फल है। (३) पंचपरमेष्टियों में उसकी गिनती होने लगती है। (४) चारों गतियों का अभाव होकर पंचम गति मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। (५) औदयिकादिभावों से दृष्टि हटकर परम पारिणामिक भाव का महत्व आ जाता है। (६) आठों कर्मों का अभाव हो जाता है। (७) गुणस्थान, मार्गणा और जीव समास से दृष्टि हटकर अपने भगवान का पता चल जाता है। (८) श्री समयसार गाथा ५० से ५५ तक कहे २९ बोलों से दृष्टि हटकर अपने भगवान का पता चल जाता है। (९) मैं ज्ञायक और लोकलोक ज्ञेय है, ऐसा पता चल जाता है। (१०) शुद्धनय का पता चलते ही (अ) सिद्ध भगवान क्या करते हैं और सिद्धदशा क्या है, (आ) अरहंत भगवान क्या करते हैं और अरहंत दशा क्या है। (इ) आचार्य, उपाध्याय और सर्व साधु क्या करते हैं और आचार्य उपाध्याय और साधुपना क्या हैं, (ई) श्रावकपना-सम्यग्दृष्टिपना क्या है और श्रावक, सम्यग्दृष्टि क्या करते हैं। (उ) अनादि से मिथ्यादृष्टि क्या करते हैं और मिथ्यादृष्टिपना क्या हैं। आदि सब बातों का पता चल जाता है। (११) समस्त जिन शासन का पता चल जाता है। (१२) देव, गुरू शास्त्र क्या हैं,इसका पता भी शुद्धनय के जानने पर ही होता है। इसलिए हैं जीव! तू एक बार अनादिअनन्त अपने शुद्धनय का आश्रय ले, तो सादिसांत दशा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकट होकर, सादि अनन्त दशा की प्राप्ति हो जाती है। यह १० वाँ कलश तथा गा० १४ का रहस्य है।

छठा पाठ

ज्ञान और ज्ञेय की भिन्नता

प्र० १—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता नहीं, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है, इसका मंगलाचरण क्या है?

उ०—ज्ञेयाकार ग्यान की परणति, है वह ज्ञान ज्ञेय नहि होइ।
ज्ञेयरूप षटदरवभिन्न पद, ग्यानरूप आतमपद सोइ॥
जानैभेदभाउ सु विचच्छन, गुन लच्छन सम्यक द्रिग जोइ।
मूरख कहै ग्यानमय आकृति, प्रगट कलंक लखै नहि कोई॥

विशेष अर्थ—जीव पदार्थ ज्ञायक है, ज्ञान उसका गुण है, वह अपने ज्ञान गुण से जगत के छहों द्रव्यों को जानता है, और अपने को भी जानता है। इस लिए जगत के सब जीव-अजीव पदार्थ और वह स्वयं आत्मा ज्ञेय है, और आत्मा स्वपर को जानने से ज्ञायक है। भाव यह है आत्मा ज्ञेय भी है, ज्ञायक भी है। आत्मा के सिवाय सब पदार्थ ज्ञेय है। सो जब कोई पदार्थ ज्ञेय पदार्थ ज्ञान में प्रतिभासित होता है तब ज्ञान की ज्ञेयाकार परिणति होती है, पर ज्ञान ज्ञान ही रहता है, ज्ञेय नही हो जाता, और ज्ञेय ज्ञेय ही रहता है, ज्ञान नहीं हो जाता, न कोई किसी में मिलता है। ज्ञेय का स्वचतुष्टय जुदा रहता है और ज्ञायक का स्व चतुष्टय जुदा रहता है। परन्तु विवेकशून्य वैशेषिक आदि ज्ञान में ज्ञेय की आकृति देखकर ज्ञान में अशुद्धता ठहराते हैं यह मिथ्या मान्यता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० २—श्री समयसार गा० ३५६ से ३६५ तक का सार क्या है ?

उ०—(१) जिसे सम्यग्ज्ञान हो जाता है, वह जानता है कि आत्मा वास्तव में अपने ज्ञान की पर्याय को जानता है और परज्ञेय तो ज्ञान का निमित्त मात्र है। "परज्ञेय को जाना, ऐसा कथन व्यवहार है। यदि परमार्थ दृष्टि से देखा जावे तो आत्मा पर को जानता है' सो मिथ्या है, क्योंकि ऐसा होने पर आत्मा और ज्ञेय (ज्ञान और ज्ञेय) दोनों एक हो जावेंगे। "जिसका जो होता है वह वही होता है" यह कानून है। इसलिए वास्तव में यदि यह कहा जावे कि "पुद्गल का ज्ञान है" तो ज्ञान पुद्गलरूप-ज्ञेय रूप हो जावेगा, अतः यह समझना चाहिएं कि निमित्त सम्बन्धी अपने ज्ञान की पर्याय को आत्मा जानता है।

(३) आत्मा-आत्मा को जानता है, यह भी स्व स्वामी अंश है ऐसे भेद से भी धर्म की प्राप्ति नहीं होगी, क्योंकि लक्षण से लक्ष्य का ज्ञान कराना, यह भी भेद है। जब तक भेद में पड़ा रहेगा तब तक सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति नहीं होगी, अतः "ज्ञायक ज्ञायक ही है"—यह निश्चय है।

प्र० ३—समयसार कलश २१४ का सार क्या है ?

उ०—कोई आशंका करता है कि जैन सिद्धान्त में भी ऐसा कहा है कि जीव ज्ञान ज्ञानावरणादि पुद्गल कर्म को करता है—भोगता है। उसका समाधान किया है कि झूठे व्यवहार से कहने को है। द्रव्य के स्वरूप का विचार करने पर परद्रव्य का कर्त्ता जीव नहीं है। इससे यह समझना चाहिए परद्रव्य रूप ज्ञेय पदार्थ अपने भाव से परिणमित होते हैं और ज्ञायक आत्मा अपने भावरूप परिणमन करता है; वे एक दूसरे का परस्पर कुछ नहीं कर सकते। इसलिए यह

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

व्यवहार से ही कहा जाता है कि 'ज्ञायक पर द्रव्यों को जानता है", निश्चय से ज्ञायक तो बस ज्ञायक ही है।

प्र०—इस विषय में प्रवचसार गा० १७३ से १७४ तक में क्या बताया है ?

प्र०—इन दोनों गाथाओं में प्रश्न और उत्तर है।

प्र०—आत्मा अमूर्तिक होने पर भी वह मूर्तिक कर्म-पुद्गलों के साथ कैसे बँधता है ?

उ०—आत्मा अमूर्तिक होने पर भी वह मूर्तिक पदार्थों को कैसे जानता है ? जैसे वह मूर्तिक पदार्थों को जानता है; उसीप्रकार मूर्तिक कर्मपुद्गलों के साथ बँधता है।

प्र० ५—शास्त्रों में आता है कि "वास्तव में अरूपी आत्मा का रूपी पदार्थों के साथ कोई सम्बन्ध न होने पर भी अरूपी आत्मा का रूपी के साथ सम्बन्ध होने का व्यवहार भी विरोध को प्राप्त नहीं होता है, इसे स्पष्ट करके समझाइये ?

उ०—(अ) जहाँ यह कहा जाता है कि 'आत्मा मूर्तिक पदार्थों को जानता है' वहाँ परमार्थतः अमूर्तिक आत्मा का मूर्तिक पदार्थों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है; उसका तो मात्र उस मूर्तिक पदार्थ के आकार रूप होने वाले ज्ञान के साथ ही सम्बन्ध है, और उस पदार्थ ज्ञान के साथ के सम्बन्ध के कारण ही "अमूर्तिक आत्मा मूर्तिक पदार्थ को जानता है" ऐसा अमूर्तिक-मूर्तिक का सम्बन्ध रूप व्यवहार सिद्ध होता है; उसी प्रकार जहाँ यह कहा जाता है कि "अमुक आत्मा का मूर्तिक कर्म पुद्गलों के साथ बन्ध है" वहाँ परमार्थतः अमूर्तिक आत्मा का मूर्तिक कर्म-पुद्गलों के साथ कोई सम्बन्ध नहीं है। आत्मा का तो कर्म-पुद्गल जिसमें निमित्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है ऐसे रागद्वेषादि भावों के साथ ही सम्बन्ध (बन्ध) है, और उन कर्म-निमित्तिक रागद्वेषादि भावों के साथ सम्बन्ध होने से ही "इस आत्मा का मूर्तिक कर्म पुद्गलों के साथ बन्ध है" ऐसा अमूर्तिक-मूर्तिक का बन्ध रूप व्यवहार सिद्ध होता है।

(आ) मनुष्य को स्त्री-पुत्र-धनादिक के साथ वास्तव में कोई सम्बन्ध नहीं है, वे उस मनुष्य से सर्वथा भिन्न हैं तथापि, स्त्री-पुत्र-धनादिक के प्रति राग करने वाले मनुष्य को राग का बन्धन होने से, और उस राग में स्त्री-पुत्र-धनादि के निमित्त होने से व्यवहार से यह अवश्य कहा जाता है कि "इस मनुष्य को स्त्री-पुत्र-धनादि का बन्धन है; उसी प्रकार आत्मा का कर्म-पुद्गलों के साथ वास्तव में कोई सम्बन्ध नहीं है, वे आत्मा से सर्वथा भिन्न है, तथापि रागद्वेषादि भाव करने वाले आत्मा को रागद्वेषादि भावों का बन्धन होने से और उन भावों में कर्मपुद्गल निमित्त होने से व्यवहार से यह अवश्य कहा जा सकता है कि "इस आत्मा को कर्म पुद्गलों का बन्धन है।"

[प्रवचनसार १७४ के भावार्थ से]

प्र० ६—इस निश्चय-व्यवहार के बताने से क्या लाभ रहा ?

उ०—(१) आत्मा का ज्ञान पर्याय के साथ सम्बन्ध है, ज्ञेय पदार्थों के साथ सर्वथा सम्बन्ध नहीं है—यह बात यथार्थ है।

(२) अज्ञानी आत्मा का भी रागद्वेषादि भावों से सम्बन्ध है, द्रव्यकर्म-नोकर्म के साथ सर्वथा नहीं है—यह बात यथार्थ है।

(३) सुख-दुख का सम्बन्ध सुख गुण की सुख-दुख पर्याय से है, पदार्थों के साथ सर्वथा नहीं है—यह बात यथार्थ है।

(४) सम्यग्दर्शन का सम्बन्ध आत्मा के श्रद्धा गुण से है, देव-गुरु-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शास्त्र से, दर्शन मोहनीय के उपशमादि से सर्वथा नहीं है—यह बात यथार्थ है।

(५) केवलज्ञान का सम्बन्ध ज्ञान गुण से है, वज्रवृषम नाराच-सहनन, चौथा काल, ज्ञानावरणीय के अभाव से सर्वथा नहीं है—यह बात यथार्थ है।

तात्पर्य है कि "निश्चय से परके साथ आत्मा का कारकता का सम्बन्ध नहीं है, कि जिससे शुद्धात्म स्वभाव की प्राप्ति के लिए बाह्य सामग्री ढूंढ़ने की व्यग्रता से जीव व्यर्थ ही परतन्त्र-दुखी होकर-आकुलित होते हैं।"

प्र० ७—शास्त्रों में आता है जीव ज्ञानावरणीय आदि कर्म रूप पुद्गल पिण्ड का कर्ता है, ज्ञेय से ज्ञान होता है—सो वहाँ क्या समझना चाहिए ?

उ०—कहने को तो है; वस्तु स्वरूप विचारने पर कर्ता नहीं हैं; क्योंकि व्यवहार दृष्टि से ही कहने के लिए सत्य है वस्तु स्वरूप का विचार करने पर झूठा है।

प्र० ८—शास्त्रों में व्यवहार कथन किस प्रकार के होते हैं, उनके लिए क्या दृष्टान्त दिये हैं ?

उ०—(१) जैसे हाथी के दाँत बाहर देखने के जुदे हैं तथा भीतर चवाने-खाने के जुदे हैं; वैसे ही जैन ऋषि, मुनि और आचार्यों के रचे हुए सिद्धान्त शास्त्र, सूत्र और पुराणादि हैं वे तो हाथी के बाहर के दांतों के समान समझना तथा भीतर का यथार्थ आशय जिसका जो वही जानता है। यह दृष्टान्त ऐसा सूचित करता है कि शास्त्रों में अनेक उपचार कथन हैं, उनका आशय पकड़कर परमार्थ अर्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समझना। यदि शब्दों को पकड़ा जावेगा, शास्त्र का आशय समझ में नहीं आवेगा।

(२) एक साहूकार ने अपने पुत्र को परदेश भेजा। कितने ही दिन के बाद बेटे की बहू बोली, "मैं तो विधवा हो गयी" तब सेठ ने अपने पुत्र के नाम पत्र भेजा, उसमें ऐसा लिखा कि "बेटा! तेरी बहू तो विधवा हो गयी।" तब वह सेठ का पुत्र उस पत्र को पढ़कर शोक करने लगा। किसी ने पूछा—"तुम शोक क्यों कहते हो ?" उसने कहा "हमारी स्त्री विधवा हो गयी। यह सुनकर वह बोला 'तुम तो प्रत्यक्ष जीवित मौजूद हो, फिर तुम्हारी स्त्री विधवा कैसे हो गयी ? तब वह सेठ का पुत्र बोला 'तुमने कहा वह तो सच है परन्तु मेरे दादाजी का लिखा हुआ पत्र आया है उसे झूठा कैसे मानू ?'

यह दृष्टान्त ऐसा सूचित करता है कि अज्ञानी शास्त्र का आशय जानते नहीं और आशय समझे बिना ही कहते हैं कि "शास्त्र में कर्म के उदय से—निमित्त से लाभ-हानि होते हैं ऐसा लिखा है, वह क्या झूठ है ? ज्ञानी कहते हैं "भाई। शास्त्रकार का आशय तो यह है कि—आत्मा स्वयं मौजूद है और उसकी परिणति कर्म के उदय से या निमित्त से होती है ऐसा मानना यह तो तेरी मौजूदगी में तेरी स्त्री विधवा हो और "मेरी स्त्री विधवा हो गई" ऐसा कहकर जोर-जोर से रोने जैसा है। शास्त्र के वे कथन तो उपचार मात्र कर्म की अवस्था का तथा निमित्त का ज्ञान कराने के लिए है।

(३) व्यवहार अभूतार्थ है, सत्य स्वरूप का निरूपण नहीं करता, किसी अपेक्षा उपचार से अन्यथा निरूपण करता है। तथा शुद्धनय जो निश्चय है वह भूतार्थ है जैसा वस्तु का स्वरूप है, वैसा-निरूपण करता है। इसलिए निश्चयनय से जो निरूपण किया हो, उसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना और व्यवहार नय से जो निरूपण किया हो, उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना - ऐसा शास्त्रों में बताया है।

प्र० ९—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता नहीं, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना है, इसे दृष्टान्त से समझाइये ?

उ०—एक शिकारी था। उसकी तीन पत्नियाँ थी। एक ने कहा मुझे प्यास लगी है पानी लाओ', दूसरी ने कहा "विछाने के लिए मृग चम लाओ", तीसरी ने कहा "मुझे गायन सुनाओ'। शिकारी ने तीनों को एक ही उत्तर दिया "सरो नात्थी" यह प्राकृत का शब्द है, इस शब्द से तीनों का मतलब हल हो गया। पहली ने समझा "सरः न अस्ति" तालाब नहीं है, पानी कहाँ से लाऊँ। दूसरी ने समझा "शरो न अस्ति" बाण नहीं है, मृग चर्म कहाँ से लाऊँ। तीसरी ने समझा "स्वर न अस्ति" मेरा स्वर ठीक नहीं है, गायन कैसे सुनाऊँ। विचारिये, क्या शब्द से ज्ञान हुआ ? नहीं, परन्तु तीनों को अपने-अपने ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञान हुआ। यदि शब्द से ज्ञान होता, तो तीनों को एकसा ही ज्ञान होना चाहिए था, सो हुआ नहीं। इससे सिद्ध हुआ शब्द से ज्ञान नहीं, ज्ञान ज्ञान से आता है। इसलिए ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता है, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्र० १०—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता नहीं, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है, इसके लिए दूसरा दृष्टान्त देकर समझाये ?

उ०—तीर्थंकर भगवान की ओं गर्जना रूप दिव्यध्वनि खिरती है समवसरण में बारह प्रकार की सभा होती हैं। क्या सब जीवों को एक सा ज्ञान होता है ? आप कहेंगे नहीं। वास्तव में जिस जीव को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जितना ज्ञान का उघाड़ होता है, उतना उतना भगवान की दिव्य-ध्वनि पर आरोप आता है। इसलिए यह सिद्ध हुआ, ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्र० ११—भगवान महावीर स्वामी की वाणी सुनकर गौतम गण-धर ने अन्तर्मुहूर्त में १२ अंग, १४ पूर्व की रचना की और आप कहते हैं कि ज्ञेय से ज्ञान नहीं होता ?

उ०—गौतम गणधर को मति, श्रुति, अवधि और मनःपर्यय ज्ञान था वह दिव्यध्वनि से नहीं हुआ, क्योंकि यदि दिव्यध्वनि से ज्ञान होता तो वहाँ सब जीवों को होना चाहिए था, सो हुआ नहीं। इसलिए दिव्यध्वनि से ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्र० १२—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञेय जाना जाता है तीसरा उदाहरण देकर समझाइए ?

उ०—हमारे सामने आम रक्खा है उसमें स्पर्श-रस-गध वर्ण चारों एक साथ है। जिस समय हम रग का ज्ञान करते हैं, उस समय स्पर्श-रसादि का ज्ञान नहीं हैं। जिस समय रस का ज्ञान करते है, उस समय स्पर्श-गंधादि का ज्ञान नहीं है। यदि आम से ज्ञान होता, तो स्पर्शादि चारों का ज्ञान एक साथ होना चाहिए, सो होता नहीं। इससे सिद्ध हुआ, ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्र० १३—पाँच इन्द्रियाँ—छठा मन से तो ज्ञान होता है ना ?

उ०—बिल्कुल नहीं, क्योंकि यह सब पुद्गल स्कंधों की पर्यायें हैं इनमें ज्ञान नहीं है। जिसमें स्वयं ज्ञान नहीं, वह ज्ञान का कारण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कैसे बन सकती है? कभी भी नहीं। इससे सिद्ध हुआ, संयोग के अनुसार ज्ञान नहीं, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार संयोग जाना जाता है।

प्र० १४—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है, चौथा उदाहरण देकर समझाइये?

उ०—सामने अभरूद का बाग है। बाग में पानी दिया। देखो पेड के ज्ञान का उघाड़ मात्र स्पर्श का ही है। पानी में स्पर्श-रस-गंध-वर्णादि सब है; लेकिन पेड को रस-गंध-वर्णादि का ज्ञान नहीं है इससे सिद्ध होता है ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्र० १५—सामने लोकालोक है हमें ज्ञान क्यों नहीं होता, और केवली को क्यों होता है?

उ०—केवली को अपने ज्ञान के उघाड़ के कारण ही ज्ञान होता है, लोकालोक के कारण नहीं। यदि लोकालोक के कारण ज्ञान होता, तो हमें भी उसका ज्ञान होना चाहिए। अतः सिद्ध हुआ ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञेय जाना जाता है।

प्र० १६—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञेय जाना जाता है—पाँचवाँ उदाहरण देकर समझाइए?

उ०—सामने आदमी सो रहा है। उसे देखकर दूसरा आदमी कहता है कि देखो, इसके सिर पर कितने मच्छर उड़ रहे हैं। हैं, वहं उसके लम्बे-लम्बे बाल और ज्ञान किया मच्छरों का। यदि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता, तो बालों का ज्ञान होना चाहिए था मच्छरों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का नहीं अतः सिद्ध हुआ ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता नहीं परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्र० १७—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है—छठा उदाहरण देकर समझाइए ?

उ०—रात्रि के समय अन्धेरे में जा रहे हैं, लकड़ी के ठूठ को भूत मान लिया और डर के मारे दुखी हो रहे हैं; यदि ज्ञेय के अनुसार ज्ञान होता, तो लकड़ी के ठूठ को भूत न मानता। इससे सिद्ध हुआ ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञेय जाना जाता है।

प्र० १८—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के कारण ज्ञेय जाना जाता है, कोई और उदाहरण देकर समझाइये ?

उ०—कोलिज में प्रिंसिपल बहुत से लड़कों को एक साथ एकसा पाठ पढ़ाता है। क्या सब लड़कों को एकसा ज्ञान होता है ? आप कहेंगे—कभी भी नहीं। अतः सिद्ध हुआ, ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है।

प्र० १९—ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है—इसमें रहस्य क्या है ?

उ०—जैसे आत्मा में अनन्त गुण हैं। उस प्रत्येक गुण का उसकी पर्याय से तो सम्बन्ध कहो, परन्तु पर से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। क्योंकि विश्व में जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म, अधर्म, आकाश एकेक और काल लोक प्रमाण असंख्यात हैं। प्रत्येक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण हैं। प्रत्येक गुण अनादि अनन्त कायम रहता हुआ, अपनी-अपनी प्रयोजन भूत क्रिया करता हुआ स्वयं बदलता रहता है। ऐसा वस्तु का स्वभाव है। यह बात जिसके ज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

में आ जावे, तो अनन्त संसार का अभाव होकर मोक्ष लक्ष्मी का नाथ बन जावे। ज्ञेय के अनुसार ज्ञान नहीं होता, परन्तु ज्ञान के उघाड़ के अनुसार ज्ञेय जाना जाता है, यह उसका रहस्य है।

प्र० २०—इस सम्बन्ध में कलश २१६ का भाव क्या है ?

उ०—वास्तव में किसी द्रव्य का स्वभाव किसी अन्य द्रव्य रूप नहीं होता। जैसे चाँदनी पृथ्वी को उज्जवल करती है, किन्तु पृथ्वी चाँदनी की किंचित् मात्र भी नहीं होती; उसी प्रकार ज्ञान ज्ञेय को जानता है, किन्तु ज्ञेय ज्ञान का किंचित मात्र भी नहीं होता। आत्मा का ज्ञान स्वभाव है, इसलिए ज्ञान की स्वच्छता में ज्ञेय स्वयमेव झलकता है, किन्तु ज्ञान में ज्ञेयों का प्रवेश नहीं होता है।

प्र० २१—कलश २१५ में क्या बताया है ?

उ०—जिसने शुद्ध द्रव्य के भाव में बुद्धि को लगाया है और जो तत्त्व का अनुभव करता है, उस पुरुष को एक द्रव्य के भीतर कोई भी अन्य द्रव्य रहता हुआ कदापि भासित नहीं होता। ज्ञान ज्ञेय को जानता है, सो तो यह ज्ञान के शुद्ध स्वभाव का उदय है। जबकि ऐसा है तब फिर लोग ज्ञान को अन्य ज्ञेय के साथ स्पर्श होने की मान्यता से आकुल बुद्धि वाले होते हुए शुद्ध स्वरूप से क्यों च्युत होते हैं ? अर्थात् आत्मा ने द्रव्यकर्म—नोकर्म—भाव कर्म को छुआ ही नहीं, तब मैं पर का कर्ता-भोक्ता हूँ—यह बुद्धि कहाँ से आयी ? अज्ञान से आयी है। इसलिए हे भव्य ! तेरा तेरे से बाहर कुछ नहीं है। जरा अपने अन्दर देख, अपूर्व शान्ति का वेदन होगा। तात्पर्य यह है कि जीव समस्त ज्ञेय को जानता है तथापि समस्त ज्ञेय से भिन्न है, ऐसा चौथेगुणस्थान से लेकर सिद्ध दशा तक सब जानते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सकल वस्तु जग में असहाई। वस्तु वस्तु सौं मिलै न काई॥
जीव वस्तु जानै जग जेती। सोऊ भिन्न रहे सब सेती॥
सुद्ध दरब अनुभई करे, शुद्ध दृष्टि घट माँहि।
तातैं समकित वंत नर, सहज उछेदक नाँहि॥
सकल ज्ञेय-ज्ञायक तदपि, निजानन्द रसलीन।
सो जिनेन्द्र जयवन्त नित,अरि रज रहस विहीन॥

सातवाँ पाठ

निश्चय स्तुति

कर इन्द्रियजय ज्ञान स्वभाव रू, अधिक जाने आत्म को।
निश्चय विषें स्थित साधुजन, भाषें जितेन्द्रिय उन्हीं को॥ ३१॥
समयसार।

प्र० १—तीर्थंकर की निश्चय स्तुति क्या है?

उ०—जिससे तिरा जाता है, ऐसा सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र वह तीर्थं अपने में ही है। 'कर' अर्थात् प्रगट करे। सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र अपनी आत्मा में प्रगट होवे, वह तीर्थंकर की निश्चय स्तुति है।

प्र० २—निश्चय स्तुति की शुरूआत कब से होती है?

उ०—चौथे गुणस्थान से निश्चय स्तुति की शुरूआत होती है।

प्र० ३—निश्चयस्तुति कितने प्रकार की है और वह किस-किस जीव को होती है तथा इसका फल क्या है?

उ०—तीन प्रकार की हैं (१) ४, ५, ६ गुणस्थान में जघन्य निश्चय स्तुति होती है। (२) सांतवें गुणस्थान से ११वें गुणस्थान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तक मध्यम निश्चयस्तुति होती है। (३) सांतवें से १२वें गुणस्थान तक उत्तम निश्चयस्तुति होती है। और १३, १४वाँ गुणस्थान तथा सिद्धदशा निश्चयस्तुति का फल है।

प्र० ४—हम मन्दिर जी में स्तुति बोलते हैं अष्ट द्रव्य से भगवान की पूजा करते हैं, क्या यह हमारी निश्चयस्तुति नहीं है ?

उ०—अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना चाहे वह द्रव्यलिंगी मुनि हो, किसी को भी निश्चयस्तुति नहीं हो सकती है, क्योंकि स्तुति का उच्चारण भाषा वर्गणा का कार्य है, हाथ जोड़ना, सामग्री चढ़ाना आदि सब जड़ का कार्य है इसमें स्तुति की बात ही नहीं है। परन्तु जो जीव यह मानता है, कि मैं पाठ बोलता हूँ, सामग्री चढ़ाता हूँ, यह पर में अपने-पने की बुद्धि मिथ्यात्वभाव है। उस समय जितना मन्द कषाय है, वह पापानुबन्धी पुण्य है। जैसे बहु का गाना गाने से बताशा मिलता है, बहू नहीं मिलती है; उसी प्रकार पुण्य से संयोग मिलता है, मोक्षमार्ग और मोक्ष नहीं मिलता है। अज्ञानी पुण्य के संयोग में पागल बना रहता है, वह परम्परा निगोद का कारण हैं। वास्तव में अज्ञानी की स्तुति-पूजा आदि सब राग की स्तुति-पूजा है, मोह भजन है जो संसार के लिए कार्यकारी है।

प्र० ५—अज्ञानी कीं स्तुति-पूजा आदि मोह भजन है, संसार के लिए कार्यकारी है मोक्ष और मोक्षमार्ग के लिए कार्यकारी नहीं है, यह कहाँ लिखा है ?

उ०—'वो धर्म को, श्रद्धे प्रतीत, रुचि अरू स्पर्शन करे।
वो भोग हेतु धर्म को, नहिं कर्म क्षय के हेतु को॥

(समयसार गा० २७५)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

टीका—अभव्य जीव नित्य कर्म फल चेतना रूप वस्तु की श्रद्धा करता है किन्तु नित्य ज्ञान चेतनामात्र वस्तु की श्रद्धा नहीं करता, क्योंकि वह सदा (स्व-परके) भेद विज्ञान के अयोग्य है। इसलिए वह कर्मों से छूटने के निमित्तरूप, ज्ञान मात्र भूतार्थ (सत्यार्थ) धर्म की श्रद्धा नही करता, (किन्तु) भोग के निमित्त रूप, शुभकर्म मात्र, अभूतार्थ धर्म की ही श्रद्धा करता है; इसीलिए वह अभूतार्थ धर्म की ही श्रद्धा, प्रतीत, रुचि और स्पर्शन से ऊपर के ग्रैवेयक तक के भोगमात्र को प्राप्त होता है, किन्तु कभी भी कर्मों से मुक्त नहीं होता। इसलिए उसे भूतार्थ धर्म के श्रद्धान का अभाव होने से (यथार्थ) श्रद्धान भी नहीं है। ऐसा चारों अनुयोगों में बताया है।

प्र० ६—निश्चय स्तुति कैसे प्रगट होवे ?

उ०—जिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार तत्त्व का अभ्यास करके सम्यग्दर्शन प्रगट करे, तब निश्चय स्तुति प्रगट होती है।

प्र० ७—वर्तमान में जितने दिगम्बरधर्मी आत्मा के अनुभव बिना स्तुति, पूजा, सामायिक करते हैं और उसे करते-करते मोक्षमार्ग प्रगट हो जावेगा ऐसा मानते हैं, क्या वह सब पागल ही हैं ?

उ०—जैसे कोई दिल्ली जाने के लिए कलकत्ता की सड़क पर चले, तो कभी भी दिल्ली नहीं पहुँच सकता है; उसी प्रकार अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना स्तुति, पूजा, सामायिक, महाव्रतादि करके मर भी जावें, तो उससे मोक्षमार्ग कभी भी प्रगट नहीं होगा। परन्तु मोक्षमार्ग के बदले चारों गतियों की हवा खाता हुआ निगोद पहुँच जावेगा। जैसे एक के अंक बिना बिन्दियों की कीमत नहीं होती, उसीप्रकार आत्मा के अनुभव हुए बिना दिगम्बर धर्मियों के पूजास्तुति आदि सब अरण्य रुदन है। इसलिए आत्मा के समझे बिना व्रतादि करने वाले सब पागल ही हैं। क्योंकि कुन्दकुन्द

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान ने समयसार गा० १५३ में कहा है—व्रत और नियमों को धारण करते हुए भी तथा शील तप करते हुए जो परमार्थ से बाह्य हैं अर्थात् आत्म अनुभव-ज्ञान से रहित है, वे निर्वाण को प्राप्त नहीं होते हैं।

प्र० ८—कुन्दकुन्द भगवान ने समयसार गा० ३१ में निश्चय स्तुति किसे कहा है ?

उ०—मूल गाथा में इन्द्रियों को जीतकर ज्ञान स्वभाव के द्वारा अन्य द्रव्य से अधिक (जुदा) आत्मा को जानते हैं (अनुभवते हैं) उन्हें, जो निश्चयनय में स्थित साधु हैं वे, वास्तव में जितेन्द्रिय (निश्चय स्तुति) कहते हैं।

प्र० ९—अपनी आत्मा को अन्य द्रव्यों से अधिक (जुदा) जानता है, इस पर से कितने बोल निकलते हैं।

उ०—चार बोल निकलते हैं—(१) जब अपनी आत्मा को द्रव्य कहा, तब अन्य सब अद्रव्य हैं। (२) जब अपनी आत्मा को जीव कहा है, तब अन्य सब अजीव हैं। (३) जब अपनी आत्मा को अतीन्द्रिय कहा, तब अन्य सब इन्द्रिय हैं। (४) जब अपनी आत्मा को ज्ञायक कहा तब अन्य सब ज्ञेय हैं अर्थात् अपनी आत्मा को जब द्रव्य, जीव, अतीन्द्रिय और ज्ञायक कहा, तब उसकी अपेक्षा अन्य सब द्रव्य, अद्रव्य, अजीव, इन्द्रिय और ज्ञेय हैं।

प्र०—१० 'इन्द्रिय' शब्द पर से भगवान अमृतचन्द्राचार्य जी ने कितने बोल निकाले हैं ?

उ०—तीन बोल निकाले हैं—(१) द्रव्येन्द्रियों, (२) भावेन्द्रियों (खंडखंड ज्ञान), (३) इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों (शास्त्र पढ़ना, दिव्यध्वनि सुनना, पूजा-पाठ आदि)।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ११—भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने द्रव्येन्द्रियों का जीतना किसे कहा है ?

उ०—(१) अन्तरंग में (२) प्रगट अति सूक्ष्म; (३) चैतन्य स्वभावी अपनी भगवान आत्मा को; (४) बहिरंग में; (५) प्रगट अति स्थूल; (६) जड़ स्वभावी जड़ इन्द्रियों से; (७) निर्मल; (८) भेदाभ्यास की; (९) प्रवीणता के द्वारा सर्वथा अलग किया, उसे द्रव्येन्द्रियों को जीतना कहा है। इस प्रकार नौ बोल आये हैं।

प्र० १२—अज्ञानी द्रव्येन्द्रियों का जीतना किसे कहता है ?

उ०—आँख फोड़लो, कान में डट्ठे ठोक लो, मुँह को बन्द कर लो, आदि को द्रव्येन्द्रियों जीतना कहता है। यह सब जड़ की क्रिया है, इसे अपनी मानना, अनन्त संसार का कारण है।

प्र० १३—भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने 'भावेन्द्रियों' का जीतना किसे कहा है ?

उ०—भावेन्द्रिय=खण्ड-खण्ड ज्ञान क्षयोपशमिक रूप है। भावेन्द्रियों के सामने अपना अखण्ड ज्ञायक स्वभाव है। पात्र जीव ऐसा जाने कि क्षायोपशमिक खण्ड-खण्ड ज्ञान जितना मेरा स्वभाव नहीं है परन्तु अखण्ड ज्ञान मेरा स्वभाव है, ऐसा अनुभव-ज्ञान-आचरण करे तो यह भावेन्द्रियों को जीतना कहा है।

प्र० १४—रागद्वेष वाले में और भगवान में क्या अन्तर है ?

उ०—(१) रागद्वेष वाले की वाणी खण्ड-खड रूप होती है, भगवान की वाणी अखण्ड होती है। (२) राग द्वेष वाला क्रम से जानता है, भगवान युगपत् परिपूर्ण जानते हैं। (३) राग द्वेष वाला मन द्वारा विचारता है, भगवान का ज्ञान परिपूर्ण होने से उनको विचार नहीं करना पड़ता है। (४) रागद्वेष वाले का पैर आगे-पीछे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पड़ता है, भगवान डग नहीं भरते हैं। (६) रागद्वेष वाले को क्षायोपशमिक ज्ञान अल्प है, भगवान का क्षायिक ज्ञान पूर्ण है। (६) रागद्वेष वाले को क्षायोपशमिक ज्ञान में पूर्ण ज्ञेय नहीं आता है, भगवान को सम्पूर्ण लोकालोक ज्ञेय है। (७) रागद्वेष वाले की आँखें निमेष (पलक) मारती है, भगवान की आँखें निमेष (पलक) नहीं मारती है।

प्र० १५—"भावेन्द्रियों का जीतना" कौनसे गुणस्थान से शुरू हो जाता है ?

उ०—चौथे गुणस्थान में अपना ज्ञायक अखण्ड स्वभाव अनुभव में आ जाता है, तब से खण्ड-खण्ड क्षायोपशमिक ज्ञान समाप्त हो जाता है, क्योंकि अखण्ड स्वभाव पर दृष्टि आने से उसके ज्ञान को भी अखण्ड कहा जाता है।

प्र० १६—भगवान अमृतचन्द्राचार्य ने "इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों" का जीतना किसे कहा है ?

उ०—'इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों, वे संगरूप हैं और भगवान आत्मा असंग स्वभावी है। पात्र जीव ऐसा जाने कि 'इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों तो संगरूप है, परन्तु मेरा असंग स्वभाव एक रूप है, ऐसा जानकर असंग स्वभाव का आश्रय-ज्ञान-आचरण वर्ते, उसे इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों का जीतना कहा है।

प्र० १७—द्रव्येन्द्रियों, भावेन्द्रिय और इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थ, इन तीनों में से प्रथम, किसे जीतना चाहिए ?

उ०—अन्तरंग में प्रगट अति सूक्ष्म चैतन्य स्वभावी, अखण्ड, असंग आत्मा का आश्रय लेते ही तीनों एक साथ जिते जाते हैं, कथन करने में क्रम पड़ता है। अरे भाई, एक बार अपने स्वभाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का आश्रय ले, तो सब झगड़ा निपट आवेगा और अपने भगवान का पता चल जावेगा। अपने आपका अनुभव हुए बिना तीन काल तीन लोक में 'इनको जीतने' का उपचार भी नहीं आ सकता है।

प्र० १८—स्तुति कितने प्रकार की है ?

उ०—स्तुति तो एक ही प्रकार की है, परन्तु उसका कथन पांच प्रकार से है। जिस जीव ने अपने शक्ति रूप चैतन्य स्वभावी जो 'शक्ति रूप स्तुति' हैं उसका आश्रय लिया, तो एक देश भाव स्तुति जो सम्वर-निर्जरा रूप है, उसकी प्राप्ति होती है। पूणदेश भाव स्तुति की प्राप्ति न होने से भूमिका के अनुसार जो अस्थिरता का कारण हैं, वह द्रव्य-स्तुति है और द्रव्यस्तुति का जड़ स्तुति के साथ निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

प्र० १९—तीर्थंकर की निश्चय स्तुति में नौ पदार्थ-काल, औपशमिकादिक पाँचभाव, देवगुरु-धर्म, हेय-उपादेय-ज्ञेय, सुखदायक-दुःखदायक, समयसार, संयोगादि पाँच बोल लगाकर बताओ, ताकि स्पष्ट रूप से समझ में आवे ?

उ०—(१) शक्ति रूप स्तुति=जीव तत्त्व। (२) एक देश भाव स्तुति-सम्वर-निर्जरा। (३) द्रव्यस्तुति=आस्रव-बंध, पुण्य-पाप। (४) जड़ स्तुति-अजीव। (५) पूर्णदेश भावस्तुति-मोक्ष, इस प्रकार नौ पदार्थ आ गये, बाकी के बोल इसी प्रकार जवानी लगावो।

प्र० २०—क्या अपनी आत्मा का अनुभव हुए विना स्तुति नहीं हो सकती है ?

उ०—कभी नहीं हो सकती है। जैसे हीरे जवाहरात की दुकान पर जिसको हीरे जवाहरात की पहिचान हो और लेना-देना जानता हो वही दुकान पर बैठ सकता है; उसीप्रकार जिनको अपनी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आत्मा का अनुभव-ज्ञान-आचारण वर्तता हो, वह ही भगवान की स्तुति कर सकता है, अज्ञानी मिथ्यादृष्टि स्तुति नही कर सकता है।

प्र० २१—वर्तमान में जो जीव साँसारिक प्रयोजन के लिए भक्ति-पूजादि करते हैं, क्या वह कुछ कार्य कारी हैं ?

उ०—(१) भक्ति-पूजादि संसार भ्रमण के लिए कार्यकारी है। आचार्यकल्प पं० टोडरमल जी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में लिखा है कि "जो जीव कपटकरि अजीविका के अर्थि वा बड़ाई के अर्थि वा किछु विषय-कषाय सम्बन्धी प्रयोजन विचारि जैनी होते हैं,वे तो पापी ही है। अति तीव्र कषाय भये ऐसी बुद्धि आवै है। उनका सुलझना भी कठिन है। क्योंकि जैन धर्म संसार का नाश के अर्थि सेइए है। ताकरि जो साँसारिक प्रयोजन साध्या चाहै सो बड़ा अन्याय करै है, तातै तेतो मिथ्यादृष्टि है ही। इसलिए साँसारिक प्रयोजन लिए जो धर्म साधै हैं, ते पापी भी हैं और मिथ्यादृष्टि तो है ही।"

प्र० २२—भाव स्तुति, द्रव्य स्तुति और जड़ स्तुति क्या है ?

उ०—(१) भाव स्तुति निर्विकल्प दशा है। (२) द्रव्य स्तुति पुण्य बंधका कारण है और जड़ स्तुति पुण्य-पाप या धर्म का कारण नहीं है, ज्ञान का ज्ञेय है।

卐 इति निश्चय स्तुति 卐

आठवाँ पाठ

मुनि का स्वरूप

प्र० १—मुनि का स्वरूप नियमसार में क्या बताया है ?

उ०—निर्ग्रन्थ हैं, निर्मोह है, व्यापार से प्रविमुक्त हैं।
हैं साधु, चउ आराधना में, जो सदा अनुरक्त हैं ॥गा० ७५॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अर्थ—समस्त व्यापार से रहित, ज्ञान-दर्शन-चारित्र-तप रूप चार आराधना में सदा रक्त, निर्ग्रन्थ और निर्मोह; ऐसे साधु होते हैं।

प्र० २—रत्नकरण्डश्रावकाचार में मुनि का स्वरूप क्या बताया हैं ?

उ०—विषयाशावशातीतो, निरारम्भो ऽपरिग्रहः ॥
ज्ञान ध्यान तपोरक्त स्तपस्वी स प्रशस्यते ॥१०॥

अर्थ—पाँच इन्द्रियों के विषयों की आशा से रहित, आरम्भ-परिग्रह रहित, ज्ञान-ध्यान- तप में लीन वह साधु प्रशंसा योग्य है। कैसे है दिगम्बर यति इसी गन्थ के १११ श्लोक में लिखा है सम्यग-दर्शन ज्ञान चारित्र इत्यादि गुणनिका निधान है। और कैसे हैं ? नही है अन्तरंग बहिरंग परिग्रह जिनके-ऐसे मठ-मकान-उपासरा-आश्रमादि रहित एकाकी अथवा गुरुजनों की चरणों की लार कभी वन में, कभी पर्वत की निर्जन गुफामें, कभी घोर वन में, कभी नदी किनारे में, नियम रहित हैं नित्य विहार जिनका, असंयमी गृहस्थों के संगम रहित, आत्मा की विशुद्धता जो परम वीतराग का साधन करता हुआ और लौकिक जनकृत पूजा स्तवन-प्रशंसादि को नहीं चाहता, परलोक में देवलोकादिक के भोगों को तथा इन्द्र, अहमिन्द्र ऐश्वर्य को रागरूप अंगारे तप्त महान आताप उपजावनेवाली, तृष्णा के बधाने वाले जानकर, परम अतीन्द्रिय आकुलता रहित आत्मिक सुख को सुख जानकर, देहादिक में ममत्व रहित आत्मकार्य साधै है।

प्र० ३—आचार्य कल्प पं० टोडरमल जी ने सामान्य रूप से साधु का स्वरूप क्या बताया है ?

उ०—जो विरागी होकर, समस्त परिग्रह का त्याग करके, शुद्धोपयोग रूप मुनि धर्म अंगीकार करके अन्तरंग में तो शुद्धो-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पयोग के द्वारा अपने को आप रूप अनुभव करते हैं; अपने उपयोग को बहुत नहीं भ्रमाते हैं। जिनके कदाचित् मन्दराग के उदय में शुभोपयोग भी होता हैं, परन्तु उसे भी हेय मानते हैं। तीव्र कषाय का अभाव होने से अशुभोपयोग का तो अस्तित्व ही नहीं रहता हैं, ऐसे मुनिराज ही सच्चे साधु हैं।

प्र० ४—मुनि किसका भोक्ता होता हैं ?

उ०—अतीन्द्रिय आनन्द का ही मुनि भोक्ता होता हैं।

प्र० ५—मुनि नग्न ही क्यों होना चाहिए ?

उ०—(अ) अनादि काल से आज तक कोई भी संसारी जीव स्पर्शन इन्द्रिय के बिना रहा नहीं। विचारिये, एक तरफ स्पर्शन इन्द्रिय है, दूसरी तरफ अतीन्द्रिय आत्मा है। स्पर्शन इन्द्रिय को जीते बिना अतीन्द्रिय आनन्द की प्राप्ति नहीं हो सकती, अतः स्पर्शन इन्द्रिय रहित अखण्ड आत्मा की प्राप्ति के लिए अखण्ड स्पर्शन इन्द्रिय को जीतना चाहिए। इसको जीते बिना मुनि नही हो सकता, इसलिए मुनि नग्न ही होना चाहिए अर्थात् बाह्य में कपड़े का धागा भी मुनि को नहीं होना चाहिए।

प्र० ६—अखण्ड आत्मा की प्राप्ति वाले मुनि को नग्न क्यों होना चाहिए।

उ०—रसना, घ्राण, चक्षु और कर्ण ये चार इन्द्रियाँ खण्ड-खण्ड रूप हैं। देखो, सुनना हो, तो कान से होता है। देखना हो, तो आँख से होता है। सूंघना हो, तो नाक से होता है और चखना हो, तो रसना से होता है। इसलिए ये चार इन्द्रियाँ खण्ड-खण्ड रूप है और स्पर्शन इन्द्रिय तमाम शरीर में अखण्ड है। अतः अखण्ड स्पर्शन इन्द्रिय को जीते बिना अखण्ड आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिए अखन्ड आत्मा की प्राप्ति करने वाले मुनि को नग्न ही होना चाहिए।

प्र० ७—लोक में क्यों कहा जाता है,कि रसना इन्द्रिय को जीतना मुश्किल है ओर लोकोत्तर मार्ग में क्यों कहा जाता है, स्पर्शन इन्द्रिय को जीतना मुश्किल है ?

उ०—[अ] कान दो, काम एक, सुनना होता है। आँख दो, काम एक देखना होता है। नाक के छेद दो, काम एक सूंघना होता है। जीभ एक, काम दो होते हैं, एक बोलना और दूसरा चखना। इस प्रकार कर्ण, चक्षु और घ्राण दो-दो हैं काम एक-एक है। लेकिन रसना एक, काम दो है इस प्रकार जीभ का चार गुना काम हुआ, इसलिए लौकिक में कहा जाता है कि जीभ को जीतना मुश्किल है। [आ] नग्न शरीर वाले को विकार होने पर सबको पता चल जाता हैं, इसलिए विकार को जीतने वाला मुनि नग्न ही होना चाहिए। इसी से लोकोत्तार मार्ग में स्पर्शन इन्द्रिय को जीतना मुश्किल कहा है।

प्र० ८—जीभ हमें क्या शिक्षा देती है ?

उ० जीभ अन्दर अन्धेरी गुफा में पड़ी है। इसके ऊपर पैने ३२ दान्त पुलिस जैसे खड़े है उपर दो होंट किवाड़ सरीखे हैं। जीभ ऐसी प्रतिकूल अवस्था में पड़ी हैं, तो भी वह अपने स्वभाव को नहीं छोड़ती और चखने योग्य पदार्थ कटु हो या स्वादिष्ट हो, तो भी वह उसका स्वाद लेती है उसाप्रकार हे आत्मा ! तुझे भी जीभ की तरह, अपने ज्ञाता दृष्टा स्वभाव को प्रतिकूल या अनुकूल संयोग मिलने पर भी नहीं छोड़ना चाहिए,यह जीभ से पात्र जीव को शिक्षा मिलती हैं।

प्र० ९ विशेष रूप से बंध का निमित्त कारण कौन हैं ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—पुद्गल में स्पर्श, रस, गन्ध, वर्ण ये चार विशेष गुण हैं। इनमें से रस की पाँच पर्यायें, गन्ध की दो पर्यायें, वर्ण की पाँच पर्यायें और स्पर्श की आठ पर्यायें हैं। इन आठ में से स्निग्ध और रूक्ष को छोड़कर बाकी छह पर्यायों के कारण तो स्कन्ध रूप बंध होता ही नही। मात्र स्निग्ध और रुक्ष पर्याय के कारण परमाणुओं में परस्पर बंध होता हैं; उसी प्रकार आठ कर्मों में से चार अघाति कर्म तो बंध के कारण नहीं हैं। ज्ञानावरणीय दर्शनावरणीय और अन्तराय का जितना उघाड़है वह भी बंध का कारण नहीं है और जितना उघाड़ नहीं है,वह भी बंध का कारण नहीं, मात्र मोहनीय कर्म ही बंध का निमित्त कारण है और मोहनीय में भी विशेष रूप से दर्शन मोहनीय बंध का निमित्त कारण हैं।

प्र० १०— मात्र मोहनीय कर्म बंध का निमित्त कारण हैं, इसमें आप क्या बताना चाहते हैं ?

उ०—जैसे परमाणुओ में स्निग्ध रुक्ष के कारण बंध होता है उसीप्रकार आत्मा में भी रागद्वेष ही बंध का कारण हैं। रागद्वेष को जीतना जभी बनेगा, जबकि स्पर्शन इन्द्रिय को जीता जावे इसलिए मुनि नग्न ही होना चाहिए।

प्र० ११—दीपक क्या शिक्षा देता है ?

उ०—जैसे जब तक दीपक में तेल रहता है, तब तक वह जलता रहता हैं; उसी प्रकार जब तक जीव में मोह रहेगा तब तक वह कोल्हू के बैल की तरह चारों गतियों में जन्म-मरण के दुःख उठाता रहेगा। अतः मुनि राग-द्वेषमोह रहित होता है, इसलिए मुनि नग्न ही होना चाहिए।

प्र० १२—जीभ हमें और क्या शिक्षा देती है ?

उ०—जैसे हाथ पर चिकनाहट लग जावे तो हम हाथों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

साबुन-पानी से धोते हैं तथा जीभ कितने ही चिकने पदार्थ खावे उसको साबुन और पानी की आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जीभ का स्वभाव लूखा है। जीभ अपने लूखे स्वभाव के कारण चिकनाई को तोड़े बिना नहीं रहती है; उसीप्रकार जो जीव अपने त्रिकाली ज्ञायक भगवान का आश्रय लेता है उसको रागद्वेष उत्पन्न ही नहीं होता, तब व्यवहार से कहा जाता है कि इसने रागद्वेष को छोड़ा है। मुनि को अपना आश्रय ही वर्तता है, इसलिए वीतरागी मुनि नग्न ही होता है।

प्र० १३—क्या मुनि को नग्न देखने से विकार उत्पन्न होता है ?

उ०—बिल्कुल नहीं। जैसे छोटा बच्चा है, नग्न है। यदि वह राजमहल में चला जावे, तो रानियाँ उसे प्यार करती है और बच्चे को नग्न देखने से किसी को भी विकार उत्पन्न नहीं होता है। यदि जवान विषयासक्त महल में चला जावे, तो उसका सिर काट दिया जाता है; उसी प्रकार मुनि को स्वयं तो विकार उत्पन्न नहीं होता, इतना ही नहीं, बल्कि वीतरागी मुनि को देख कर किसी को भी विकार उत्पन्न नहीं होता है, क्योंकि मुनि की नग्नता निर्दोषता का सूचक है, इसलिए वीतरागी मुनि नग्न ही होता है।

प्र० १४—वीतरागी साधु को भूमिकानुसार कैसा-कैसा राग हेय बुद्धि से होता है, स्पष्ट खोलकर समझाइए ?

उ० [अ] अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान और प्रत्याख्यान सम्बन्धी क्रोधादि के अभाव रूप शुद्धि तो निरन्तर वर्तती है; जो शुद्धि है वह वीतराग रूप है, उसे सकलचारित्र कहते हैं। छठ्ठे गुणस्थान में आने पर हेय बुद्धि से २८ मूलगुणों का पालन, बाईस परिषहों का सहन, बारह प्रकार के तप, कदाचित् अध्ययनादिक बाह्य धर्म क्रियाओं में प्रवर्तते हैं, कदाचित् आहार-विहारादि क्रियाओं

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होती हैं। उनकी दृष्टि तो एक मात्र अपने त्रिकाली भगवान पर होती है। अप्रमत्त दशा और प्रमत्त दशा पर भी उनकी दृष्टि नहीं होती है; वन खण्डादि में वास करते हैं, उद्दिष्ट आहारादि का ग्रहण उनके नहीं होता है। मुनि पद है, वह यथाजात रूप सद्र श है। जैसा जन्म होते हुए था वैसा नग्न है। पीछी-कमण्डल के अलावा उनके पास तिलतुम मात्र भी परिग्रह नहीं होता। ऐसे जैन मुनि को तीन चौकड़ी कषाय के अभाव रूप शुद्धि के साथ राग हेय बुद्धि से होता है, करते नहीं हैं।

प्र० १५—क्या भावलिंगी मुनि को छठ्ठे गुणस्थान में उदिष्ट आहारादि का विकल्प भी नहीं आता, यह जरा दृष्टान्त देकर समझाइए ?

उ०—(१) रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीता ने जंगल में अपने हाथ से बने मिट्टी के बर्तनों में आहार बनाया—दूसरी तरफ मुनि आहार के निमित्त नियम लेकर चलते हैं कि राजकुमार हो, जंगल में हो; अपने हाथ से मिट्टी के वर्तन बनाये हो, और स्वयं आहार बनाया हो, तो हम आहार लेंगे। आहार बनाने के बाद रामचन्द्र, लक्ष्मण, सीता आहार निमित्त बिचारते हैं। आकाश मार्ग से मुनि को आते देखकर, हे स्वामी तिष्ठो-तिष्ठो ! हमने मिट्टी के बर्तनों में स्वयं आहार बनाया है देखो ! ऐसा सहज ही स्वतः निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होता है।

(२) एक मुनि दो महीनों के उपवास के बाद आहार के निमित्त नियम ले के निकले, कि केले का साग हो, इसमें नमक, मिर्चादि ना हो, तो हम आहार ले—दूसरी तरफ एक गरीब श्राविका एक बाग में गयी, वहाँ के माली ने कहा बुढ़िया—ले यह केले का साग है। बुढ़िया ने घर पर आकर केले का साग बनाया। बनने के बाद सामने से मुनिराज आते देखे, तो पड़गाने को खड़ी हो गयी है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वामी ! तिष्ठो-तिष्ठो, मैंने केले का साग बनाया है ना नमक है ना मिर्च है, देखो आहार हो गया। श्रावक अपने निमित्त शुद्ध आहार बनावे तब मुनियों के आने का योग हो, तब सहज रूप से स्वयं स्वतः निमित्त नैमित्तिक सम्बन्ध बन जाता है। बनाना नहीं पड़ता है।

मुनि आहार के निमित्त पधारे और उन्हें यह संशय हो जावे, कि इस श्रावक ने हमारे लिए आहार बनाया है तो वह आहार नहीं लेंगे, वापस चले जावेगें, क्योंकि मुनि के उदिष्ट आहार का त्याग है। यदि उदिष्ट आहार लेने का विकल्प आ जावे, तो वह मुनि ही नही है।

प्र० १६—भावलिंगी मुनि को कैसा-कैसा भाव नहीं आता और कैसा भाव आ जावे, तो वह मुनि नहीं है, जरा खोलकर समझाइए ?

उ०—[१] भावलिंगी मुनि को अष्ट द्रव्य से पूजन का भाव आजावे तो मुनि पना नहीं रहेगा !

[२] एक मुनि रास्ते में जा रहे थे। रास्ते में प्यास से मरते हुए आदमी को देखा। देखकर मुनि ने विचारा "मैं इसको पानी दे देता, तो यह बच जाता लेकिन भगवान की आज्ञा नहीं है।" ऐसा भाव मुनि को आने पर जिनवाणी में आया है कि वह मुनि नहीं हैं, गुलाममार्गी है, क्योंकि मुनि स्वयं इस प्रकार पानी लेते नही, तव देने का विचार भी भावलिंगी मुनि को नही आता है। लेकिन श्रावक को पानी देने का भाव न आवे, तो वह श्रावक नहीं।

[३] दो मुनि हैं, एक ध्यान में बैठा है दूसरा आहार के निमित्त जा रहा है। सामने से एक भयंकर सिंह ध्यानस्थ मुनि पर हमलावर है। आहार के निमित्त जाने वाले मुनि में इतनी ताकत है कि उस सिंह को कान पकड़ कर बैठा दें, तो भी भावलिंगी मुनि को उसे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बचाने का भाव नहीं आवेगा। यदि बचाने का भाव आ जावे तो मुनिपना नष्ट हो जावेगा और उसी समय वहाँ श्रावक हो उसे मुनि को बचाने का भाव ना आवे, तो श्रावकपना नष्ट हो जावेगा।

[४] मुनि के पास पीछी-कमण्डल के अलावा और कुछ नहीं होता है। शास्त्र भी किसी श्रावक ने दिया तो पढ़कर वहीं छोड़ देते हैं। मुनि को किसी ने शास्त्र दिया, वह शास्त्र मुनि ने पढ़ा भी नहीं है, ऐसे समय में कोई श्रावक उनसे माँग ले, तो भावलिंगी मुनि तुरन्त दे देंगे; यदि मना करदे या देने का भाव ना आवे, तो मुनिपना नष्ट हो जावेगा।

[५] पीछी-कमण्डल के अलावा तिलतुष मात्र भी मुनि परिग्रह नहीं रखते हैं, यदि रखे, तो निगोद जाता है।

प्र० १७—भरतक्षेत्र पंचम समय, साधु परिग्रह वंत, कोटि सात अरू अर्ध सब, नरकहिं जाय परन्त ॥ २८ ॥ ब्रह्मविलास पृष्ठ २७८ में ऐसा क्यों कहा है ?

उ०—मुनि नाम रखा कर ग्रन्थमाला चलावे, मन्दिर बनवाने का तथा मन्दिरों की प्रतिष्टा कराने का कार्य करे, चेला-चेलियों से अपने को बड़ा माने,हीटर लगावे, घड़ी, चश्मा आदि अपने पास रक्खे, शहरों में रहे, श्रावकों को बैल की तरह हाँकै, दातार की स्तुति करके दानादि ग्रहण करे, वस्त्रों मैं आसक्त हो, परिग्रह ग्रहण करने वाला हो, याचना सहित हो, अधःकर्म दोषों में रत हो। यन्त्र-मन्त्र तन्त्रादि करते हो। गृहस्थों के बालकों को प्रसन्न करना, समाचार कहना,मन्त्र-औषधि ज्योतिषादि कार्य बतलाना तथा किया कराया, अनुमोदित भोजन लेना आदि कार्यों में रत रहते हो तथा शुभ भावों से मोक्षमार्ग और मोक्ष होता है। निमित्त से उपादान में कार्य होता है। व्यवहार के कथन को सच्चा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कथन मानने, और अनुमोदना करने वाले भरतक्षेत्र से पंचमकाल में साढ़े सात करोड़ मुनि नरक जावेंगे, ऐसा ब्रह्म विलास का तात्पर्य है, क्योंकि शास्त्रों में कृत, कारित, और अनुमोदना का एक सा फल कहा है।

प्र० १८—जैसा ब्रह्म विलास पृष्ठ २७८ के २८ वें दोहे में कहा है, ऐसा कहीं क्या और आचार्यों ने भी कहा है ?

उ० "घरये पंचम काला, जिनवर लिंग धार सव्वेसि। साढ़े सात करोड़म्, जाइये निगोद मज्झमी। ऐसा आचार्यों ने कहा है।

प्र० १९..."धरये पंचम काला" यह श्लोक किस शास्त्र का है ?

उ०—शास्त्र का नाम हमारे याद नहीं है, एक भाई ने हमें यह श्लोक बताया था।

प्र २०—क्या आजकल सच्चे मुनि-क्षुल्लक देखने में नहीं आते है ?

उ०—हाँ भाई,पंचमकाल में भावलिंगी मुनिश्वर-अर्जिका-क्षुल्लक का समागम देखने में नहीं आता है।

प्र० २१—पंचमकाल में भावलिंगी मुनि आदि का समागम देखने में नहीं आता है, ऐसा कहीं रत्नकरण्ड श्रावकाचार जो श्रावको का ग्रन्थ है, कहीं लिखा है ?

उ०—रत्नकरण्ड श्रावकाचार श्लोक ११७ के अर्थ में लिखा है कि "और इस पंचमकाल में बीतरागी भावलिंगी साधु ही कोई विरला देशान्तर में तिष्ठै है तिनका पावना होय नाहीं। पात्र का लाभ होना चतुर्थ काल में ही बड़े भाग्य तें होय था। परन्तु इस क्षेत्र में पात्र तो बहुत थे, अब इस दुःखम काल में यथावत् धर्म के धारक पात्र कहीं देखने में ही नाहीं आवें। धर्म रहित अज्ञानी लोभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बहुत विचरै हैं सो अपात्र इस काल में धर्म पाय करिकै गृहस्थ जिन धर्म के धारक श्रद्धानी कोई कहीं कहीं पाइए हैं। जे वीतराग धर्म कूं श्रवण करि कुधर्म की आराधना दूर ही तै त्याग करि, नित्य ही अहिंसा धर्म के धरने वाले जिन वचनामृत पान करने वाले शीलवान सन्तोषी तपस्वी ही पात्र हैं अन्य भेषधारी बहुत विचरैं हैं। जिनके मुनि-श्रावक धर्म का सत्य सम्यग्दर्शनादिक का ज्ञान ही नाहीं, ते कैसें पात्र पना पावै ? मिथ्यादर्शन के भावकरि आत्मज्ञान रहित लोभी भये, जगत में धनादिकनिका-मिष्ट आहार दान का इच्छुक भये, बहुत विचरै हैं ते अपात्र हैं। तातैं पात्रदान होना अति दुर्लभ है। यहाँ ऐसा विशेष जानना, जो कलिकाल में भावलिंगी मुनीश्वर तथा अर्जिका क्षुल्लक का समागम तो है ही नाहीं।"

प्र० २२—पीछी-कमण्डल के अलावा तिलतुष मात्र भी परिग्रह रक्खे वह निगोद जाता है ऐसा कहीं पंचमकाल के आचार्य कुन्दकुन्द भगवान ने कहा है ?

उ०—"जह जाय रुव सरियो तिलतुसमित्तं ण गहदि अत्थेसु।
जह लेह अप्प-बहुयं, तोत्तो पुण जाइ णिग्गोयं ॥१७॥"

सूत्रपाहुड श्लोक १८ में कुन्दकुन्द भगवान ने ऐसा है।

प्र० २३—सूत्रपाहुड़ १८ का भावार्थ क्या है ?

उ०—गृहस्थपने में बहुत परिग्रह रखकर कुछ प्रमाण करे, तो भी स्वर्ग- मोक्ष का अधिकारी होता है और मुनिपने में किंचित् परिग्रह अंगीकार करने पर भी निगोद गामी होता है इसलिए ऊँचा नाम रखाकर नीचे प्रवृत्ति युक्त नहीं है। देखो, हुण्डावसर्पिणी काल में यह कलिकाल चल रहा है। इसके दोष से जिनमत में मुनि का स्वरूप तो ऐसा है जहाँ बाह्याभ्यन्तर परिग्रह का लगाव नहीं है, केवल अपने आत्मा का आप रूप अनुभव करते हुए, शुभाशुभ-भावों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

से उदासीन रहते हैं, और अब विषय कषायासक्त जीव मुनिपद धारण करते हैं वहाँ सर्व सावद्य के त्यागी होकर पंच महाव्रतादि अंगीकार करते हैं, भोजनादि में लोलुपी रहते हैं, अपनी पद्धति बढ़ाने के उद्यमी होते हैं व कितने ही धनादि भी रखते हैं, हिंसादिक करते हैं व नाना आरम्भ करते हैं। परन्तु अल्प परिग्रह ग्रहण करने का फल निगोद कहा हैं, तब ऐसे पापों का फल तो अनन्त संसार होगा ही होगा।

प्र० २४—जो मुनि ऐसा करते हैं, क्या उन्हें मुनि नहीं मानना चाहिए ?

उ०—लोगों की अज्ञानता देखो, कोई एक छोटी सी प्रतिज्ञा भंग करे, उसे तो पापी कहते हैं और ऐसी बड़ी प्रतिज्ञा भंग करते देखकर भी उन्हें गुरु मानने हैं उनका मुनिवत् सम्मानादि करते हैं, सो शास्त्र में कृत, कारित, अनुमोदना का एक फल कहा है। इसलिए वे सब निगोद के पात्र हैं।

प्र० २५—मुनिपद लेने का क्रम क्या है ?

उ०—पहले तत्त्वज्ञान हो, पश्चात् उदासीन (शुद्ध) परिणाम होते हैं, परीषहादि सहने की शक्ति होती है, तब वह स्वममेव मुनि होना चाहता है और तब श्री गुरु मुनि धर्म अंगीकार कराते हैं।

प्र० २६—वर्तमान में कैसी विपरीतता है ?

उ०—तत्त्वज्ञान रहित विषय-कषायासक्त जीवों को माया से व लोभ दिखाकर मुनि पद देना, अन्यथा प्रवृत्ति कराना सो बड़ा अन्याय है। सो हाय हाय ! यह जगत राजा से रहित है, कोई अन्य पूछने वाला नहीं है।

प्र० २७—जैन शास्त्रों में वर्तमान में केवली का तो अभाव कहा है, मुनि का तो अभाव नहीं कहा है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—ऐसा तो कहा नहीं है कि इन देशों में सद्भाव रहेगा परन्तु भरत क्षेत्र में कहते हैं, सो भरतक्षेत्र तो बहुत बड़ा है; कहीं सद्भाव होगा इसलिए अभाव नहीं कहा है। यदि तुम रहते हो उसी क्षेत्र में सद्भाव मानोगे; तो जहाँ ऐसे भी गुरु नहीं मिलेंगे, वहाँ जावोगे तब किस को गुरु मोनोगे ? जिस प्रकार हंसों का सद्भाव वर्तमान में कहा है, परन्तु हंस दिखायी नहीं देते तो और पक्षियों को हंस नहीं माना जाता; उसी प्रकार वर्तमान में मुनियों का सद्भाव कहा है परन्तु मुनि दिखायी नहीं देते तो औरों को तो मुनि माना नहीं जा सकता।

प्र० २८—अब श्रावक भी तो जैसे सम्भव है वैसे नहीं हैं इसलिए जैसे श्रावक वैसे मुनि ?

उ०—श्रावक संज्ञा तो शास्त्र में सर्व गृहस्थ जैनियों को है। श्रेणिक भी असंयमी था, उसे उत्तर पुराण में श्रावकोत्तम कहा है। बारह सभाओं में श्रावक कहे हैं वहाँ सर्व व्रतधारी नहीं थे। यदि सर्व व्रतधारी होते, तो असंयत मनुष्यों की अलग संख्या कही जाती, सो कहीं नहीं है; इसलिए गृहस्थ जैन श्रावक नाम प्राप्त करता है और मुनि संज्ञा तो निर्ग्रन्थ के सिवाय कहीं-कही नहीं है। श्रावक के आठ मूलगुण कहे हैं; इसलिए मद्य, माँस, मधु, पाँच उदम्बरादि फलों का भक्षण श्रावकों के नहीं, इसलिए किसी प्रकार से श्रावकपना तो सम्भवित भी है; परन्तु मुनि के अट्ठाईस मूलगुण हैं सो वेषियों के दिखायी ही नहीं देते। इसलिए मुनिपना किसी प्रकार सम्भव नहीं है।

प्र० २९—जिनलिंगी होकर अन्यथा प्रवर्ते, तो क्या होगा ?

उ०—आदिनाथ जी के साथ चार हजार राजा दीक्षा लेकर पुनः भ्रष्ट हुए; तब उनसे देव कहने लगे—'जिनलिंगी होकर अन्यथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रवर्तोगे तो हम दण्ड देंगे। जिनलिंग छोड़कर जो तुम्हारी इच्छा हो, सो तुम जानो" इसलिए जिनलिंगी कहलाकर अन्यथा प्रवर्ते, तो वे दण्ड योग्य है; वन्दनादि योग्य कैसे होंगे ? अब अधिक क्या कहे, जिन मत में कुवेषं धारण करते हैं वे महापाप करते हैं, अन्य जीव जो उनकी सेवा—सुश्रुषा आदि करते हैं, वे भी पापी होते हैं, क्यों पद्मपुराण में लिखा है कि "श्रेष्ठी धर्मात्मा चारण मुनियों को भ्रम से भ्रष्ट जानकर आहार नहीं दिया, तब जो प्रत्यक्ष भ्रष्ट हैं, उन्हें दानादि देना कैसे सम्भव है ? अर्थात् कभी भी नहीं।

प्र० ३०—हमारे अन्तरंग में श्रद्धान सत्य है परन्तु बाह्य लज्जादि से शिष्टाचार करते हैं; सो फल तो अन्तरंग का होगा ?

उ०—दर्शन पाहुड श्लोक १३ में" लज्जादि से वन्दनादिक का निषेध वतलाया है। कोई जबरदस्ती मस्तक झुकाकर हाथ जुड़वाये तो यह सम्भव है कि हमारा अन्तरंग नहीं था; परन्तु आपही मानादिक से नमस्कारादि करे, वहां अन्तरंग कैसे ना कहे ? जैसे कोई अन्तरग में तो माँस को वुरा जाने, परन्तु राजादिक को भला मनवाने को माँस भक्षण करे, तो उसे व्रती कैसे माने ? उसी प्रकार अन्तरंग में कुगुरु सेवन को बुरा जाने, परन्तु उनको व लोगों को भला मनवानें के लिए सेवन करे, उसे श्रद्धानी कैसे कहे ? इसलिए बाह्य त्याग करने पर ही अन्तरंग त्याग सम्भव है। इसलिए जो श्रद्धानी जीव हैं, उन्हें किसी प्रकार से भी कुगुरुओं की सेवा-सुश्रुषा आदि करना योग्य नहीं है।

प्र० ३१—जिस प्रकार राजादिक को करता है, उसी प्रकार इनको भी करें, तो क्या नुकसान है ?

उ०—राजादिक धर्म पद्धति में नहीं है गुरु का सेवन धर्म पद्धति में हैं। राजादिक का सेवन लोभादिक से होता हैं; वहाँ चारित्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मोहनीय का ही उदय सम्भव हैं; परन्तु गुरु के स्थान पर कुगुरु का सेवन किया, वहाँ तत्व श्रद्धान के निमित्तकारण गुरु थे, उनसे यह प्रतिकुल हुआ। सो लज्जादिक से जिसने निमित्तकारण में विपरीतता उत्पन्न की, उसके उपादान कार्य भूत तत्त्वश्रद्धान में दृढ़ता कैसे सम्भव है ? इसलिए कुगुरु के सेवन में दर्शन मोह का उदय है। इसलिए पात्र जीवों को मुनि का लक्षण जानकर ही उनको मानना चाहिए।

प्र० ३२—"मुनि" शब्द किस-किस को लागू होता है ?

उ०—'मुनि' शब्द चौथे गुणस्थान से लेकर १२ वें गुणस्थान तक लागू होता हैं। अर्थात् ४ से १२ तक सर्व 'मुनि' नाम से सम्बोधन किये जा सकते हैं।

प्र० ३३—'मुनि' का अर्थ असंयत सम्यग्दृष्टि आदि आपने कहाँ से कर दिया ?

उ०—अरे भाई श्री समयसार कलश टीका में कलश १०४ में "एते तत्र निरताः अमृतं विंदन्ति" (एते) विद्यमान जो सम्यग्दृष्टि मुनीश्वर (तत्र) शुद्ध स्वरूप के अनुभव में (निरताः) मग्न हैं वे (परमं अमृतं) सर्वोत्कृष्ट अतीन्द्रिय सुख को (विन्दति) आस्वादते हैं।

(२) कलश १५२ में "तत् मुनिः कर्मणा नो बध्यते" (तत्) तिस कारण से (मुनिः) शुद्ध स्वरूप अनुभव विराजमान सम्यग्दृष्टि जीव (कर्मणा) ज्ञानावरणादि कर्म से (नो बध्यते) नहीं बंधता हैं।

(३) कलश १८६ में "अनपराधः मुनि न बध्येत" (अनपराधः) कर्म के उदय के भाव को आत्मा का जान कर नहीं अनुभवता हैं ऐसा है जो (मुनिः) पर द्रव्य से विरक्त सम्यग्दृष्टि जीव (न बध्येत) ज्ञानावरणादि कर्मपिण्ड के द्वारा नहीं बाँधा जाता है।

(४) कलश १९० में "अतः मुनिःपरम शुद्धता व्रजति च अचिरात

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मुच्यते'' (अतः) इस कारण से (मुनिः) सम्यग्दृष्टि जीव (परम शुद्धतां व्रजति) शुद्धोपयोग परिणति रूपी परिणमता हैं(च) ऐसा होता हुआ (अचिरात् मूच्यते) उसी काल कर्मबन्ध से मुक्त होता है।

इन चार कलशों में सम्यग्दृष्टि कों "मुनि" कहा हैं अतः चौथे गुणस्थान से लेकर १२ वें तक सब मुनि कहलाते हैं। परन्तु ७ वें से १२ वें गुणस्थान तक वाले उत्तम मुनि, पाँचवें छठ्ठे गुणस्थानी मध्यम मुनि और चौथे गुणस्थानी असंयत सम्यग्दृष्टि जघन्य मुनि कहलाते हैं।

प्र० ३४—"मुनि' अप्रमत्त और प्रमत्त दशा से गिर जावे, तो क्या होता है, जरा दृष्टान्त देंकर समझाइये ?

उ०—जैसे सरकस में दो झूला होते हैं। उस पर एक लड़की कभी उस झूले पर और कभी उस झूले पर तेजी से आती-जाती है। उसके नीचे सरकस वाले जाली लगाते हैं ताकि यदि गिर जावे तो चोट ना लगे। प्रथम तो वह गिरती ही नहीं है,यदि गिर जावे तो ताल ठोककर फिर तत्काल झूलेपर चढ़ जाती है और यदि वह जाली पर पड़ी रहे तो उसे उठाकर अन्दर ले जाते हैं; उसीप्रकार भावलिंगी मुनीश्वर छठ्ठे-सातवें गुणस्थान में झूला-झूलते हैं अव्वल तो गिरते नहीं हैं और अपने परिपूर्ण स्वभाव का आश्रय वढ़ाकर सिद्ध दशा को प्राप्त कर लेते हैं और यदि गिर जावे तो उग्र पुरुषार्थ बढ़ाकर फिर चढ़ जाते हैं। यदि गिर जावे, तो कोई पाँचवें, कोई चौथे गुणस्थान में और कोई मिथ्यादृष्टि तक हो जाता हैं।

प्र० ३५—मुनि गिर जावे तो बहुत से मुनि सर्वार्थसिद्धि में ३३ सागर की आयु पर्यन्त रहते हैं, वह तो ठीक है ना ?

उ०—जैसे एक रिश्तखोर हैडमास्टर ने एक चौथी कक्षा के लड़के से रिश्वत लेकर सातवीं कक्षा में कर दिया। रिश्वत ना लेने

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाले स्कूल इन्सपेक्टर ने उसकी परीक्षा ली, तो उससे सातवीं कक्षा का प्रश्न पूछा, वह ना बता सका, फिर छठी कक्षा का प्रश्न पूछा, वह ना बता सका; फिर पाँचवी कक्षा का प्रश्न पूछा, वह ना बता सका, फिर चौथी कक्षा का प्रश्न पूछा, तो उसने बता दिया। तो इन्सपेक्टर ने दण्ड स्वरूप १० वर्ष तक उसी चौथी क्लास में रहने का हुक्म दिया। क्या वह लड़का १० वर्ष तक उस कक्षा में रहता हुआ आनन्द मानेगा ? आप कहेगे कभी नहीं; उसी प्रकार भावलिंगी मुनीश्वर सातवें गुणस्थान में आनन्द की लहर की अतीन्द्रिय रस पीते हैं और उनका आयुष्यपूर्ण होने पर विग्रहगति में चौथा गुणस्थान आ जाता है और फिर सर्वार्थसिद्धि में ३३ सागर पर्यन्त चौथे गुणस्थान में रहना होता है। क्या वे आनन्द मानते होंगे ? आप कहेंगे, कभी नहीं।

प्र० ३६—सच्चे और झूंठे मुनि के स्वरूप को जानने के लिए हम किस शास्त्र को देखें, जिससे सब बात सुगमता से समझ में आ जावें ?

उ०—मोक्षमार्ग प्रकाशक छठ्ठे अधिकार में गुरु के वर्णन में आचार्य कल्प पं० टोडरमल जी ने खूब स्पष्ट किया है। वहाँ से अच्छी तरह पढ़कर जान लेवे।

प्र० ३७—श्री कुन्दकुन्द भगवान ने नियमसार जी में क्या आदेश दिया है ?

उ०—जो कर सको तो ध्यानमय प्रतिक्रमण आदिक कीजिये।
यदि शक्ति हो नहि तो अरे श्रद्धान निश्चय कीजिये ॥१५४॥
हैं जीव नाना, कर्म नाना, लब्धि नाना विधि कही,
अतएव ही निज-पर समय सह वाद परिहर्तव्य है ॥१५६॥
निधि पा...मनुज तत्फल वतन में गुप्त रह ज्यों भोगता
त्यों छोड़ परजन-संग ज्ञानी ज्ञान निधि को भोगता ॥१५७॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नवमा पाठ

भगवान की पूजा

प्र० १— भगवान का दर्शन पूजा करते समय हमें क्या भावना भानी चाहिए ?

उ०—भगवान ! मेरा वर्तमान आपका भूतकाल जैसा है, लेकिन मेरा भविष्य आपका वर्तमान जैसा हो—ऐसी मेरी भावना है अर्थात् आप भूतकाल में मोही-रागी द्वेषी थे, वैसा ही मैं वर्तमान में हूँ। इसलिए तो मुझे आपका दर्शन-पूजा करने का भाव आया हैं, किन्तु जैसे आप वर्तमान में वीतराग हो, वैसे मैं भी वीतराग बन जाऊँ-ऐसी मेरी भावना है।

प्र० २— पूजा क्या है ?

उ०—जैसा अपना त्रिकाली स्वभाव है, उसमें लीन हो जाना वह पूजा है।

प्र० ३—पूजा कितने प्रकार की है ?

उ०—पूजा का कथन पाँच प्रकार से है। [१] शक्ति रूप पूजा, [२] एकदेश भावपूजा, [३] द्रव्यपूजा,]४] जड़पूजा [५] पूर्ण देश भावपूजा।

प्र० ४—शक्ति रूप पूजा क्या है ?

उ०—त्रिकाली परम पारिणमिक ज्ञायक भाव रूप शक्ति है वह शक्तिरूप पूजा हैं यह शक्ति रूप पूजा प्रत्येक प्राणी अर्थात् निगोद से लगाकर सिद्ध दशा तक सबके पास एक समान है।

प्र० ५—एक देश भाव पूजा क्याहै ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—शक्ति रूप पूजा के आश्रय से जो एकदेश शुद्धि प्रगटी वह एक देश भाव पूजा हैं। यह चौथे गुणस्थान से १२ वें गुणस्थान तक होती हैं। अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना एकदेश भाव-पूजा की प्राप्ति नहीं हो सकती है।

प्र० ६—द्रव्य पूजा क्या है ?

उ०—शक्तिरूप पूजा के आश्रय से एकदेश शुद्धि प्रगटी, उसके साथ गुणस्थान अनुसार ज्ञानी को अस्थिरता सम्बन्धी जो शुभभाव है वह द्रव्यपूजा हैं और वह बन्ध का कारण हैं। लेकिन ज्ञानी को भूमिकानुसार इसी प्रकार का राग होता हैं,करता नहीं है। यह द्रव्य पूजा भी वास्तव में ज्ञानी को होती हैं अज्ञानी को नहीं होती हैं।

प्र० ७—जड़ पूजा क्या है ?

उ०—सामग्री चढ़ाने की क्रिया, पूजा बोलने का क्रिया आदि जड़ पूजा हैं, यह पुद्गल की क्रिया हैं। ना यह पुण्य हैं, ना पाप है, ना धर्म है, परन्तु ज्ञानी के द्रव्य पूजा का और जड़ पूजा निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध हैं।

प्र० ८—पूर्णदेश भावपूजा क्या है ?

उ०—शक्ति रूप पूजा का परिपूर्ण आश्रय लेना अर्थात् आत्मा की सम्पूर्णशुद्धि, यह पूर्णदेश भावपूजा है। यह अरहन्त और सिद्ध अवस्था है।

प्र० ९—पाँचों प्रकार की पूजा का क्या-क्या फल है ?

उ०—(१) शक्तिरूप पूजा कहो, भगवान बनने की शक्ति कहो; परम पारिणामिक भाव कहो,ज्ञायक भाव कहो,स्वभाव त्रिकाली कहो या जीव कहो एक ही बात है। (२) शक्तिरूप पूजा का आश्रय लेने से ही एक देश भाव पूजा की प्राप्ति होती है यह शुद्धभाव है। (३) एक देशभाव पूजा के साथ अस्थिरता सम्बन्धी राग हेय बुद्धि से आता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, यह द्रव्य पूजा पुण्य बन्ध का कारण है। (४) जड़ पूजा शरीर क्रिया है, जो इसका मालिक बनता है वह चारों गतियों में घूमकर निगोद की प्राप्ति करता है। जड़ पूजा और द्रव्य पूजा करते-करते धर्म की प्राप्ति होती है यह भाव अनन्त संसार का कारण है। (५) अपनी शक्तिरूप पूजा का परिपूर्ण आश्रय लीनता-होने पर साध्यदशा की प्राप्ति पूर्णदेश भावपूजा है। यह क्षायिक दशा सादिअनन्त रहती है।

प्र० १०—पाँच प्रकार की पूजा में नौ पदार्थ, काल, पाँच भाव, संयोग आदि पाँच भाव, देवगुरु धर्म, हेय, उपादेय, ज्ञेय, नमस्कार, सुखदायक दुःखदायक लगाकर बताओ ताकि स्पष्ट रूप से समझ में आवे ?

उ०—(१) शक्तिरूप पूजा=जीव। (२) एकदेश भाव पूजा= सम्वर निर्जरा। (३) द्रव्य पूजा=आस्रव - बन्ध, पुण्य-पाप। (४) जड़पूजा=अजीव। [५] पूर्णदेश भाव पूजा=मोक्ष है। इसी प्रकार बाकी बोल लगाकर लाभ नुकसान बताओ ?

प्र० ११—अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना पूजा-पाठ आदि कुछ भी कार्यकारी नहीं है ऐसा आप कहते हो, तो जो लोग वर्तमान में सम्यग्दर्शन के बिना पूजा पाठ आदि करते हैं वह छोड़ देंगे, इसलिए ऐसा कहने से जीवों का बुरा होना सम्भव है।

उ०—सत्य से किसी भी जीव को हानि होगी ऐसा कहना ही बड़ी भूल है, अथवा असत् कथन से लोगों को लाभ मानने के बराबर है। सत् का श्रवण या अध्ययन करने से जीवों को कभी हानि हो ही नहीं सकती। पूजा, पाठ, सिद्धचक्र का पाठ, सामायिक आदि करने वाले ज्ञानी हैं या अज्ञानी, यह जानना आवश्यक है। यदि पूजा-पाठ आदि करने वाले अज्ञानी हैं, तो उनके सच्चे पूजा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पाठ आदि हैं ही नहीं, इसलिए उन्हें छोड़ने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। यदि पूजा-पाठ आदि करने वाले ज्ञानी होंगे, तो छद्मस्थ दशा में वे पूजा-पाठ आदि का त्याग करके अशुभ में जावेंगे, ऐसा मानना न्याय विरुद्ध है। परन्तु ऐसा हो सकता है कि वे क्रमशः द्रव्यपूजा-पाठ आदि शुभभावों को टालकर शुद्ध भाव की वृद्धि करें और क्रमशः पूर्णदेश भावपूजा की प्राप्ति करे और यह तो लाभ का कारण है, हानि का नहीं, इसलिए सत्य कथन से किसी को भी हानि नहीं हो सकती है। सम्यग्दर्शन प्राप्त किये बिना पूजा-पाठ आदि कार्यकारी नहीं हो सकते हैं इसलिए पात्र जीव को प्रथम सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए। सम्यग्दर्शन स्वपर का श्रद्धान करने पर होता है तथा वह श्रद्धान द्रव्यानुयोग का अभ्यास करने से होता है। इसलिए प्रथम द्रव्यानुयोग के अनुसार श्रद्धान करके सम्यग्दृष्टि बनना योग्य है। बुधजनजीने छहढाला में कहा हैं कि "सम्यक् सहज स्वभाव आपका अनुभव करना। या विन जप-तप व्यर्थ कष्ट के माँही पड़ना।"

प्र० १२—किसको पूजना चाहिए ?

उ—"जिन गृहे जिननाथमहं यजे" (अहं) मैं (जिननाथ) जिन-नाथ को (जिनगृहे) जिनमन्दिर में (यजे) पूजता हूँ।

प्र० १३—जिननाथ कौन है ?

उ०—अरहंत-सिद्धादि जिननाथ निमित्त रूप है। वास्तव में अपना त्रिकाली स्वभाव वह जिननाथ है। अपने जिननाथ का आश्रय लेने पर सच्चे जिननाथ का पता चलता है, क्योंकि अनुपचार हुये विना उपचार का आरोप नहीं आ सकता है।

प्र० १४—"नाथ" किसे कहते हैं ?

उ०—जो प्राप्त की रक्षा करे और जो प्राप्त नहीं है उसे प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करावे, वह नाथ है अर्थात् अपने त्रिकाली नाथ के आश्रय से जो शुद्धता प्रगट हुई है उसकी रक्षा करे और जो शुद्धता अप्रगट है उसे प्राप्त करावे वह वास्तव में अपना त्रिकाली भगवान वह "नाथ" है, निमित्तरूप पंचपरमेष्ठी वह अपने नाथ हैं।

प्र० १५—(जिनगृहे) मन्दिर कैसा है ?

उ०—"धवल मंगल गानरवाकुले" उज्जवल और कल्याणकारी स्तवनों की आवाजों से गूंज रहा है, ऐसा मन्दिर है।

प्र० १६—आजकल मन्दिरों में उज्जवल और कल्याणकारी स्तवनों की आवाजों की गूंज के अलावा, क्या देखा जाता है ?

उ०—(१) फलां बाई कैसी साड़ी पहर के आती है, फलां बाई ने कैसा जेवर पहरा है, फलां बाई की आवाज और शक्ल कितनी सुन्दर है। (२) आज घर से पत्र आया है अम्माजी बीमार है, आज इन्कमटैक्स, सेलटैक्स की तारीख है, आज उतने रुपयों का लाभ हुआ, आज इतने रुपयों का नुकसान हुआ, आज हमारे घर किसने आना है या जाना हैं। (३) आज मुन्नी को दिखाना है, लड़की दर्शन कर रही होगी, लड़का उसकी सुरीली आवाज और शक्ल देखकर पसन्द कर लेगा, यहा मन्दिर में ही देखना तै किया है। (४) मैंने इतने उपवास किये हैं मैंने इतना दान दिया है। मैं रात्रि को भोजन नहीं खाता, यदि शुभभाव करते रहे तो क्रम से धर्म की प्राप्ति हो जावेगी आदि सांसारिक बातें ही देखने में आती है जिसका फल अनन्त संसार है। अतः पात्र जीवों को लौकिक बातें नहीं करनी चाहिए, क्योंकि मन्दिर का स्थान तो भव के अभावरूप, जन्ममरण के अभाव के लिए निमित्त रूप है, उसे लौकिक कार्यों का निमित्त बनाये, वह निगोद का कारण है।

प्र० १७—उज्जवल और कल्याणकारी स्तवनों की आवाजों की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गूँज के निमित्तरूप जिन मन्दिर में भव्य जीवों को कैसा भाव आता है ?

उ०—"उदक चन्नन तन्दुल पुष्पकैः चरु सुदीप सुधूप फलार्घं कैः" जल, चन्दन, अक्षत, पुष्प, चरू, दीप,धूप और फल-अष्ट द्रव्यरूप पूजन सामग्री से पूजा करने का भाव हेय बुद्धि से आता है; ज्ञानी का वह भाव पुण्य बंध का कारण है।

प्र० १८—सामग्री बनाना-चढ़ाना, पूजा-पाठ शब्द का कर्त्ता कौन है और कौन नहीं है ?

उ०—सामग्री बनाने-चढ़ाने का कर्त्ता आहारवर्गणा है पूजा-पाठ के शब्द का कर्ता भाषावर्गणा है, जीव नहीं है। जो जीव जड़ के कार्य को अपना मानता है वह उस मान्यता के कारण चारों गतियों में घूमकर निगोद में जाता है, क्योंकि कुन्दकुन्द भगवान ने समयसार की ८५ वीं गाथा की टीका में "दूसरे की क्रिया, अपनी मानने वाले को जिनमत से बाहर और द्विक्रियावादी कहा है"।

प्र० १९—क्या सामग्री बनाना-चढ़ाना और पूजा-पाठ का शब्द आत्मा के भाव बिना होता है ?

उ०—हाँ भाई, आत्मा के भाव का उसके साथ अत्यन्ताभाव हैं। वास्तव में सामग्री चढ़ाने का, पूजा-पाठ के शब्द निकलने का साधक जीव के अस्थिरता सम्बन्धी राग का और ज्ञान करने का एक ही समय हैं; सब अपने अपने रूप से स्वतन्त्र हैं। अज्ञानी को जड़-चेतन की स्वतन्त्रता का ज्ञान नही है। अज्ञानी जीव सामग्री चढ़ाते-पूजापाठ आदि बोलते समय मिथ्यात्व की पुष्टि करते हैं। इसलिए पात्र जीवों को एक मात्र अपने त्रिकाली भगवान का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए, तब पूजा आदि विकल्पों को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पराश्रितो व्यवहार कहा जा सकता है, क्योंकि स्वाश्रितनिश्चय विना पराश्रितो व्यवहार नहीं कहा जा सकता है।

जल

प्र० २०—उदक अर्थात् जल से पूजा कौन कर सकता है और कौन नहीं कर सकता है ?

उ०—सबसे प्रथम जल से पूजा की जाती हैं, उसका कारण यह हैं कि जल नरम-प्रवाहित द्रवीभूत है। उसी प्रकार जिसका हृदय कठोर हो, तीव्रकषायी हो, वह भगवान की पूजा करने लायक नहीं है। और जिसका हृदय द्रवीभूत नरम अर्थात् मन्दकषायी हो, वह ही भगवान की जल से यथार्थ पूजा कर सकता है।

प्र० २१—जल से भगवान की पूजा का अधिकारी कौन है और नहीं है ?

उ०—जल अस्वच्छता का नाश कर स्वच्छता करता है। पूजन करते समय जिसके हृदय में मोह-राग द्वेष,रूप मलिनता का नाश होकर शुद्धता प्रगटे और शुद्धता की वृद्धि होवे, वह ही भगवान की जल से पूजा का सच्चा अधिकारी है। जिसके हृदय में मोह-राग द्वेष हो, यह भगवान की जल से पूजा करने सच्चा अधिकारी नही है।

प्र० २१—जल से पूजा करना सार्थक कब है और कब नहीं है ?

उ०—जैसे जल जब स्वच्छ हो अ ौरस्थिर हो, तब उसमें अपनी मुखाकृति भासती है, वैसे ही अपना हृदय में से मोह, मिथ्यात्व की मलिनता दूर होकर स्वच्छता (शुद्धता) प्रगटे और राग-द्वेषरूप क्षोभ दूर होकर स्थिरता हो तब भगवान का प्रतिबिम्ब झलक सकता है और तब जल से पूजा करना सार्थक है और जब अपना हृदय आकुलता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सहित, मोह-राग द्वेष से सहित हो, तब जल से पूजा करना सार्थक नहीं है।

प्र० २३—"जल से पूजा की" ऐसा कहना सार्थक कब है ? और कब नहीं है ?

उ०—जिस प्रकार जल का भरा हुआ समुद्र गम्भीर है उसमें कुड़ा डाला जावे या पुष्प डाला जावे, वह सबको अपने में समा लेता है, इतना गम्भीर है; उसीप्रकार कुड़ारूप प्रतिकूलता हो या पुष्प रूप अनुकूलता हो, तो भी वह अपने में समा देना चाहिए अर्थात् इतनी गम्भ रता आजानी चाहिए कि अनुकूलता और प्रतिकूलता ज्ञान का ज्ञेय हो, तब "जल से पूजा की" ऐसा कहना सार्थक है। अनुकूलता और प्रतिकूलता में इष्ट-अनिष्टपना मानने वाले जीव ने "जल-से पूजा की" कहना सार्थक नहीं है। अतः ज्ञाता दृष्टा का अनुभव होने पर "जल से पूजा की" सार्थक है। अपना अनुभव हुये विना 'जल से पूजा की" क्या ऐसा कहना सार्थक हैं ? कभी भी नहीं।

प्र० २४—'कैसा निर्णय किये बिना' जल से पूजा करना बनता ही नहीं ?

उ०—जैसे सागर में जब भरत्ती का [ज्वार का] समय हो, तब सूर्य का ११८ डिग्री का ताप भी उसे नहों रोक सकता है तथा जब ओट का [भाटा का] समय हो तब २५ इंच बरसात पड़ता हो और सम्पूर्ण नदियों का पाना उसमें आकर मिलता हो, तब भी वे भरती नही ला सकती हैं; उसी प्रकार जब अपना ज्ञान समुद्र अन्तर मध्य बिन्दु से उछले, तब बाहर की प्रतिकूलता कुछ भी विघ्न नहीं कर सकती तथा जब स्वयं अपराधी होकर हीनता करे तब बाहर की इन्द्रियाँ, शास्त्र, दिव्यध्वनि, गुरु की वाणी आदि कोई भी उसकी सहायता नहीं कर सकते हैं। इसलिए संसार की अनुकूलता और

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिकूलता रहित मेरा स्वभाव है उसका निर्णय-अनुभव किये बिना जल से यथार्थ पूजा करना बनता ही नहीं।

प्र० २५—बादल हमें क्या शिक्षा देता है ?

उ०—क्षारं जलं वारिमुचः पिवन्ति, तदेव कृत्वा मधुरं वमन्ति।
सन्तस्थता दुर्जन दुर्वचान्सि, पीत्वा च सूक्तानि समुद्रगिरन्ति॥

अर्थ—जिस प्रकार बादल खारा जल पीकर भी मीठा पानी देता है; उसी प्रकार दुष्ट पुरुषों की कठोर वाणी को सुनकर भी ज्ञानी को मीठी और सबको प्रिय लगने वाली वाणी बोलने का भाव आता है और भी कहा है कि।

गौरवं प्राप्यते दानात्, न तु वित्तस्य संचयात्।
स्थिति रुच्चैः पयोदाना, पयोधीनामधः स्थितिः॥

अर्थ—दान से बड़ाई मिलती है, संचय करने से नहीं मिलती। धन के संचय करने से बड़ा नहीं कहलाता दान देने से गौरव मिलता है।

जैसे पानी देने वाला बादल ऊंचा है और संग्रह करने वाला समुद्र नीचे है; उसी प्रकार यदि वक्ता भी श्रोता से मान या धन माँगे तो श्रोता ऊंचा और वक्ता नीचा हो जाता है। इसलिए वक्ता को श्रोता से कभी भी मान प्रतिष्ठा, या धन की भावना नहीं करनी चाहिए। मान-प्रतिष्ठा, या धन की भावना करने वाला भिखारी भगवान की जल से पूजा यथार्थतया नहीं कर सकता है। बादल हमें यह शिक्षा देता है कि मान-प्रतिष्ठा और धन की इच्छा छोड़ने वाला ही भगवान की जल से पूजा कर सकता है।

प्र० २६—क्या मोह-रागादि को निकाले बिना, जल से पूजा नहीं हो सकती है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—जैसे समुद्र अपने में मुर्दे को नहीं रखता किन्तु बाहर निकाल देता है, उसीप्रकार ज्ञान समुद्र रूपी आत्मा की दृष्टि जिस जीव को हुई है, वह ही अंपने में अचेतन मोह–रागादि भावों को नहीं रखता, किन्तु बाहर निकाल देता है, तभी भगवान की जल से यथार्थ पूजा की, ऐसा कहा जा सकता है।

प्र० २७—"अपादर्थे धनं रक्षेत्, भाग्यवन्तः क्व चापदः। कदापि कूपितो दैवः संचितोऽपि विनश्यति"। इस श्लोक का सार क्या है?

उ०—एक राजा था। उसका यह नियम था कि जो मेरे पास नया श्लोक बनाकर सबसे पहले आवे और उसका श्लोक उत्तम हो तो उसे सवा लाख रुपया इनाम दिया करूँगा।" इस प्रकार प्रतिदिन किसी न किसी को सवा लाल रुपया राजा से नया श्लोक बनाने में मिल जाता था। राजा के महल में थोड़ी दूर पर एक गरीब ब्राह्मण अपनी स्त्री सहित रहता था। एक दिन ब्राह्मण की स्त्री को पता लगा, कि राजा नया श्लोक बनाने वाले को सवा लाख रुपया प्रदिदिन इनाम देता है। उसने अपने पति से कहा "आप इतने दुःखी होते हैं, खाने के लिए भी रोटी के लाले पड़े रहते हैं। आप भी उत्तम नया श्लोक बनाकर सबसे पहले राजा के पास जाओ, तो सवा लाख रुपया मिले, जिससे यह गरीबी दूर हो। तब उस ब्राह्मण ने अपनी बुद्धि अनुसार एक कागज पर नया श्लोक लिखा और राजा के पास पहुँचा। वहाँ देखा, कि रोजाना सुवह से हो भीड़ लग जाती है,उसने वड़ी कोशिष की वह अन्दर चला जावे, लेकिन उसे कामयावी नहीं हुई। इस प्रकार करते-करते दस दिन समाप्त हो गये, लेकिन ब्राह्मण के अन्दर जाने का नम्बर न आया। ब्राह्मण वहुत परेशान हुआ, तब एक दिन वह सायंकाल से ही वहाँ आ गया और जब प्रात.काल दरवाजा खुला, तत्काल अन्दर दाखिल हो गया। राजा ने उसका नया श्लोक देखा, वह अच्छा भी नहीं था, लेकिन गरीब ब्राह्मण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समझकर राजा को दया आगयी। राजा ने उसे सवा लाख रुपया देने के लिये खजान्ची के नाम पर्चा दे दिया। गरीब ब्राह्मण खुशी-खुशी होकर खजान्ची के पास गया और पर्चा सवा लाख रुपया देने का था, वह दिया। ब्राह्मण के श्लोकको देख कर खजान्ची ने विचारा, कि राजा बड़ा मूर्ख है। श्लोक किसी भी काम का नहीं हैं। राजा व्यर्थ में धन लुटाता है, ऐसा विचार करके खजान्ची ने रुपया नहीं दिया और एक पर्चे पर लिखा कि "आपदर्थे धनं रक्षेत्" अर्थात् आपत्ति के समय काम आवे इसलिए धन की रक्षा करनी चाहिए, ऐसा लिख कर ब्राह्मण को दिया कि राजा के पास जाओ और यह पर्चा दे देना। वह राजा के पास गया और राजा ने पर्चा देखकर एक पंक्ति और बढ़ा दी, लिखा कि "भाग्यवन्तः क्व चापदः" अर्थात् भाग्यवतः को आपत्ति कहाँ आती हैं" तथा दुबारा आने के कारण सवा लाख रुपया की बजाय ढाई लाख रुपया देने को लिखा। ब्राह्मण खजान्ची के पास गया, लेकिन खजान्ची आसानी से रुपया देने वाला नहीं था। उसने पर्चा देखकर फिर लिखा कि "कदापि कूपितो दैवः" अर्थात् कदापि देव कोपायमान होगया, तो आपत्ति आयेगी ऐसा लिख कर ब्राह्मण को फिर राजा के पास जाने को कहा। ब्राह्मण राजा के पास गया, राजा ने पर्चा देख कर उस श्लोक को पूरा कर दिया, लिखा कि "संचितोऽपि विनश्यति" अर्थात् तब संचय किया हुआ भी धन नष्ट हो जावेगा तथा तीसरी वार आने के कारण ढाई लाख रुपया की बजाय पाँच लाख रुपया ब्राह्मण को देने को लिख दिया। आखिर खजान्ची को पाँच लाख रुपया ब्राह्मण को देना पड़ा, इसलिए लोभी मनुष्य भगवान को जल से यथार्थ पूजा नहीं कर सकता है।

प्र० २८ क्या मिथ्यात्व का अभाव हुए बिना जिनवर के कहे अनुसार चलने वाला भी जल से भगवान की पूजा नहीं कर सकता है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ० नहीं कर सकता है: क्योंकि समयसार गा० २७३ में "भगवान के कहे हुए समिति-गुप्ति पालन करता हुआ भी मुनि को मिथ्यादृष्टि, असंयमी, पापी कहा है तथा प्रवचनसार गा० २७१ में संसार का नेता कहा है। इसलिए अपने त्रिकाली भगवान का आश्रय लेकर मिथ्यात्व का अभाव होने पर ही जल से भगवान की यथार्थ पूजा की, ऐसा कहा जा सकता है अन्यथा नहीं, क्योंकि "ॐ ह्रीं देव-गुरु-शास्त्रभ्यों मिथ्वात्वमल विनाशनाय जलं निर्वपामीति स्वाहा" ऐसा पूजा में कहा है।

प्र० २९—जल चढ़ाने का देव–गुरु–शास्त्र की पूजा का छन्द क्या है?

उ०—इन्द्रिय के भोग मधुर विष सम, लावण्यमयी कंचन काया।
यह सब कुछ जड़ की क्रीड़ा है, मैं अब तक जान नहीं पाया।
मैं भूल स्वयं के वैभव को पर ममता में अटकाया हूँ।
अब निर्मल सम्यक् नीर लिए, मिथ्यामल धोने आया हूँ।

चन्दन

प्र० ३०—क्या ज्ञाता-द्रष्टापना प्रकट किये बिना चन्दन से भगवान की पूजा का अधिकारी नहीं है?

उ०—जैसे गरम उबलते हुए तेल में यदि नारियल गेरा जावे, तो तत्काल ही टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और नारियल जलकर खाक हो जाता है। उसी उबलते हुए तेल में जरा सा बावना-चन्दन गेरा जावे, तो वह उसी समय शीतल हो जाता है; उसी प्रकार यह जीव अनादिकाल से एक-एक समय करके संयोगों और संयोगी भावों के अनुकूल व प्रतिकूलों में पागल और दुखी हो रहा है वह जीव चन्दन से भगवान की पूजा नहीं कर सकता है। यदि हमारा हृदय भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

बावना-चन्दन के समान शीतल हो जावे और ज्ञाताद्दृष्टा बुद्धि प्रगट जावे तो हम चन्दन से भगवान की यथार्थ पूजा करने के अधिकारी हैं।

प्र० ३१—पर में एकत्व बुद्धि दूर हुए बिना चन्दन से पूजा नहीं हो सकती, इसको जरा द्रष्टान्त देकर समझाइये।

उ०—एक नमि नाम का राजा था। उसके शरीर में दाहज्वर उत्पन्न हो गया। उसके उपचार के लिए वैद्यों ने बावनाचन्दन का लेप बताया। रानीयों ने तत्काल चन्दन घिसना शुरू कर दिया। रानियों के हाथ जेवर कंगनों से भरे होने के कारण, बड़ी तेज ध्वनि होने लगी, क्योंकि रानियों ने तेजी से चन्दन घिसना शुरू कर दिया था। तेज ध्वनि होने के कारण राजा के सिर में दर्द हो गया। राजा ने कहा, इतनी तेज आवाज के कारण मेरा सिर फटा जा रहा है, इसे बन्द करो। रानियों ने सोचा, कि दाह ज्वर के कारण चन्दन का लेप जरूरी है, उन्होंने अपने-अपने हाथों में एकेक सुहागचूड़ी रखकर तमाम जेवर, कंगन आदि निकाल-निकाल कर रख दिये और सबने पुनः चन्दन घिसना शुरू किया। कुछ देर बाद राजा ने कहा "क्या चन्दन घिसना बन्द कर दिया ?" रानियों ने कहा "नहीं महाराज,हमने एक-एक सुहाग चूड़ी हाथ में रखकर बाकी जेवर कंगन आदि उतार कर चन्दन घिसना चालू रक्खा, इस कारण आवाज बन्द है।"

नमि राजा को विचार आया, अहो:, अहो: जहाँ एक है, वहाँ आनन्द है जहाँ अनेक है वहाँ खलबलाट है जहाँ देखो, एह ही सुन्दर हैं।

एकत्व निश्चय गत समय, सर्वत्र सुन्दर लोक में ॥
उससे बने बंधन कथा, जू विरोधनी एकत्व में ॥३॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है सर्व श्रुत-परिचित अनुभूत, भोग बंधन की कथा॥
पर से जुदा एकत्व की, उपलब्धि केवल सुलभ ना ॥४॥

ऐसा विचार आते ही स्वरूप में स्थिरता होते ही जंगल की राह ली और जिनेश्वरी दीक्षा धारण की। प्रत्येक प्राणी को नमि राजा के समान एकत्व-विभक्त रूप अपनी आत्मा का निर्णय करके पर्याय में जो राग रूपी दाह ज्वर है, उसे नष्ट करे तो चन्दन से भगवान की यथार्थ पूजा की ऐसा कहने में आता है।

प्र० ३२—"संसार ताप विनानाय चन्दनम्" कब कहा जा सकता है ?

उ०—जिस प्रकार चन्दन का इच्छुक पुरुष जब चन्दन लेने जंगल में जाता है तो वह अपने साथ गरुड़ या मोर को ले जाता है, क्योंकि मोर या गरुड़ की आवाज के सुनते ही चन्दन पर लिपटे हुए अजगर और साँप भाग जाते हैं। यदि चन्दन का इच्छुक पुरुष गरुड़ या मोर को साथ ना ले जावे, तो वह चन्दन को प्राप्त नहीं कर सकता; उसीप्रकार अनादिकाल से एक-एक समय करके मिथ्यात्वरूपी अजगर, रागद्वेष रूपी साँप, चन्दन के समान भगवान आत्मा के ऊपर लिपटे हुए हैं। यदि जीव अपने ज्ञायक स्वभाव का टंकारा मारे, तो मिथ्यात्व रूपी अजगर, रागद्वेष रूपी सांप स्वयं भाग जाते हैं तभी 'ससार ताप विनाशनाय चन्दनम् निर्वपामीति स्वाहा कहना सार्थक है। अज्ञानी ने अनन्तबार चन्दन से भगवान की पूजा की, किन्तु वह भोग निमित्त रही, व्यर्थ ही गयी।

प्र० ३३—क्या आधि,व्याधि और उपाधि रहित,समाधि हुए बिना चन्दन से पूजा करना व्यर्थ है ?

उ०—(१) आधि=मन के विकल्पों के साथ एकत्वबुद्धि है। (२) व्याधि=शरीर के साथ एकत्वबुद्धि है। (३) उपाधि=पर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पदार्थों के साथ एकत्वबुद्धि है। आधि व्याधि और उपाधि के साथ एकत्वबुद्धि को छोड़कर अपने समाधिस्वरूप ज्ञायक भगवान के साथ एकत्व करना, वह समाधि है।

जब तक यह तीन ताप रहेंगे तव तक वह चन्दन से पूजा करने का अधिकारी नहीं है। पात्र जीव तीन ताप रहित समाधिस्वरूप का श्रद्धान-ज्ञान-आचरण करे, तब चन्दन से भगवान की पूजा की, ऐसा कहला सकता है।

प्र० ३४—चन्दन क्या शिक्षा देता है ?

उ०—जैसे चन्दन को कूड़े के ढेर पर गेरा जावे, घिसा जावे, जलाया जावे, तो भी चन्दन अपने सुगन्धमयी स्वभाव को नहीं छोड़ता है। वह अपने को काटने वाली कुल्हाड़ी को भी सुगन्धित वना देता है, ऐसा चन्दन का स्वभाव है; उसी प्रकार आत्मा को कैसा भी प्रतिकूलता का संयोग प्राप्त होवे तो भी, अपने ज्ञाता दृष्टा स्वभाव को ना छोड़े, तो चन्दन से भगवान की पूजा की, कहा जावेगा।

प्र० ३५—चन्दन चन्दन चढ़ाने के विषय में क्या शिक्षा देता है ?

उ०—घृष्टं घृष्टं पुनरपि पुनश्चन्दनं चारु गंधम्।
कृष्टं कृष्टं पुनरपि पुनः स्वादु चैवेक्षु दण्डम्॥
दग्धं दग्धं पुनरपि पुनः कांचनं कान्तवर्णम्।
प्राणान्तेऽपि प्रकृतिर्विकृतिर्जायंते नोत्तमानाम्॥

अर्थ—हे आत्मा, तुम्हें चन्दन के समान कोई घिसता नहीं, गन्ने के समान कोई पेलता नहीं और सोने के समान दग्ध नहीं करता है। फिर तुम अपने ज्ञायक स्वभाव को छोड़कर पर में, शुभाशुभ विकारी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावों में क्यों पागल बनते हो ? नहीं बनना चाहिए । तभी चन्दन से पूजा की, कहाँ जा सकता है।

प्र० ३६—अपने स्वभाव को जाने-माने बिना चन्दन से पूजा का अधिकारी नहीं है, जरा स्पष्ट रूप से समझाओ ?

उ०—एक आदमी था। उसके घर में एक बहुत पुरानी मैली एक लकड़ी पड़ी थी। वह थी चन्दन की, परन्तु उसे मालूम नहीं था । वह लकड़ी घर पर पड़ी-पड़ी उसे अच्छी नहीं लगती थी, परन्तु वह खुसवू देती थी । उस आदमी ने गुस्सा में आकर उस लकड़ी को कूड़े के ढेर पर फेंक दिया। थोड़ी देर के बाद आकर देखा, तो वह वहाँ पर खुसवू फैला रही है। उस आदमी को बड़ा गुस्सा आया और उस लकड़ी को उठाकर अग्नि में डाल दिया। जलते-जलते उसकी खुशबू चारों तरफ फैल गयी; उसी प्रकार हे आत्मा चन्दन की लकड़ो के समान कूड़े पर गेरना, चूल्हे में जला देना ऐसा तुम्हारे साथ नहीं होता है । जबकि चन्दन लकड़ी को कुड़े पर गेरने पर और आग पर रख देने पर भी वह अपने खुसबू के स्वभाव को नहीं छोड़ती है तब तुम अपने स्वभाव को क्यों छोड़ते हो ? अपने स्वभाव को नहीं छोड़ा, तब चन्दन से पूजा की, कहा जा सकेगा।

प्र० ६७—गन्ना हमें क्या शिक्षा देता है ?

उ०—जैसे गन्ने को कोल्हू में पेलते हैं, तो भी वह पीठा रस देता है। रस को औटाओ, तो वह गुड़ वन जाता है, तो भी वह अपने मीठे स्वभाव को नहीं छोड़ता है; उसी प्रकार हे आत्मा, गन्ने के समान पेलना, और रस के समान ओटना, तुम्हारे साथ नहीं होता तो तुम अपने जानने-देखने के स्वभाव को क्यों भूलते हो ? नहीं भूलना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चाहिए अपने ज्ञायक परमात्मा को जानने वाला ही चन्दन से पूजा का अधिकारी है, यह गन्ना हमें शिक्षा देता है ।

प्र० ३८—सोना सुनार से क्या कहता है ?

उ०—हे हेमकार ! पर दुःख विचार मूढ़,
किं मां मुहः क्षिपसि वार शतानि वन्हौ ।
दग्धे पुनर्मयि भवन्ति गुणातिरेको,
लाभः परस् खलु मुखे तव भस्म पातः ॥

अर्थ—सोना, सुनार से कहता है कि हे सुनार ! तुम मुझे चाहे कितनी बार तपाओ, उससे मेरे में तो शुद्धि की वृद्धिही होती है, लेकिन तेरे मुँह में राख के अलावा कुछ भी लाभ नहीं मिलेगा; उसी प्रकार हे आत्मा ! तुम्हें सोने के समान कोई तपाता नहीं है तब फिर तुम क्यों आकुलित होते हो ? अतः आकुलता रहित प्राणी ही भगवान की चन्दन से पूजा कर सकता है ।

प्र० ३९—संसार ताप क्या है ?

उ०—पर में कर्त्ता-भोक्ता की बुद्धि ही संसार ताप है ।

प्र० ४०—पर में कर्ता-भोक्ता की बुद्धि का अभाव कैसे हो ?

उ०—सत्द्रव्य लक्षणम् और उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य युक्तं सत् ।। का रहस्य जाने अर्थात् "अनादिनिधन वस्तु जुदी-जुदी अपनी-अपनी मर्यादा लिए परिणमै हैं, कोई किसी का परिणमाया परिणमता नाहीं" ऐसा जाने-माने तो पर में कर्ता भोक्ता की बुद्धि का अभाव हो, तब चन्दन से पूजा की, कहा जा सकता है ।

प्र० ४१—'संसार ताप विनाशनाय चन्दनम्' का कवित्त क्या है ।

उ०—जड़-चेतन की सब परिणति प्रभु, अपने-अपने होती है ।
अनुकूल कहे, प्रतिकूल कहे, यह झूंठी मन की वृत्ती है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रतिकूल संयोगों में क्रोधित, होकर संसार बढ़ाया है।
सन्तप्त हृदय प्रभु-चन्दन सम, शीतलता पाने आया है।

प्र० ४२—क्या कर्ता बुद्धि का अभाव हुए बिना चन्दन से पूजा नहीं हो सकती है ?

उ०—जैसे रेत से तेल निकालने के लिए मशीनों का आर्डर अमरिका दूं या रूस को दूं, यह प्रश्न ही झूठा है; उसी प्रकार पर में कर्ता बुद्धि का अभाव हुए बिना चन्दन से पूजा करना, यह प्रश्न ही झूठा है ।

अक्षत

प्र० ४३—अक्षत से पूजा करना कब ठीक कहलायेगा ?

उ०—जिस प्रकार कमोद में से सफेद चावल निकलता है। उसमें छिलका, रतास और सफेद चावल तीन चीजें होती है। उसमें से छिलका और रतास निकाल देने योग्य है और चावल खाने योग्य है; उसी प्रकार अनादिकाल से एक-एक समय करके अपनी मूर्खतावश द्रव्यकर्म-नोकर्म रूप छिलके के साथ तथा भावकर्म रूप रतास के साथ एकत्व बुद्धि करता रहेगा, तब तक अक्षत से भगवान की यथार्थ पूजा नहीं कर सकता परन्तु जब यह जीव मेरा आत्मा ही एकमात्र आश्रय करने योग्य है। अपनी आत्मा के अलावा अनन्त जीव, अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म-अधर्म-आकाश एकेक और लोक प्रमाण असंख्यात कालद्रव्य छिलके के समान है और दयादान-पूजा अणुव्रत-महाव्रतादि भाव रतास के समान है, ऐसा जानकर अपने आत्मा का आश्रय ले, तो अक्षत से पूजा करना ठीक है।

प्र० ४४—अक्षयपद की प्राप्ति कैसे हो ?

उ०—वासमती चावल तो खाने के लिए रखता है और टूटे-फूटे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चावल मन्दिर में चढ़ाने को रखता है। क्या इससे अक्षय पद मिलेगा ? कभी नहीं मिलेगा। अरे भाई, अक्षय पद प्राप्त करने के लिए मोह-राग-द्वेष रहित मेरी आत्मा का स्वभाव है, ऐसा जानकर अपने अक्षय-ध्रुव-नित्य स्वभाव का आश्रय ले, तो पर्याय में अक्षय पद की प्राप्ति होगी, तब अक्षय से यथार्थ पूजा कही जा सकती है।

प्र० ४५—पर्याय में बिगाड़ खाता होने कर भी आत्मा का स्व-भाव नष्ट क्यों नहीं होता है ?

उ०—जैसे चावल सफेद और अखण्ड हैं; उसी प्रकार मेरी आत्मा स्वच्छ और अखण्ड है, पर्याय में बिगाड़खाता होने पर भी द्रव्य कभी नष्ट नहीं होता है, ऐसा जिसको भान हो उसने अक्षत् से भगवान की यथार्थ पूजा की ऐसा कहा जा सकता है।

प्र० ४६—सम्यग्दृष्टि का भव बिगड़ता भी नहीं और बढ़ता भी नहीं ऐसा क्यों कहा जाता है ?

उ०—जब स्वभाव में भव नहीं और भव का भाव नहीं है तब स्वभाव दृष्टिवन्त को भी भव नहीं और भव का भाव नही है क्योंकि स्वभाव दृष्टिवन्त तिर्यंचादि में जाता नहीं। सम्यग्दर्शन होने पर अल्पभवों में ही मोक्ष हो जाता है तथा समयसार कलश १९८ में "स हि मुक्त एव" ऐसा कहा है। इसलिए दृष्टिवन्त ही अक्षत से पूजा करने लायक है, मिथ्यादृष्टि अक्षत से भगवान की यथार्थ पूजा करने के लिए लायक नहीं है।

प्र० ४७—'मान कषाय मल विनाशनाय अक्षतम्' का कवित्त क्या है ?

उ०—उज्जवल हूँ कुन्द धवल हूँ प्रभु,
पर से न लगा हूँ किंचित भी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

फिर भी अनुकूल लगे उन पार,
करता अभिमान निरन्तर ही ॥
जड़ पर झुक-झुक जाता चेतन,
मार्दव की खण्डित काया
निज शाश्वत अक्षय निधि पाने,
अब दास चरण रज में आया ॥

प्र० ४८—अक्षत से पूजा का फल क्या है ?

उ०—मान रहित मेरी आत्मा स्वभाव है ऐसा जानकर पर्याय में परम अक्षय पद प्राप्त करना ही अक्षत से भगवान की पूजा का फल है।

पुष्प

प्र० ४९—पुष्प से क्या तात्पर्य है ?

उ०—दुनियाँ में लोहबाण से साधारणतया मानव मर जाता है लेकिन कामदेव के पास कोमल पुष्प का बाण है। यह बाण जिसको लग जावे, वह मर जावे। पुष्प चढ़ाने का तात्पर्य यह है कि मैंने काम को छोड़ दिया है। अब मैं कामरूपी पुष्प से घाता नहीं जा सकता, क्योंकि मैंने अपनी आत्मा को काम बाण रूपी पुष्प से पृथक् अनुभव कर लिया है, तभी पुष्प से भगवान की पूजा सार्थक है।

प्र० ५०—पुष्प हमें क्या शिक्षा देता है ?

उ० रस्ते चलते हुए मुसाफिर ने जंगल में एक बड़ा सुन्दर गुलाब का फूल खिला हुआ देखा। वह फूल सारे वातावरण को सौन्दर्य अर्प रहा था, जाने वाले मुसाफिरों को सुगन्ध देता था और पवन की लहरों से वह डोल रहा था।

प्र०—चलते हुए मुसाफिर ने फूल से क्या पूछा !

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—हे फूल, तुम्हारा जीवन बहुत अल्प है और सायंकाल के समय तुम कुम्हला जावोगे। फिर तुम इतने हँस रहे हो, डोल रहे हो, प्रसन्न हो रहे हो, सुगन्ध दे रहे हो और वातावरण को सौन्दर्य अर्प रहे हो, इसमें तुम्हारे जीवन का क्या मर्म है।

प्र० ५१—फूल ने क्या उत्तर दिया ?

उ०—कितना जीवन जिया यह मत पूछो किन्तु किस प्रकार जीया, यह पूछना चाहिए।

प्र० पुष्प से हमें क्या शिक्षा लेनी चाहिए ?

उ०—अल्प या अधिक आयु से क्या मतलब है। अगर किसी की उम्र आठ वर्ष की है उसमें आत्म ज्ञान करलें तो उत्तम है किसी उम्र सौ वर्ष की है उसमें आत्म ज्ञान ना करे तो व्यर्थ है। जैसे फूल खुशबू देता हैं, डोलता हैं; उसी प्रकार हम भी अपने ज्ञायक स्वभाव में डोले रमणता करे, तब ही भगवान की पुष्प से यथार्थ पूजा की।

[आ] जैसे पुष्प बाह्य में और अन्तर में सुकोमल है; वैसे ही अपना आत्मा बाह्य—आभ्यंतर सुकोमल हो, तब भगवान की यथार्थ पूजा पुष्प से हो सकती है।

प्र० ५२—अपने को जाने बिना पुष्प से पूजा क्यों नहीं हो सकती है ?

उ०—अपने को जाने बिना किसकी पूजा, किसकी यात्रा, किस की सामयिक, किसकी दया ? अपने आप का अनुभव हुये बिना पुष्प से पूजा करना, आत्म हित के लिए कुछ कार्यकारी नहीं है।

प्र० ५३—"काम बाण विध्वंशनाय पुष्पम्" का कवित्त क्या है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—यह पुष्प सु कोमल कितना है,
तन में माया कुछ शेष नहीं।
निज अन्तर का प्रभु, भेद कहूँ,
उसमें ऋजुता का लेश नहीं।
चिन्तन कुछ, फिर सम्भाषण कुछ,
किरिया कुछ की कुछ होती है।
स्थिरता निज में प्रभु पाऊँ जो,
अन्तर का कालुष धोती है।

मायाचार रहित मेरी आत्मा का स्वरूप हैं ऐसा श्रद्धान-ज्ञान-आचरण ही पुष्प से भगवान आत्मा की पूजा है।

नैवेद्य

प्र० ५४—नैवेद्य से भगवान की पूजा क्या है ?

उ०—(१) अनादिकाल से आजतक कितना आहार ग्रहण, किया लेकिन भूख शान्त नहीं हुई। (२) अनादिकाल से आजतक अगणित पदार्थों की इच्छा की, लेकिन रंचमात्र भी: तृप्ति नहीं हुई हैं। मेरा स्वभाव अनाहारी और इच्छा रहित है ऐसा जानवर अपने अनाहारी स्वभाव का आश्रय लेकर पर्याय में अनाहारी और इच्छा रहित दशा प्रगट करे, तब नैवेद्य से भगवान की पूजा की। ऐसा कहा जाता हैं।

प्र० ५५—अज्ञानी नैवेद्य से क्यों पूजा करता है ?

उ०—भक्तामर पाठ पढ़ता है। सिद्धचक का पाठ थापता है। उसके बदले माँगता है कि हे भगवान, मुझे खूब धन मिले, मेरे लड़के पैदा हों, लड़कियाँ ना हों; दुनियाँ में सबसे बड़ा कहलाऊं; सब मेरा मान करे; सुन्दर-सुन्दर स्त्रियाँ मेरी रानियाँ हों; शरीर में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी भी प्रकार का रोग ना हो;पुण्य का संयोग हमेशा बना रहे ऐसी सांसारिक इच्छा किया करते हैं। इन बातों के लिए नैवेद्य से पूजा करना चारों गतियों में घूमकर निगोद का पात्र बनता है। पर वस्तुओं में तथा शुभाशुभ भावों में एकत्वबुद्धि मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व सात व्यसनों से भी भयंकर महान पाप है। इसलिए सांसारिक लाभ के लिए नैवेद्य से पूजा करना अनर्थकारी है।

प्र० ५६—आचार्य कल्प पं० टोडरमल जी ने सांसारिक प्रयोजन के लिए नैवेद्य आदि से पूजा करने वाले को किस-किस नाम से सम्बोधन किया है ?

उ० जैन धर्म का सेवन संसार के नाश के लिए किया जाता है, जो उसके द्वारा सांसारिक प्रयोजन साधना चाहते हैं वह बड़ा अन्याय है। इसलिए वे तो मिथ्यादृष्टि है ही। इस प्रकार सांसारिक प्रयोजन सहित जो धर्म साधते हैं, वे पापी भी हैं और मिथ्यादृष्टि तो है ही।

प्र० ५७—क्या करे तो 'नैवेद्य' चढ़ाना सार्थक कहा जावे ?

उ०—संयोगों को मिलाना-हटाना में जीव की चतुराई जरा भी कार्यकारी नहीं हैं। आत्मा को देह नहीं, मन नहीं, वाणी नहीं, तब आत्मा पर वस्तुओं-का आहार करे (ग्रहण करे)यह बात झूठी है मेरी आत्मा को किसी भी पर पदार्थ की किंचित मात्र भी आवश्यकता नहीं है, ऐसा श्रद्धान-ज्ञान हो, तब नैवेद्य पूजा की सार्थकता कही जावेगी।

प्र० ५८—क्या संयोगों के मिलाने-हटाने में जीव की चतुराई जरा भी कार्यकारी नहीं है ?

उ०—कलशटीका कलश १६७ में लिखा है कि "कर्म सामग्री में अभिलाषा मात्र मिथ्यात्व है ऐसा गणधरदेव ने कहा है।" तथा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कलश १६८ में कहा है कि "जिस जीव ने अपने विशुद्ध अथवा संक्लेशरूप परिणाम द्वारा पहले ही बाँधा है जो आयुकर्म अथवा असाता-साता कर्म, उस कर्म के उदय-से इस जीव को मरण-जीवन, सुख-दुःख होता है। इसमें जीव की वर्तमान चतुराई जरा भी कार्यकारी नहीं है। जो जीव इसमें अपनी चतुराई रखते हैं वे [नियतम् आत्महनो भवन्ति] अपने आत्म को नाश करने वाले हैं। ऐसा कलश १६९ में कहा है।

प्र० ५९—बाह्य सामग्री मिलाने-हटाने में जीव की चतुराई कार्यकारी नहीं है, स्पष्टता के लिए कहाँ देखे।

उ०—कलश टीका कलश १६५ से १७३ तक देखे।

प्र० ६०—क्या आत्मा के आहारादि का परिग्रह नहीं है ?

उ०—आत्मा के स्वभाव में तथा दृष्टिवन्त ज्ञानियों को आहारादिक का परिग्रह नहीं है; क्योंकि ज्ञानी को समयसार गा० २१२ में "अनिच्छक, अपरिग्रही कहा है; ज्ञानी भोजन को नहीं चाहता, इसलिए ज्ञानी को भोजन–का परिग्रह नहीं है, वह तो ज्ञायक है।

प्र० ६१—क्या अनाहारी पद के लिए नैवेद्य चढ़ाया जाता है ?

उ०—हाँ भाई, अनाहारी पद के लिए नैवेद्य चढ़ाया जाता है इसलिए अनाहारीपद का अनुभव हुए बिना नैवेद्य से यथार्थ पूजा नहीं हो सकती है।

प्र० ६२—'क्षुधारोग विनाशनाय नैवेद्यम् का कवित्त क्या है ?

उ०—अबतक अगणित जड़ द्रव्यों से प्रभु भूख न मेरी शान्त हुई।
तृष्णा की खाई खूब भरी, पर रिक्त रही वह रिक्त रही॥
युग-युग से इच्छा सागर में प्रभु गोते खाता आया हूँ।
पंचेन्द्रिय मन के षट्‌रस तज अनुपम रस पीने आया हूँ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दीप

प्र० ६३—'दीप' से भगवान की पूजा की, यह कब कहा जा सकता है ?

उ०—जैसे एक कमरे में सैकड़ों वर्षों से अन्धेरे में अनेक वस्तुएं पड़ी हुई होने पर भी, अन्धकार में सब चीजें एक रूप भासती है। किन्तु प्रकाश होने पर,अनेक चीजें जो एक रूप भासती थी,वह प्रत्येक पृथक-पृथक जैसी जो हैं, वैसी ही दिखायी देने लगती हैं; उसी प्रकार अनादिकाल से एक-एक समय करके मिथ्यात्व रूपी महान अन्धकार के कारण छहों द्रव्यों के गुण-पर्यायों के साथ, आस्रवबंध, पुण्य-पाप के साथ एकत्व बुद्धि चली आ रही हैं, यदि जीव अपने ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन-सम्यग्ज्ञान प्रगट करे, तो जैसा जिस द्रव्य, गुण और पर्याय का स्वरूप है, वैसा ही दृष्टि में आवे, तब दीप से भगवान आत्मा की पूजा की, ऐसा कहा जा सकता है।

प्र० ६४—जीव के विषय में अज्ञान-अन्धकार क्या है ?

उ०—जीव तो त्रिकाल ज्ञान स्वरूप है उसके बदले शरीर है सो मैं हूँ, शरीर के कार्य मैं कर सकता हूँ, शरीर स्वस्थ हो-तो मुझे लाभ हो, बाह्य अनुकूल संयोगों से मैं सुखी,बाह्य प्रतिकूल संयोगों मैं दुःखी, मैं निर्धन मैं धनवान मैं बलवान, मैं मनुष्य, मैं सुन्दर हूँ। मैं उपदेश देता हूँ, मैं चार हाथ जमीन देखकर चलता हूँ, मैं सुबह उठता हूँ, मैं नहाता हूँ, मैं कपड़े पहनता हूँ, मैं रोटी बनाता हूँ, मैं व्यापार करता हूं, मैं सामायिक करता हूँ, मैं पाठ करता हूँ—आदिक्रियाओं में अपनापना मानता है। मिथ्याअभिप्राय द्वारा जो अपने परिणाम नही हैं, किन्तु पर पदार्थों के परिणाम हैं उन्हें आत्मा का परिणाम मानना, यह जीव के विषय में अज्ञान-अन्धकार है।

प्र० ६५—जीव के विषय का अज्ञान अन्धकार कैसे मिटे ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—मैं ज्ञाता-दृष्टा हूँ, शरीर मन वाणी मेरी मूर्ति नहीं है, ज्ञान-दर्शन-चारित्र आदि अनेक गुणों के अभेद पिण्ड की मेरी मूर्ति है, मैं सर्वज्ञ स्वभावी अनुपम हूँ, मेरा अनन्त जीवों, अनन्तानन्त पुद्गलों, धर्म-अधर्म-आकाश एकेक और लोक प्रमाण असंख्यात काल द्रव्यों से किसी भी प्रकार का किसी भी अपेक्षा कर्ता-कर्म, भोक्ता-भोग्य का सम्बन्ध नहीं है, क्योंकि इनकी मेरे द्रव्य से प्रथक् चाल है। ऐसा मानकर अपना आश्रय ले, तो जीव के विषय का अज्ञान अन्धकार मिटे, तो दीप से भगवान की यथार्थ पूजा की।

प्र० ६६—अजीव के विषय में अज्ञान-अन्धकार क्या है ?

उ०—शरीर की उत्पत्ति होने से मैं उत्पन्न हुआ, शरीर के नाश होने से मैं मर गया, धन शरीर आदि जड़ पदार्थों में परिवर्तन होने से अपनी आत्मा-मैं, इष्ट-अनिष्टपना मानना, शरीर को उष्ण-ठण्डी आदि अवस्था होने पर मैं ठण्डा-गरम हो गया, शरीर में क्षुधातृषा आदि अवस्था होने पर मुझे क्षुधातृषा रोग आदि हो रहे हैं, शरीर कट जाने पर मैं कट गया, मैं काला, मैं गोरा, मैं कुवड़ा आदि मानना, तथा धमद्रव्य मुझे चलाता है, अधर्म द्रव्य मुझे ठहराता है, आकाश मुझे जगह देता है, काल मुझे परिणमन कराता है, यह अजीव सम्बन्धी अज्ञान-अन्धकार है।

प्र० ६७—अजीव के विषय का अज्ञान-अन्धकार कैसे मिटे ?

उ०—पुद्गल का एक - एक परमाणु, धर्म-अधर्म-आकाश एकेक और लोक प्रमाण असंख्यात काल द्रव्य-यह सब द्रव्य अपनी-अपनी एक-एक व्यंजन पर्याय और अनन्त-अनन्त अर्थपर्यायों सहित विराज रहे है, मेरा इनसे किसी भी प्रकार का, किसी भी अपेक्षा कोई सम्बन्ध नहीं है, ऐसा मानकर अपने ज्ञायक परम पारिणामिक भाव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का आश्रय ले, तो अजीव के विषय का अज्ञान-अन्धकार मिटे, तो दीप से पूजा की, ऐसा कहा जा सकता है।

प्र० ६८—आस्रव बंध के विषय में अज्ञान-अन्धकार क्या है ?

उ०—पुण्य-पाप दोनों विभाव परिणति से उत्पन्न हुए हैं। इसलिए दोनों बंध रूप ही हैं। पुण्य-पाप भावों को अच्छे-बुरे मानना, यह आस्रव-बंध के विषय में अज्ञान-अंधकार है।

प्र० ६९—आस्रव-बंध के विषय में अज्ञान-अन्धकार कैसे मिटे ?

उ०—आस्रव-बंध रहित आत्मा के स्वभाव का आश्रय लेकर संवर निर्जरा प्रगट करना, यह आस्रव-बंध के विषय का अज्ञान-अंधकार मिटना है, तभी दीप से भगवान की पूजा की, ऐसा कहा जा सकता है।

प्र० ७०—अज्ञान-अन्धकार कैसे मिटे, तब दीप से पूजा हो ?

उ०—एक कमरे में हजारों वर्षों से अंधेरा था। अन्धकार को दूर करने के लिए, क्या फावड़े, बन्दूक, फौज, मजदूरों की जरूरत पड़ेगी। आप कहेंगे नहीं, बल्कि मात्र दियासलाई का प्रकाश पर्याप्त है; उसी प्रकार अनादिकालसे मिथ्यादृष्टि सुख पाने के लिए पर का, विकार का आश्रय करते हैं, परन्तु सुख नहीं मिलता। सुख पाने के लिए एक मात्र उपाय अपने पारिणामिक भाव—का आश्रय लेना ही है। ऐसा जाने माने, तो सुख पाने के लिये अज्ञान-अंधकार मिटे और दीप से यथार्थ पूजा की, ऐसा कहा जावे।

प्र० ७१—दीपक क्या बताया है ?

उ०—दीपक है, उसके सामने सोना रक्खे, तो क्या उसकी ज्योति बढ़ जावेगी ? कोयला रक्खे, तो क्या उसकी ज्योति मन्द हो जावेगी ? आप कहेंगे नहीं, क्योंकि दीपक का स्वभाव स्व-पर प्रका-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शक है; उसी प्रकार हमारे सामने अनुकूलता हो या प्रतिकूलता हो, यह सब हमारे ज्ञान का ज्ञेय है। चैतन्य दीपक के सामने अनन्तानन्त प्रतिकूलता होने पर भी उसके स्व-पर प्रकाशकता में कुछ भी हानि नहीं होती, ऐसा माने जाने, तो दीप से पूजा की, यह दीपक हमें बताता है।

प्र० ७२—क्या मिथ्यात्व का अभाव होने पर ही दीप से पूजा की, कहा जाता है ?

उ०—जैसे दीपक में जब तक तेल रहता है। तब तक वह जलता रहता है। तेल के समाप्त होने पर दीपक बुझ जाता है; उसी प्रकार आत्मा में जब-तक मिथ्यात्व-राग-द्वेष रहता है तब तक अज्ञानी दुखी होता हुआ चारों गतियों में घूमकर निगोद चला जाता है। अपने स्वभाव का आश्रय लेने से मिथ्यात्वादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हो जाती है, तभी दीप से पूजा की ऐसा कहा जावेगा।

प्र० ७३—क्या पर से उदासीन होने पर ही दीप से पूजा हो सकती है ?

उ०—जैसे दीपक बाह्य पदार्थ की असमीपता में या समीपता में अपने स्वरूप से ही प्रकाशित होता हैं। अपने स्वरूप से ही प्रकाशित दीपक को घट-पटादि बाह्य पदार्थ किंचित भी विक्रिया उत्पन्न नहीं कर सकते; उसीप्रकार अपने स्वरूप से ही जानने वाले आत्मा को वस्तु स्वभाव से ही जानने वाले आत्मा को वस्तु स्वभाव से ही विचित्र परिणति को प्राप्त ऐसे मनोहर या अमनोहर शब्दादि बाह्य पदार्थ किंचित् भी विक्रिया उत्पन्न नहीं कर सकते हैं, क्योंकि आत्मा दीपक की भाँति पर के प्रति सदा ही उदासीन है ऐसे अनुभव करे, तो दीप से भगवान की पूजा की।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ७४—दीपक से हमें क्या शिक्षा मिलती है ?

उ०—(अ) दीपक को तेल आदि पर पदार्थों की आवश्यकता पड़ती है, तब वह प्रकाशित होता है, किन्तु रत्न दीपक को तो उसके लिए कोई अन्य पदार्थ की किंचित मात्र भी आवश्यकता नहीं रहती है, क्योंकि वह स्वयं प्रकाशित है; वैसे ही आत्मा चैतन्य रत्नदीपक है, वह स्वयं प्रकाशित है। उसको प्रकाशित करने के लिए अन्य पदार्थ की किंचित् मात्र भी आवश्यकता नहीं रहती है।

[आ] तेल आदि से जलता हुआ दीपक तो प्रचंड वायु आदि कारणों से बुझ जाता है, किन्तु रत्नदीप को प्रचंड वायु आदि नहीं बुझा सकती है; वैसे ही अनन्त प्रतिकूलता आने पर भी चैतन्य दीपक नहीं बुझ सकता है अर्थात् उसका सामर्थ्य कम नहीं होता है।

[इ] तेल से जलते हुए दीपक में से तो धुवाँ इत्यादि कालिमा निकलती है; किन्तु रत्न दीपक में जरा भी कालिमा नही निकलती है; वैसे ही चैतन्य दीपक में भी मात्र मोह-राग-द्वेष की कालिमा नहीं है। तभी हम दोप से भगवान की पूजा करने के अधिकारी हैं यह दीपक हमें शिक्षा देता है।

प्र० ७५—'अग्नि' क्या शिक्षा देती है ?

उ०—जैसे अग्नि में पाचक, प्रकाशक और दाहक तीन मुख्य गुण हैं। (१) अग्नि पकने योग्य सब पदार्थों को पका देती है इसलिए अग्नि को पाचक कहा है। (२) अग्नि का स्व-पर को प्रकाशित करने का स्वभाव होने से अग्नि को प्रकाशक कहा है। (३) अग्नि जलने योग्य सब पदार्थों को जला देती है। इसलिए अग्नि को दाहक कहा है; उसी प्रकार आत्मा में सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र तीन मुख्य गुण हैं। (१) सम्यग्दर्शन पाचक है। (२) सम्यग्ज्ञान स्व-पर प्रकाशक है। (३) सम्यग्चारित्र शुभाशुभभावों को जला देता है, इसलिए

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दाहक है। अतः सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होने पर ही दीप से पूजा होती है, ऐसा अग्नि हमें शिक्षा देती है।

प्र० ७६—'अज्ञान विनाशाय दीपम्' का कवित्त क्या है ?

उ०—जग के जड़ दीपक को अब तक, समझा था मैंने उजियारा।
झंझा के एक झकोरे में, जो बनता घोर तिमिर कारा॥
अतएव प्रभो ! यह नश्वर दीप, समर्पण करने आया हूँ।
तेरी अन्तर लौं से निज अन्तर दीप जलाने आया हूँ॥

प्र० ७७—अज्ञान अन्धकार के पर्यायवाची शब्द क्या-क्या हैं ?

उ०—पर के साथ एकत्व बुद्धि कहो, मिथ्यात्व कहो, भयंकर पाप कहो, शुभभाव के साथ एकत्व बुद्धि कहो, अज्ञान कहो, मोहान्धकार कहो, निगोद कहो, एक ही बात है।

प्र० ७८—क्या अज्ञानी दीप से भगवान की पूजा नहीं कर सकता है, तो अज्ञानी क्या करे, जिससे दीप से पूजा कर सके ?

उ०—अपना अनुभव हुए बिना दीप से यथार्थ पूजा नहीं की जा सकती है। इसलिए हे भव्य। तू अपने भगवान की दृष्टि कर, तभी दीप से भगवान की पूजा बने। तब संसार के पदार्थों का जैसा स्वरूप है वैसा ही दृष्टि में आ जाता है तब अज्ञान अन्धकार विनाशनाय दीपम् निर्वपामीति स्वाहा कहना ठीक है।

धूप

प्र० ७९—धूप द्वारा पूजा करते समय हमारी भावना कैसी होनी चाहिए ?

उ०—जैसे अग्नि में जलते समय भी धूप अपना सुगंधमय स्वभावको नहीं छोड़ता; वैसे ही बाह्य में कितना ही प्रतिकूल संयोग हो, तो भी मैं अपना ज्ञान स्वभावको कभी नहीं छोडूंगा—ऐसी भावना धूप चढ़ाते समय हमारी होनी चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ८०—धूप से भगवान की पूजा कौन कर सकता है ?

उ०—मैं कौन हूँ ? मेरा स्वरूप क्या है ? यह चरित्र कैसे बन रहा है ? ये मेरे भाव होते हैं उनका क्या फल लगेगा ? मैं दुःखी हो रहा हूँ, सो दुःख दूर होने का क्या उपाय है ? इतनी बातों का निर्णय करके अपने सन्मुख होवे तो धूप से भगवान की पूजा की।

प्र० ८१—चौबीसी की पूजा में "मिस धूप करम जरि जारि" का क्या अर्थ है ?

उ—द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म से पृथक्पने का अनुभव-ज्ञान वर्तता हो तो "मिस धूमकर्म जरि जाहि" कहा जा सकता है।

प्र० ८२—हम जो अग्नि में धूप चढ़ाते हैं क्या उससे कर्मों का नाश नहीं होता है ?

उ०—धूप, अग्नि, हाथ का उठना आदि पुद्गल की क्रिया है। धूप चढ़ाने का मन्द कषाय का भाव, पुण्यभाव है। पर और विकारी क्रियाओं से कभी भी कर्मों का नाश नहीं होता है। बल्कि इन कार्यों को मैं करता हूँ, यह मान्यता महान मिथ्यात्व पाप है। इसलिए पात्र जीवों को पर और विकार से रहित मेरा आत्मस्वभाव है ऐसा जानकर उसका आश्रय ले, तो निमित्त रूप से कहा जाता है कि कर्मों का अभाव किया, तब धूप से पूजा की, ऐसा बोला जाता है।

प्र० ८३—जैसा वस्तु स्वरूप है, वैसा माने, तो धूप चढ़ाना सार्थक है तब "वस्तु स्वरूप क्या है ?

उ०—"सब पदार्थ अपने-अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहने वाले अपने-अपने अनन्त धर्मों के चक्र को चुम्बन करते हैं—स्पर्श करते हैं। तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते" ऐसा जाने-माने, तब धूप भगवान की पूजा की, कहा जा सकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ८४—"विभाव परिणति विनाशनाय धूपम्" का कवित्त क्या है ?

उ०—जड़ कर्म घुमाता है मुझ को, यह मिथ्या भ्रान्ति रही मेरी।
मैं राग द्वेष किया करता, जब परिणति होती जड़ केरी॥
यों भावकर्म या भावमरण, सदियों से करता आया हूँ।
निज अनुपम गन्ध अनल से प्रभु, पर-गन्ध जलाने आया हूँ॥

फल

प्र० ८५—फलद्वारा पूजा करते समय हमारी भावना कैसी होनी चाहिए ?

उ०—प्रभो ! मुझे देवगति की प्राप्ति हो, संसार में सब प्रकार की अनुकूलता मिले, व्यापार आदि अच्छा चले, इत्यादि कोई भी सांसारिक फल प्राप्त करने की मुझे अभिलाषा नहीं है। किन्तु मुझे एकमात्र मोक्षफल की प्राप्ति हो—ऐसी भावना फल द्वारा पूजा करते समय हमारी होनी चाहिए।

प्र० ८६—फल चढ़ाने का रहस्य क्या है ?

उ०—जैसे (१) प्रथम खेत को जोतकर, साफ करके जमीन को पोला बनाया जाता है। (२) फिर पानी दिया जाता है। (३) फिर जब बीज बोते है तब वृक्ष होता है। (४) बाद में वृक्ष पर फल आता है; उसी प्रकार (१) प्रथम शास्त्रों में जो बातें बतायी हैं तथा देव-गुरु जो कहते हैं उसे प्रमाण माने। अपनी समझ में न आवे उसे असत्य ना कहे। देव-गुरु-शास्त्र की जो आज्ञा हो उसे ध्यानपूर्वक सुने-विचारे, यह खेत जोतकर साफ करके जमीन को पोला बनाने के समान है। (२) पर द्रव्यों में कर्ता-भोक्ता की बुद्धि मिथ्यात्व है। पूजा-दयादान-अणुव्रत-महाव्रत-सोलह कारण आदि भाव पुण्य बन्ध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का कारण है, मोक्ष का कारण नहीं है। पुण्य करते-करते धर्म होगा, निमित्त से उपादान में कार्य होता है ऐसी मान्यता घोर अज्ञानता है—ऐसा स्वीकार करना, खेत में पानी देने के समान है (३) यह जीव अनादि से एक-एक समय करके मोह-राग द्वेष के कारण दुखी हो रहा है, अब वर्तमान में अपने स्वभाव का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति करे तो यह बीज बोने के समान है। (४) अपनी आत्मा में विशेष स्थिरता करके चारित्ररूप मोक्ष की प्राप्ति को यह वृक्ष पर फल के समान है। तब फल से पूजा करना, यह फल चढ़ाने का रहस्य है।

प्र० ८७—फल क्यों चढ़ाया जाता है ?

उ०—हे भगवान, मैंने अनादि से एक-एक समय करके पुण्य से धर्म माना तथा ब्राह्य क्रियाओं में सुन्दर फलों के चढ़ाने से धर्म माना। अब मैं उस खोटी बुद्धि का नाश करने के लिए और सच्ची शान्ति प्राप्त करने के लिए फल चढ़ाता हूँ, अतः खोटी बुद्धि के नाश के लिए और सच्ची शान्ति प्राप्ति के निमित्त रूप फल चढ़ाया जाता है।

प्र० ८८—जब तक मोक्ष की प्राप्ति ना हो, तब तक क्या करना चाहिए ?

उ०—जैसे जब देवों को अमृत की इच्छा हुई, तब उन्होंने समुद्र को मंथन किया। मंथन करते-करते कीमती रत्न निकले, उससे वे सन्तुष्ट नहीं हुए। तब भी समुद्र का मंथन करते रहे, तो उन्हें हलाहल जहर प्राप्त हुआ, उससे वे भयभीत नहीं हुए। बाद में मँथते-मँथते अमृत की प्राप्ति हुई तब उन्हें शान्ति मिली, क्योंकि निश्चित वस्तु की प्राप्ति के बिना धीर-वीर पुरुष विराम नहीं लेते हैं; उसी प्रकार हमें अमृत रूपी मोक्ष की प्राप्ति करनी है जब तक वहना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिले, तब तक शुभभावो में तथा अनुकूल संयोगों में सन्तुष्ट नहीं होना चाहिए और प्रतिकूल अनिष्ट संयोग से जरा भी डगमगाना नहीं चाहिए, तभी मोक्षफल की प्राप्ति सम्भव है।

प्र० ८९—आजकल जीव मोक्ष का पुरुषार्थ नहीं कर सकता, तो क्या फल से आजकल पूजा नहीं हो सकती है ?

उ०—शक्ति रूप मोक्ष का आश्रय लेकर,दृष्टि मोक्ष प्राप्त होने पर फल से पूजा की शुआआत हो जाती है।

प्र० ९०—"मोक्ष पद प्राप्तये फलम् का कवित्त क्या है ?

उ०—जग में जिसको निज कहता मैं, वह छोड़ मुझे चल देता है।
मैं आकुल व्याकुल हो लेता, व्याकुल का फल व्याकुलता है॥
मैं शान्त निराकुल चेतन हूँ, है मुक्तिरमा सहचरि मेरी।
यह मोह तड़क कर टूट पड़े, प्रभु सार्थक फल पूजा तेरी॥

अर्घ

प्र० ९१—अर्घ के कितने अर्थ हैं ?

उ०—दो अर्थ है, (१) पूजा की सामग्री, (२) कीमती वस्तु।

प्र० ९२—पूजा की सामग्री से क्या तात्पर्य है ?

उ०—मैं भगवान को अष्ट द्रव्य रूपी अर्घ(सामग्री) से पूजता हूँ।

प्र० ९३ कीमती वस्तु से क्या तात्पर्य है ?

उ०—अमूल्य पद प्राप्त करने के लिए कीमती वस्तु अर्पण करता हूँ।

प्र० ९४—कीमती वस्तु क्या है ?

उ०—विचारों, माँगते हैं अनर्घपद। वासमती चावल तो घर में खाने के काम आवेगा। भगवान की पूजा सामग्री में मोटा, टूटा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जरा-सा चावल, जरा-सा नैवेद्य, एक बादाम, दो लौंग चढ़ाते हैं, अच्छा घी तो घर पर काम आ जावेगा, मन्दिर में डाल्डा ही ले जाते हैं।

देखो, देते हैं थोड़ी कीमत की चीज और चाहते है अमूल्य पद, कितना आश्चर्य है।

प्र० ६५—क्या कीमती वस्तु अर्पण किये बिना मोक्ष पद की प्राप्ति नहीं हो सकती है ?

उ०—जैसे कोई मनुष्य पाँच रुपया लेकर हीरा खरीदने जावे, तो क्या उसे हीरा मिलेगा ? कभी भी नहीं मिलेगा; उसी प्रकार अमूल्य पद अर्थात् मोक्ष पद प्राप्त करने के लिए कीमती वस्तु को अर्पण करना पड़ेगा, तभी उसकी प्राप्ति होगी। इतना ही नहीं किन्तु जैन नाम धराकर अणुव्रत, महाव्रत, सोलह कारण आदि शुभभावों को कीमती मान रक्खा है। पात्र जीव कहता है; हे भगवान ! मैं इसको भी अर्पण करता हूँ। जहाँ से कभी भी वापस ना आना पड़े ऐसे अमूल्य पद की प्राप्ति के लिए आपके चरणों में अर्घ चढ़ाता हूँ।

प्र० ६६—'अनर्घपद प्राप्तये अर्घम्' का कवित्त क्या है ?

उ०—क्षणभर निज रस को पी चेतन, मिथ्या मल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृत पीता है॥
अनुपम सुख तब विलसित होता, केवल रवि जगमग करता है।
दर्शनबल पूर्ण प्रगट होता, यह ही अरहंत अवस्था है॥
यह अर्घ समर्पण करके प्रभु, निजगुण का अर्घ बनाऊँगा।
और निश्चित तेरे सद्रश प्रभु, अर्हन्त अवस्था पाऊँगा॥
तास ज्ञान का कारण, स्व-पर विवेक बखानौ।
कोटि उपाय बनाय, भव्य ताको उर आनौ॥

पूजा समाप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दशवाँ पाठ

समयसार गा० १६० का रहस्य क्या है ?

प्र० १—समयसार गा० १६० पुण्य-पाप अधिकार की है, इसमें तेरा सर्वज्ञ-सर्वदर्शी स्वभाव है, यह कहने का क्या प्रयोजन है ?

उ०—यह सर्वज्ञानी दर्शिभी, निजकर्म रज आच्छाद से।
संसार प्राप्त न जानता, वो सर्व को सब रीत से ॥१६०॥

अर्थ—वह आत्मा स्वभाव से सर्व को देखने-जानने वाला है तथापि अपने कर्म मल से लिप्त होता हुआ-व्याप्त होता हुआ, संसार को प्राप्त हुआ, वह सब प्रकार से सर्व को नहीं जानता।

भावार्थ—पुण्य-पाप अधिकार में सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की बात क्यों की ? यह बताने के लिए कि जब तक जीव को पुण्य-पाप की रुचि रहेगी तब तक उसे सम्यग्दर्शन नहीं होगा। और पर्याय में जब तक पुण्य भाव रहेगा तब तक सर्वज्ञ-सर्वदर्शी नहीं बन सकता है।

प्र० २—किस जीव को सम्यग्दर्शन की प्राप्ति नहीं होगी ?

उ०—(१) जो जीव दया-दान-पूजा-अणुव्रत-महाव्रतादि विकारी-भावों से धर्म की प्राप्ति होवे। (२) संसार अवस्था में शुभभाव कुछ तो मदद करता ही हैं। (३) शुभ करते-करते धर्म की प्राप्ति हो जावेगी आदि मान्यता वाले हो उसको पुण्य की रुचि है, उसको कभी भी सम्यग्दर्शन होने का अवकाश नहीं है।

प्र० ३—गा० १६० में से दो बोल कौन-कौन से निकलते हैं ?

उ०—(१) जबतक जीव को परलक्षी ज्ञान और पुण्य की मिठास रहेगी तब तक उसे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की श्रद्धा नहीं हो सकती। अर्थात् जबतक जीव को परलक्षी ज्ञान के उघाड़ की रुचि, पुण्यभाव, पुण्यकर्म और पुण्य की सामग्री की रुचि रहेगी तबतक उसे सम्य-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दर्शन की प्राप्ति नहीं होगी। (२) और जब तक पर्याय में पुण्य-पाप का भाव रहेगा, जब तक सर्वज्ञ और सर्वदर्शी नही बन सकता।

प्र० ४—क्या अपने आत्महित साधने के लिए मोक्षमार्ग में परलक्षी ज्ञान के उघाड़ की,पुण्यभाव, पुण्यकर्म और पुण्य की सामग्री की किंचित मात्र भी कीमत नहीं है ?

उ०—वास्तव में सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए, श्रेणी मांडने के लिए, सिद्धदशा प्राप्त करने के लिए, परलक्षी ज्ञान की और पुण्य भाव पुन्यकर्म और पुण्य की सामग्री की किंचित मात्र आवश्यकता नहीं है। एक मात्र मैं अखण्ड त्रिकाली परमपारिणामिक भाव रूप रूप हूँ, ऐसा अनुभव और ज्ञान की ही आवश्यकता है।

प्र० ५—क्या सम्यग्दर्शन प्राप्त करने के लिए पुण्य भाव की जरूरत नहीं है ?

उ०—नहीं है। विचारो : चार गति के चार जीव हैं: (१) सातवें नरक का नारकी, जहाँ पर प्रतिकूल संयोग भरा पड़ा है। (२) नव ग्रैवेयक का मिथ्यादृष्टि देव जहाँ पर अनुकूल संयोग भरा पड़ा है। (३) स्वयंभूरमण समुद्र का मगरमच्छ तिर्यंच जो जल में पड़ा है। (४) बड़ा भारी महाराजा मनुष्य जो हीरों के सिहासन पर बैठा है। इस प्रकार चारों गतियों के जीवों को पुण्य-पाप के संयोगों में बड़ा अन्तर है।

चारों गतियों के चारों जीवों को मानो मोटे रूप से ८ बजकर एक मिनट पर सम्यग्दर्शन होना है, तो ८ बजे सम्यग्दर्शन के योग्य आत्म सन्मुखतारूप शुभभाव समान होते हैं, क्योंकि जब जीव को सम्यक्त्व की प्राप्ति होती है तब करणलब्धि का तीसरा भेद अनि-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वृत्तिकरण का अभाव होकर ही होता है इस प्रकार चारों गतियों के जीवों के संयोगों में बड़ा अन्तर होने पर भी आत्म सन्मुखतारूप परिणाम समान होते हैं। अतः सम्यक्त्व की प्राप्ति में बाह्य संयोग बाधक-साधक नहीं होते हैं।

जीव एक मात्र अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय ले, तो तुरन्त सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है। ऐसा जानकर संयोग और संयोगी भावों की रुचि को त्याग करके सम्यग्दर्शन प्राप्त करना चाहिए।

प्र० ६—श्रेणी माँडने के लिए भी क्या परलक्षी ज्ञान के उघाड़ की जरूरत नहीं है ?

उ०—नहीं है। विचारो : चार भावलिंगी मुनि हैं :

(१) एक मुनि को मति-श्रुत ज्ञान का अल्प उघाड़ है और मुनि पदवी है। (२) दूसरे मुनि को मति-श्रत-अवधि ज्ञान का उघाड़ है। (३) तीसरे मुनि को मति-श्रुत-मनःपर्यय ज्ञान का उघाड़ है। (४) चौथे मुनि को मति श्रुत-अवधि-मनःपर्यय चार ज्ञान का उघाड़ है।

विचारो, चारों भावलिंगी मुनि हैं, ज्ञान का उघाड़ कम-ज्यादा होने पर भी यह चारों मुनि श्रेणी माँडे तो ६वें गुणस्थान में शुद्धि चारों मुनियों को समान ही होती है, तो वह ज्ञान का उघाड़ क्या कार्यकारी रहा ? कुछ भी नहीं। एक मात्र अपने त्रिकाली स्वभाव की एकाग्रता ही श्रेणी के लिए कार्यकारी है।

जैसे शिवभूति मुनि ने ज्ञान का अल्प उघाड़ होने पर भी आत्मा में स्थिरता करके अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान की प्राप्ति की। दूसरी तरफ अवधिज्ञान-मनःपर्यय ज्ञान में उपयोग हो तो श्रेणी नहीं माँड़ सकता है। इससे सिद्ध हुआ श्रेणी माँडने में परलक्षी ज्ञान के उघाड़ की किंचित् मात्र आवश्यकता नहीं है, एक मात्र आत्मा की एकाग्रता की ही आवश्यकता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ७—सिद्धदशा प्राप्त करने के लिए भी क्या परलक्षी ज्ञान की और पुण्यभाव, पुण्यकर्म और पुण्य की पदवी की किंचित् मात्र आवश्यकता नहीं है ?

उ०—नहीं हैं : विचारो :

सिद्धशिला ४५ लाख योजन की है उसके नीचे २५ लाख योजन जमीन है और २० लाख योजन पानी ही है। भगवान की वाणी में आया है कि सिद्धशिला में कोई जगह सुई की नोंक के बराबर भी खाली नहीं है, जहाँ पर अनन्त सिद्ध विराजमान ना हो।

प्र० ८—जहाँ पर जमीन है वहाँ पर तो अनन्त सिद्ध समश्रेणी से लोकाग्र में विराजमान हैं, यह बात समझ में आती है। परन्तु जहाँ अनादिअनन्त पानी है वहाँ पर भी अनन्त सिद्ध विराजमान हैं, यह बात समझ में नहीं आती, क्योंकि जो जीव मोक्ष में जाता है, समश्रेणी से ही जाता है, जहाँ पानी-पानी ही है, वहाँ से मोक्ष कैसे ?

उ०—कोई पूर्वभव का वैरी देव भावलिंगी मुनि को उठाकर जैसे धोबी कपड़े पछाड़ता है उठाकर समुद्र में पछाड़े। वह वहाँ पर ही केवलज्ञान प्राप्त करके मोक्ष में चला जाता है। देखो, बाहर का संयोग कैसा है। इसलिए सिद्धदशा प्राप्त करने के लिये भी पुण्य की पदवी को और परलक्षी ज्ञान के उघाड़ की जरूरत नहीं है।

हे भव्य, तू अनादि अनन्त भगवान रूप शक्ति का पिंड है। उसके आश्रय से ही सम्यग्दर्शनादि श्रेणी और सिद्धदशा की प्राप्ति होती है, परलक्षी ज्ञान से, पुण्यभाव, पुण्यकर्म और पुण्य की पदवी से नहीं। ऐसा जानकर एकबार अपनी ओर दृष्टि कर तो तुझे पता चले, किसी से भी पूछना ना पड़ेगा।

प्र० ९—फिर अपने हित के लिए क्या करे ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—अपने कल्याण के लिए ज्ञान के उघाड़ की और पुण्य-पाप की रुचि छोड़कर अपने त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव का आश्रय ले, तो तभी आत्मा में धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पर्णता होगी।

समयसार कलश २११ का रहस्य

प्र० १०—२११वाँ कलश क्या बताता है ?

उ०—स्वतन्त्रता की घोषणा करता है।

प्र० ११—२११वाँ कलश तथा उसका अर्थ बताओ ?

उ०—ननु परिणाम एव किल कर्म विनिश्चयतः
स भवति नापरस्य परिणामिन एव भवेत्।
न भवति कर्तृशून्यमिह कर्म न चैकतया
स्थितिरिह वस्तुनो भवतु कर्तृ तदेव ततः ॥ २११॥

अर्थ—वस्तु स्वयं ही अपने परिणाम की कर्ता है, उसका (वस्तु का) दूसरे के साथ कर्ता-कर्मपना नहीं है : इस बात को इस कलश में ४ बालो द्वारा समझाया हैं।

(१) वास्तव में परिणाम ही निश्चय से कर्म है। (२) परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी का ही होता है, अन्य का नहीं। (३) कर्म कर्ता के बिना नहीं होता। (४) वस्तु की एक रूप स्थिति नहीं रहती।

इस कलश में महा सिद्धान्त भरा है। विश्व में जीव अनन्तानन्त, जीव से अनन्तानन्त गुणा पुद्गल द्रव्य, धर्म-अधर्म—आकाश एक-एक और लोकप्रमाण असख्यात कालद्रव्य हैं; इन सब द्रव्यों के स्व... का नियम क्या है, वह बात इस कलश में समझाई है।

(१) कोई गाली देता है; (२) धन चोरी चला जाता है; (३) शरीर में अनुकूलता या प्रतिकूलता होती है; (४) घर में कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाता है; (५) बच्चे कहना नहीं मानते; (६) लड़की भाग जाती है; (७) लाखों रुपयों का लाभ-नुकसान होता है आदि प्रसंग उपस्थित होने पर यदि २११वाँ कलश हमारे सामने होगा, तो अशान्ति नहीं आवेगी, क्योंकि ज्ञानी तो जानता है कि "वस्तु की एक रूप स्थिति नहीं रहती है।"

प्र० १२—वास्तव में परिणाम ही निश्चय से कर्म है, इसे समझाइए ?

उ०—परिणाम, कार्य, कर्म, दशा, हालत, कन्डीसन; यह सब पर्यायवाची शब्द हैं। परिणाम परिणामी का ही होता है। सबसे पहले निर्णय करना चाहिए, यह क्या है ? जैसे किसी ने कहा, बाई ने रोटी बनायी, तो विचारों यहाँ, कार्य क्या हैं। रोटी बनना कार्य है, वह आटे से ही बनी है। इसी प्रकार संसार में जो कार्य होता है, वह परिणामी से होता है, ऐसा जो समझा उसने "वास्तव में परिणाम ही निश्चय से कर्म है" ऐसा माना। वास्तव में पहला बोल समझने से (१) ज्ञान हुआ, ज्ञान में से आया, (२) सम्यग्दर्शन हुआ, श्रद्धा गुण ही में से हुआ, (३) दिव्यध्वनि हुई, वह भाषावर्गणा में से हुई, (४) राग आया, वह चारित्र गुण में से आया आदि बातों का निर्णय हो जाता है।

प्र० १३—परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी का ही है, अन्य का नहीं, इससे क्या तात्पर्य है ?

उ०—जो पहले बोल में नहीं समझा, उसे और स्पष्ट करने के लिए आचार्य भगवान ने अति कृपा की। जैसे (१) ज्ञान हुआ, वह ज्ञान गुण में से ही आया, वह आँख, नाक कान कर्म के क्षयोपशमादि से नहीं। (२) सम्यग्दर्शन हुआ, वह श्रद्धा गुण में से ही हुआ देवगुरु से दर्शनमोहनीय के उपशमादि से नहीं हुआ। (३) दिव्यध्वनि

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाषावर्गणा से ही आयी है, भगवान से नहीं। (४) ज्ञान गुण में से ही ज्ञान आया है, चारित्र आदि बाकी गुणों से नहीं। (५) यथाख्यातचारित्र प्रगटा, चारित्र गुण में से ही आया है, बाकी ज्ञान-श्रद्धा आदि गुणों में से नहीं, आदि बातों का स्पष्टीकरण दूसरे बोल में अस्ति-नास्ति से समझाया है। इसमें जो कार्य हुआ है वह द्रव्य का ही है, अन्य का नहीं। एक द्रव्य में अनन्त गुण हैं; एक गुण का कार्य दूसरे गुण से हुआ नहीं है यह बात भी समझायी है। इससे जीव को अनादिकाल से पर में कर्ता-भोक्ता बुद्धि का अभाव होकर धर्म की प्राप्ति होती है।

प्र० १४—"कर्म कर्ता के बिना नहीं होता" इससे क्या तात्पर्य है ?

उ०—संसार में जो जो कार्य होता है, वह कार्य करता के बिना नहीं होना है; जैसे (१) ज्ञान हुआ, वह ज्ञान गुण बिना नहीं; (२) दिव्यध्वनि हुई, वह भाषा वर्गणा के बिना नहीं, (३) गाली, वह भाषा वर्गणा के बिना नहीं। जो मात्र पर्याय को ही मानते हैं, द्रव्य को नहीं मानते हैं, उनसे कहा कि "पर्याय द्रव्य बिना नहीं होता है।" जब अनादिअनन्त कर्ता स्वयं स्वतन्त्रतापूर्वक अपना-अपना कार्य करता है ऐसा जाने-माने, तो उसे तुरन्त धर्म की प्राप्ति होती है।

प्र० १५—"वस्तु की एकरूप स्थिति नहीं रहती" इससे क्या तात्पर्य है ?

उ०—जो वस्तु है एक-एक समय करके बदलना उसका स्वभाव है। जैसे (१) अभी अभी यह आदमी हमारी प्रशंसा कर रहा था, इतने में निन्दा क्यों करने लगा ? अरे भाई "वस्तु की एक रूप स्थिति नही रहती"। (२) अभी थोड़ा ज्ञान था, ज्यादा कैसे हो गया ? "वस्तु की एकरूप स्थिति नहीं रहती"। (३) पहले ज्ञान ज्यादा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

था, अब कम कैसे हो गया ? अरे भाई "वस्तु की एकरूप स्थिति नहीं रहती" । (४) इन्द्रभूति गृहीत मिथ्यादृष्टि था, उसे भगवान महावीर के समोशरण में आने पर सम्यग्दर्शन, मुनिपना, गणधर—पना, अवधि मनःपर्ययज्ञान कैसे होगया ? अरे भाई, "वस्तु की एक रूप स्थिति नहीं रहती है।" (५) मारीच को भगवान आदिनाथ के समोशरण में सम्यक्त्व नहीं हुआ, शेर पर्याय में कैसे हो गया ? अरे भाई, "वस्तु की एकरूप स्थिति नहीं रहती है" ऐसा जीव जाने, तो नियम से विकार का अभाव होकर धर्म की शुरूआत होकर वृद्धि और पूर्णता होती ही है।

प्र० १६—२११ कलश के चार बोल समझाने वाले जीव को कैसे-कैसे भाव एकत्व बुद्धिपूर्वक नहीं आते ?

उ०—(१) ऐसा क्यों, (२) इससे यह, (३) यह हो, यह ना हो आदि प्रश्न उपस्थित नहीं होते हैं। ज्ञानी तो सबका ज्ञाता है, क्योंकि वह जानता है कि "वस्तु की एक रूप स्थिति नहीं रहती है।"

प्र० १७—"ऐसा क्यों" ऐसे प्रश्न के लिए ज्ञान स्वभाव में स्थान क्यों नहीं है !

उ०—(१) एक मनुष्य दूसरे मनुष्य की निन्दा कर रहा था, एकाएक उसकी प्रशंसा करने लगा, (२) पार्श्वनाथ भगवान का जीव हाथी की पर्याय में पागल बना फिरता था, उसे उसी पर्याय में सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हुई। अज्ञानी को ऐसा लगता है, 'ऐसे क्यों'। परन्तु ज्ञाता स्वभाव को जानने वाले ज्ञानी के लिए यह प्रश्न नहीं उठता, क्योंकि "वस्तु की एकरूप स्थिति नहीं रहती है' और 'परिणाम परिणामी का ही होता है, अन्य का नहीं।"

प्र० १८—निन्दा या गाली के शब्द सुनकर अज्ञानी को और ज्ञानी को कैसे-कैसे भाव होते हैं और क्यों ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—"किसी ने गाली दी।"

ज्ञानी तो जानता है, "गाली तो मात्र शब्दों की अवस्था है, अमुक-अमुक अक्षरों के मिलने से शब्द बने हैं, यह कोई निन्दा नहीं है।

अज्ञानी ऐसा मानता है 'यह मेरी निन्दा हुई' यह उसकी मान्यता का दोष है और वह मान्यता ही दुःख का कारण है।

ज्ञानी जानता है जीव चेतन होने से जड़ शब्दों की अवस्था कर ही नहीं सकता, क्योंकि शब्द भाषावर्गणा का ही कार्य है।

अज्ञानी जीव भी निन्दा के शब्दों को तो परिणमन करा नहीं सकता किन्तु वह गाली देने का द्वेष भाव करता है और वह मात्र द्वेष भाव से ही दुःखी हो रहा है।

प्र० १९—किसी ने गाली दी इस शब्द को ऐसा क्यों'? इस अपेक्षा विचार करते है ?

उ०—ज्ञानी जानता हैं—सामने वाला जीव निन्दा के शब्दों को परिणमन करा नहीं सकता, क्योंकि निन्दा के शब्दों का कर्त्ता भाषा वर्गणा है और द्वेष भाव का कर्त्ता अज्ञानी का चारित्र गुण है,इसलिए (दूसरे जीव पर) क्रोध करने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता है।

सामने वाला जीव इस मेरी अरूपी ज्ञायक स्वभावी आत्मा को देख नहीं सकता, इसलिए जब वह देख नहीं सकता तो उसने मुझे कुछ कहा ही नहीं।

अज्ञानी तो शरीर और नाम को उद्देश्य करके निन्दा करता है। परन्तु ज्ञानी विचारता है शरीर और नाम तो मेरा है ही नहीं। शरीर और नाम तो मेरे से पर है, इसलिए ज्ञानी को दुःख नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शरीर और नाम अपना नहीं होने पर भी उसे अपना मानने रूप भूल अज्ञानी जीव करता है, वह ही उसे दुःख का कारण है।

जिस समय इस जीव के ज्ञान का उघाड निन्दा के शब्दों का ज्ञान करने रूप होता है, उस समय वह शब्द ही सामने ज्ञेय रूप होता है ऐसा ज्ञानी जानता है।

लेकिन अज्ञानी विचारता है कि मेरी निन्दा ना हो अर्थात् अव्यक्त रूप से ऐसा मानता है कि निन्दा के शब्दों को ज्ञान पर्याय मुझे ना हो। ज्ञान पर्याय तो ज्ञान गुण का है अर्थात् ज्ञान गुण मुझे ना हो, ऐसा माना। ज्ञान गुण आत्मा का है अर्थात् मेरी आत्मा मुझे ना हो, ऐसा माना। ऐसी मान्यता वाला जीव आत्मघाती महा पापी है।

इससे यह सिद्ध हुआ सामने वाला जीव मेरी निन्दा करता है, ऐसा क्यों ? ऐसे प्रश्न का ज्ञान स्वभाव को जानने वाले के लिए स्थान ही नहीं। इस प्रकार समझकर ज्ञाता स्वभावी बनकर २११ वें कलश का मर्म समझकर सुखी रहना ज्ञानी का कार्य है, क्योंकि ज्ञानी जानता है 'वस्तु की एक रूप स्थिति नहीं रहती' और परिणाम परिणामी का ही होता है, अन्य का नहीं।

प्र० २०—'इससे यह,' क्या ऐसा प्रश्न भी ज्ञान स्वभावी ज्ञानी को उठता नहीं ?

उ०—जैसे 'हजार रुपया खो गया' अज्ञानी ऐसा मानता है कि मेरा रुपया गया, इसलिए मुझे दुःख होता है। वास्तव में रुपया खो जाने के कारण दुःख नहीं, परन्तु "मेरा खो गया" यह मान्यता ही दुःख का कारण है।

ज्ञानी तो विचारता है कि रुपया गया, वह तो पुद्गल की क्रियावती शक्ति के कारण गया। उसके जाने के कारण मुझे दुःख है ही

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं। मैं तो स्वपर प्रकाशक ज्ञान स्वभावी आत्मा हूँ। इसलिए स्व के ज्ञान के समय रुपया खो जाने रूप पुद्गल की अवस्था हुई उसका तो मैं मात्र पर ज्ञेय रूप से जानने वाला हूँ, ऐसा जानने से ज्ञानी को दुःख नहीं होता है।

इससे सिद्ध होता है कि पर के कारण आत्मा में कुछ भी नहीं हो सकता। फिर "इससे यह" का प्रश्न ज्ञानी को नहीं उठता, मात्र अज्ञानी को ही उठता है। ज्ञानी तो जानता है "वस्तु की एक रूप स्थिति नही रहती है" परिणाम परिणामो का ही होता है, अन्य का नहीं।

प्र० २१—"यह हो, यह ना हो" क्या ऐसा प्रश्न भी ज्ञान स्वभावी ज्ञानी को उठता नहीं ?

उ०—(१) संसार में मेरे मित्र ही हो, कोई दुश्मन ना हो। (२) सदा ज्ञानी ही हो, अज्ञानी ना हो। (३) मेरी अनुमोदना करने वाले हो, विरोध करने वाले ना हो। (४) अच्छा ही हो, बुरा ना होवे। ऐसा अज्ञानी मानता है; परन्तु ऐसा कभी हो नहीं सकता, क्योंकि सब पदार्थ सत् हैं, प्रत्येक पदार्थ कायम रह कर पलटना ही उसका स्वभाव है, क्योंकि 'वस्तु की एक रूप स्थिति नहीं रहती है' ऐसा मानने वाले ज्ञानी जीव को "यह हो, यह ना हो" ऐसा प्रश्न उठता ही नहीं।

ज्ञानी तो समझता है कि संसार के सम्पूर्ण पदार्थ सत् हैं तथा सदा काल कायम रहते हुए पलटते रहना उनका स्वभाव है। फिर अमुक ज्ञेय हो और अमुक ना हो, ऐसा भेद पाड़ना वह ज्ञान स्वभाव में नहीं है। इसलिए ज्ञानी तो सब का ज्ञाता ही रहता है क्योंकि वह 'सत् द्रव्य लक्षणम्' उत्पाद व्यय ध्रौव्ययुक्तं सत् के रहस्य को जानता है और भगवान अमृतचन्द्राचार्य २११ कलश के चार बोलों

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

को जानता है कि (१) वास्तव में परिणाम निश्चय से कर्म है। (२) परिणाम अपने आश्रयभूत परिणामी का ही है, अन्य का नहीं। (३) कर्म कर्ता बिना नहीं होता (४) वस्तु की एक रूप स्थिति नहीं रहती है। इसलिए ज्ञानी को (१) ऐसा क्यों (२) इससे यह (३) यह हो, यह ना हो" ऐसे प्रश्न उपस्थित नहीं होते है। वह तो सिद्ध भगवान के समान ज्ञाता-द्रष्टा रहता है, मात्र जानने में प्रत्यक्ष-परोक्ष का भेद है, जानने में विरुद्धता नहीं। ऐसे ज्ञान स्वभावी का रहस्य बताने वाले जिन, जिनवर और जिनवर वृषभों को बारम्बार नमस्कार।

———

ग्यारहवाँ पाठ

प्रवचनसार ९३ वीं गाथा का रहस्य

प्र० १—अर्थ का मतलब क्या है ?

उ०—(१) अर्थ अर्थात् प्रयोजन। दुःख का अभाव और सुख की प्राप्ति, यह ही प्रत्येक जीव का प्रयोजन है, और नहीं (२) प्रकृष्ट रूप से अपनी आत्मा में जुड़ान करना, उसका नाम प्रयोजन है।

प्र० २—अपनी आत्मा में प्रकृष्ट रूप से जुड़ान करने से क्या होता है ?

उ०—अपनी आत्मा में प्रकृष्ट रूप से जुड़ान करने से, अनादि काल से जो समय-समय भावमरण हो रहा था, उसका अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर, क्रमशः मोक्ष होता है।

प्र० ३—अर्थ का दूसरा अर्थ क्या है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—श्री प्रवचनसार जी गा. ६३ में लिखा है कि :

है अर्थ द्रव्य स्वरूप, गुणात्मक कहा है द्रव्य को।
अरू द्रव्य-गुणों से पर्यायो, पर्यय मूढ़ पर समय है ॥६३॥
'अत्थो खलु दव्वमओ दव्वाणि गुणप्पगाणि भणिदाणि।
तेहिं पुणो पज्जाया, पज्जय मूढ़ा पर समया ॥६३॥

अर्थ—अर्थ द्रव्य स्वरूप है, द्रव्यों को गुण रूप कहा गया है। द्रव्य और गुणों से पर्यायें होती हैं, पर्यायमूढ़ जीव पर समय है। देखो, यहाँ अर्थ को द्रव्य स्वरूप है, ऐसा कहा है।

प्र० ४—क्या द्रव्य ही अर्थ है?

उ०—श्री प्रवचनसार जी गा० ८७ में द्रव्य-गुण और पर्याय तीनों को अर्थ नाम से कहा है।

प्र० ५—द्रव्य को अर्थ श्री प्रवचनसार जी में क्यों कहा है?

उ०—द्रव्य, अपने गुणों और पर्यायों कों प्राप्त होते हैं, इसलिए द्रव्य को अर्थ कहा है।

प्र० ६—यदि द्रव्य अपने गुणों और पर्यायों को प्राप्त ना करे अर्थात् दूसरो को प्राप्त करे, तो क्या होगा?

उ०—अनर्थ हो जावेगा, क्योंकि कोई भी द्रव्य अपने-गुण-पर्यायों को छोड़कर नहीं जाता है, परन्तु उल्टी मान्यता के कारण अभिप्राय में अनर्थ हो जावेगा।

प्र० ७—गुण को अर्थ श्री प्रवचनसार जी में क्यों कहा है?

उ०—गुण, जो अपने आश्रय भूत द्रव्य और पर्यायों को प्राप्त होते हैं, इसलिए गुण को अर्थ कहा है।

प्र०—यदि गुण अपने आश्रयभूत द्रव्य और पर्याय को प्राप्त ना हो, और गुण दूसरे द्रव्यों और पर्यायों को प्राप्त हो, तो क्या होगा?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—वास्तव में सदैव गुण अपने आश्रयभूत द्रव्य और पर्यायों को ही प्राप्त होते हैं, अन्य को नहीं। परन्तु कोई ऐसा कहे कि गुण दूसरे द्रव्य और पर्यायों को प्राप्त होते हैं, तो उसकी मान्यता में अनर्थ हो जावेगा। वह चारों गतियों में घूमता निगोद की सैर करेगा।

प्र० ९—पर्याय को अर्थ श्री प्रवचनसार जी में क्यों कहा है ?

उ०—पर्याय, द्रव्य को, गुण को, क्रम परिणाम से प्राप्त करती है, इसलिए पर्याय को अर्थ कहा है।

प्र० १०—यदि पर्याय, द्रव्य-गुण को क्रम परिणाम से प्राप्त ना करे, तो क्या होगा ?

उ०—वास्तव में पर्याय द्रव्य-गुणों को क्रम परिणाम से ही प्राप्त करती है, अन्य को नहीं। परन्तु कोई उल्टा कहे. तो उसकी मान्यता में अनर्थ हो जावेगा।

प्र० ११—द्रव्य गुण-पर्याय को 'अर्थ' कहा, इससे हमको क्या लाभ है ?

उ०—प्रत्येक द्रव्य अपने-अपने गुण-पर्यायों में ही वर्तता है, वर्तता रहेगा, और वर्त रहा है=ऐसा जाने-माने, तो तुरन्त मोह का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर, क्रम से मोक्ष रूपी लक्ष्मी का नाथ बन जाता हैं।

प्र० १२—प्रत्येक द्रव्य अपने अपने गुण-पर्यायों में ही भूत भविष्य वर्तमान में वर्त रहा है वर्तेगा और वर्तता रहा है, ऐसा सिद्धान्त जानने से मानने से धर्म की प्राप्ति नियम से होती है, यह सिद्धान्त कहाँ कहाँ आया है ?

उ०—(१) मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ५२ में लिखा है कि "अनादि-निधन वस्तु जुदी जुदी अपनी-अपनी मर्यादा लिये परिणमै है, कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किसी को परिणमाया परिणमता नाही। और परिणमाने का भाव निगोद का कारण है।

(२) कार्तिकेय अनुप्रेक्षा गा. २१६ में लिखा है कि "समस्त द्रव्य अपने-अपने परिणाम रूप द्रव्य क्षेत्र काल सामग्री को प्राप्त करके स्वयं ही भाव रूप परिणमित होते हैं, उन्हें कोई रोक नहीं सकता है।

(३) 'तेहिं पुणों पज्जाया' श्री प्रवचनसार जी गा. ६३ में द्रव्य और गुणों से पर्यायें होती हैं।

(४) लोक में सर्वत्र जो जितने पदार्थ हैं वे सब निश्चय से एकत्व निश्चय को प्राप्त होने से ही सुन्दरता को प्राप्त होते हैं।—वे सब पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहने वाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को चुम्बन करते हैं स्पर्श करते हैं। तथापि वे परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते। अत्यन्त निकट एक क्षेत्रावगाह रूप से तिष्ट रहे हैं। तथापि सदाकाल अपने स्वरूप से च्युत नहीं होते हैं, पर रूप परिणमन न करने से अपनी अनन्त व्यक्ति नष्ट नहीं होती, इसलिए वे टंकोत्कीर्ण की भाँति स्थित रहते हैं और समस्त विरुद्धकार्य तथा अविरुद्ध कार्य दोनों की हेतुता से वे विश्व का सदा उपकार करते हैं अर्थात् टिकाये रखते हैं।

[समयसार गा० ३ की टीका से]

(५) वस्तु की मालिक वस्तु है, जो मालिक है वही कर्ता है। फिर मालिक के मालिक बनकर, क्यों नीति न्याय गमाते हो।

(६) समयसार गा. १०३ तथा ३७२ महा सिद्धान्त की गाथा है इसमें भी यही लिखा है तथा समयसार में २०० तथा २०१ का कलश देखो।

(७) जड़ चेतन की सब परिणति प्रभु, अपने अपने में होती है, ऐजा पूजा में भी आया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८) अस्तित्व वस्तुत्व द्रव्यत्व गुण बताता है कि वस्तु कायम रहती हुई, अपना-अपना प्रयोजन भूत कार्य करती हुई, निरन्तर वदलती रहती है।

(९) भगवान उमास्वामी ने 'सत्द्रव्यलक्षणम्, उत्पाद व्यय ध्रौव्य युक्तं सत्' यह महा सिद्धान्त बताया है।

प्र० १३—तथा जो ऐसा वस्तु स्वरूप नहीं मानता उसे भगवान ने क्या क्या कहा ?

उ०—समयसार ५५ वें कलश में 'महा मोह अज्ञान अंधकार है उसका सुलटना दुर्निवार है।' तथा मिथ्यादृष्टि कहा है।

(२) प्रवचनसार में "पद पद पर धोखा खाता है।" ऐसा कहा है।

(३) पुरुषार्थसिद्धि-उपाय में "तस्य देशना नास्ति" कहा है।

प्र० १४—जो पर्याय उत्पन्न होती है, किसको याद रक्खे तो संसार का अभाव होकर मोक्ष की प्राप्ति हो ?

उ०—श्री प्रवचनसार जी का "तेहि पुणों पज्जाया" अर्थात् द्रव्य और गुणों से पर्यायें होती है पर से नहीं। ऐसा जाने तो ससार का अभाव होकर मोक्ष की प्राप्ति हो।

प्र० १५—(१) समयसार से ज्ञान हुआ। (२) दर्शन मोहनीय के क्षय से क्षायिक सम्यक्त्व हुआ। (३) उसने गाली दी, तो गुस्सा आया। (४) जीव विकार करे, तो नया कर्म बंध होता है (५) दिव्यध्वनि से ज्ञान होता है (६) ज्ञेयों के जानने से, ज्ञान की प्राप्ति होती है आदि कथनों में 'तेहि पुणों पज्जाया' का सच्चा ज्ञान कब होवे ?

उ०—जैसे "समयसार से ज्ञान हुआ" 'तेहिं पुणों पज्जाया' से पता चला ज्ञान आत्मा के ज्ञान गुण से आया समयसार से नहीं। ऐसा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जानने से ज्ञान, सुख, सम्यग्दर्शनादि परसे आता है ऐसी खोटी बुद्धि का अभाव हो तो "तेहिं पुणों पज्जाया" को जाना। बाकी फिकरे जवानी लगाओ।

प्र० १६—द्रव्य-गुण तो शुद्ध है,पर्याय में अशुद्धि कहाँ से आई ?

उ०—द्रव्य—गुण तो अनादि अनन्त शुद्ध है उस पर लक्ष्य ना करने से पर्याय में अशुद्धि उत्पन्न होती है और अपने द्रव्य गुणों के अभेद पिण्ड पर लक्ष्य करे तो शुद्ध पर्याय प्रगट होती है पर से—कर्मों से उत्पन्न नहीं होती।

प्र० १७—"पज्जय मूढ़ा हि पर समया" अर्थात् पर्यायमूढ़ पर समय है, इससे क्या तात्पर्य है ?

उ०—जब आदिनाथ भगवान ने दीक्षा ली तो मारीच ने भी ली थी। उसने भगवान का विरोध किया ऐसा जानकर अज्ञानी द्वेष करता है।

वही मारीच दशवें भव में भयकर क्रूर शेर बना, जिसको देख-कर जंगल के जीव थर्राते थे। उसकी क्रूरता देखकर अज्ञानी को द्वेष होता है।

शेर पर्याय में सम्यग्दर्शन हुआ तो अज्ञानी को उसके प्रति राग आता है।

२४वाँ तीर्थंकर होने पर पूज्य कहलाया तो अज्ञानी को शुभराग आता है।

मारीच को देखकर (द्वेष) शेर पर्याय में द्वेष और शेर पर्याय में सम्यग्दर्शन होने पर राग, महावीर होने पर अतिराग किया। इसलिए मिथ्यादृष्टि को पर्यायदृष्टि होने से रागद्वेष ही उत्पन्न होता है। मारीच से लेकर महावीर पर्यन्त सलंगपने देखो—तो मारीच द्वेष योग्य नहीं है, शेर द्वेष और राग करने योग्य नहीं है, महावीर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होने पर पूज्य नहीं है, ऐसा जाने-तो राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होगा। ज्ञानी को सदैव स्वभावदृष्टि ही होती है इसलिए राग-द्वेष उत्पन्न नहीं होता है।

प्र० १८—द्रव्यदृष्टि सो सम्यग्दृष्टि और पर्यायदृष्टि सो मिथ्यादृष्टि का दृष्टान्त देकर समझाइये ?

उ०—एक कुत्ता है। उसको कोढ़ हो रहा है। उसमें बहुत बदबू आ रही है अज्ञानी उस पर द्वेष करता। कुत्ता मर कर मन्दकषाय के कारण रानी बनी, उसको देखकर अज्ञानी राग करता है। रानी ने जवानी के नशे में मदिरा पान किया। रानी मरकर नरक में गयी, अज्ञानी द्वेष करता है। अज्ञानी मात्र इस जीव की अवस्था को लक्ष्य में लेता है तो राग-द्वेष होता है। यदि सर्व अवस्थाओं मे वह का वह जीव है, ऐसा माने तो किसी के प्रति द्वेष और किसी के प्रति राग नहीं होगा, मात्र वे सब ज्ञान का ज्ञेय बनेंगे। यदि भूत, भविष्य और वर्तमान तीनों अवस्थाओं की नित्यता का विचार करे तो बदबू, प्यार और द्वेष उत्पन्न नहीं होगा, बल्कि शान्ति की प्राप्ति होगी।

(२) एक राजा था। उसका एक प्रधान बड़ा ज्ञानी था। राजा ने एक बार प्रधान सहित सबको खाने के लिए आमन्त्रित किया। राजा ने सबसे पूछा—'रसोई कैसी है।' सबने कहा, महाराज—बहुत उत्तम स्वादिष्ट है। प्रधान से पूछा, प्रधान जी, "रसोई कैसी है।"—प्रधान ने कहा, "जैसी होती है वैसी है।" एक बार प्रधान सहित राजा घोड़े पर सवार होकर कहीं जा रहे थे। रास्ते में गन्दे नाले का पानी सड़ने के कारण बहुत बदबू आरही थी निकलना भी मुश्किल था। राजा ने कहा, प्रधान जी, बड़ी बदबू आ रही है। परन्तु प्रधान ने कुछ उत्तर नहीं दिया। प्रधान ने विचारा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

राजा बार-बार पूछता है, इसे बोधपाठ देना चाहिए। कुछ दिन बाद प्रधान ने राजा को खाने के लिए निमन्त्रण दिया। प्रधानने गन्दे नालेका बदबूदार पानी लाकर, उसमें निर्मली डालकर, साफकरके, उसमें केशर आदि डालकर सुगन्धित बना दिया और सबसे कह दिया-कि राजा पानी माँगे, कोई न देना, मैं ही दूंगा। खाना खाने के बीच में राजा ने पानी माँगा, तव प्रधान जी स्वयं लाये। राजा सुगन्धित पानी को पीकर दंग रह गया और राजा ने विचारा कि प्रधान इतना स्वादिष्ट भोजन और सुगन्धित पानी पीता है। इसलिए प्रधान ने मेरी रसोई को अच्छा नहीं बताया था। राजा ने पूछा, प्रधान जी, इतना स्वच्छ और सुगन्धित पानी कहाँ से लाये हो। प्रधान ने जबाव दिया, महाराजा, उस सड़े गन्दे नाले का पानी, जिसमें उस दिन बदबू आ रही थी, उस नाले से यह पानी मंगवाया था बाद में उसको स्वच्छ व सुगन्धित बनाया है। पानी की भूत अवस्था, वर्तमानरूप सुगन्धित अवस्था तथा भविष्य- की पेशावरूप अवस्था का लक्ष छोड़कर मात्र पुद्गल की नित्यता का विचार करे, तो जीव में वीतरागता आये बिना नहीं रह सकती है।

(३ मारीच, शेर, नन्दराजा, महावीर अवस्था से देखने पर अज्ञानी को राग-द्वेष उत्पन्न होता है और वही आत्मा है ऐसी नित्यता को देखे, तो वीतरागता की प्राप्ति तुरन्त हो जाती है।

अणुमात्र भी रागादि का, सद्भाव है जिस जीव को।
वो सर्व आगम धर भले ही, जानता नहिं आत्म को ॥२०१॥
नहिं जानता जहं आत्मा को, अनआत्म भी नहिं जानता।
वो क्यों हि होय सुदृष्टि जो जीव अजीव को नहिं जानता ॥२०२॥

तात्पर्य यह है कि मिथ्यादृष्टि मात्र पर्याय को ही देखता है और दुखी होता है। यदि दुःख का अभाव करना हो तो स्वभाव को देखो, तो शान्ति आवेगी, "पज्जय मूढ़ाहि पर समया" ऐसा प्रवचन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सार में कहा है। स्वभावदृष्टि सो सम्यक्दृष्टि। इसलिए अपने स्वभाव का आश्रय लेना प्रत्येक पात्र जीव का परम कर्तव्य है।

५०वें कलश का रहस्य

प्र० १—सुखी होने का, ज्ञानी बनने का और परमात्मा बनने का उपाय समयसार ५०वें कलश में, क्या बताया है ?

उ०—यह ५०वां कलश का रहस्य समझ जावे, तो जीव और पुद्गल में कर्ता-कर्म भाव है, ऐसी खोटी बुद्धि का अभाव होते ही सुखीपने का और ज्ञानीपने का अनुभव होता है और जैसे-जैसे अपने में लीन होता जाता है—वैसे-वैसे परमात्मा बनता जाता है।

प्र० २—५०वें कलश के बोलों से क्या घटित होता है ?

उ०—यह हमारा लड़का है। मैं इसका पालन-पोषण करता हूं, लेकिन यह जरा भी मेरी आज्ञा का पालन नहीं करता, तो देखो, श्री अमृतचन्द्राचार्य जी का यह सिद्धान्त कि "ज्ञानी तो अपनी और परकी परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है" यह याद आते ही शान्ति आ जावेगी, क्योंकि "सब पदार्थ अपने द्रव्य में अन्तर्मग्न रहने वाले अपने अनन्त धर्मों के चक्र को (समूह को) चुम्बन कहते हैं—स्पर्श करते हैं तथापि वह द्रव्य परस्पर एक दूसरे को स्पर्श नहीं करते" तात्पर्य यह है कि संसार में जाति अपेक्षा छह द्रव्य हैं, उनमें अनन्त गुण और पर्यायें हैं। पर्याय प्रति समय बदलती रहती हैं, कोई समय ऐसा नहीं, जिस समय किसी भी द्रव्यकी कोई पर्याय न बदलती हो। जब कायम रहते हुए, पर्याय का निरन्तर बदलना स्वाभाविक है; तो मैं किसी में कुछ कर सकता हूं या मेरा कोई करे; इस प्रश्न के लिए अवकाश ही नहीं रहता। निगोद से लगाकर सिद्ध भगवान तक सबने ज्ञान ही किया है, ज्ञान ही करेंगे, लेकिन मात्र मिथ्यादृष्टि की मान्यता में फेर है। मात्र ज्ञान के अलावा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव पर में कुछ हेर फेर नहीं कर सकता है। ऐसा यह महासिद्धान्त "ज्ञानी तो अपनी और परकी परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता है।" उसकी यथार्थतया समझकर अन्तर में परिणमन करे तो अपूर्व शान्ति मिलेगी।

प्र० ३—समयसार के ५०वें कलश का सार क्या रहा है?

उ०—(१) कोई हमारी निन्दा करता है या प्रशंसा करता है, (२) कोई गाली देता है, कोई मिठाई देता है, (३) कोई गर्दन काटता है, कोई स्तुति करता है, (४) घर में माल आता है या चोरी हो जाती है. (५) शरीर ठीक रहता है या भयानक बीमारी पैदा हो जाती है।

इत्यादि जितने भी प्रश्न उपस्थित हो, तो भगवान अमृतचन्द्राचार्य का सिद्धान्त, ज्ञानी तो अपनी और परकी परिणति को जानता हुआ प्रवर्तता हैं।" शान्ति आ जावेगी।

तीर्थंकर—गणधरादि एक ही बात बतलाते हैं क्योंकि 'अनन्त ज्ञानियों का एकमत होता है और एक अज्ञानी के अनन्त मत होते हैं। तमाम ज्ञानियों का एकमत है कि 'सत् द्रव्य लक्षणम्' 'उत्पाद ध्रौव्य युक्तं सत्।' "अनादिनिधन वस्तु जुदी-जुदी अपनी-अपनी मर्यादा लिए परिणमै हैं, कोई किसी का परिणमाया परिणमता नाहीं" और दूसरे को परिणमाने का भाव निगोद का कारण है। छहढाला में कहा है कि 'पुद्गल नभ धर्म अधर्म काल, इनतें न्यारी हैं जीव चाल', 'रागादि प्रगट ये दुःख दैन, तिनको सेवत गिनत चैन' इत्यादि। तू जीव है, तेरा किसी भी पर द्रव्य से कोई भी सम्बन्ध नहीं है। पुण्य भाव से तू जो अपना भला होना मानता है वह जहर है, यह सबसे बड़ा मिथ्यात्व है, इसलिए पुण्य भाव से भी दृष्टि उठा। अपने ज्ञाता दृष्टा स्वभाव को जान।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ४—हमारे जीवन में कोई अनुकूल या प्रतिकूल संयोग आवे, तो क्या करे ?

उ०—वास्तव में कोई संयोग अनुकूल-प्रतिकूल है ही नहीं। अपनी मिथ्या मान्यता ही प्रतिकूल है।

(२) तुम्हारे जीवन में कैसा ही अनुकूल-प्रतिकूल संयोग हो, उस समय तुम अरहंत और सिद्ध जो कार्य करते हैं वही कार्य करो अर्थात् ज्ञाता दृष्टा बनो तो जीवन में शान्ति आ जावेगी, यही बात इस कलश में है।

प्र० ५—ज्ञानी का क्या अर्थ है ?

उ०—तीन अर्थ हैं, जहाँ जैसा हो वहाँ वैसा जानना। वैसे विशेषरूप से दूसरे नम्बर की बात शास्त्रों में आती हैं।

(१) "जिसमें ज्ञान हो वह ज्ञानी" इस अपेक्षा निगोद से लेकर सिद्ध शिला तक सब जीव ज्ञानी।

(२) "सम्यग्ज्ञानी सो ज्ञानी, मिथ्याज्ञानी सो अज्ञानी।"

इस अपेक्षा तीसरे गुणस्थान तक अज्ञानी और चौथे गुणस्थान से ऊपर के सब ज्ञानी हैं।

(३) "सम्पूर्ण ज्ञानी सो ज्ञानी, कम ज्ञान वाले अज्ञानी" इस अपेक्षा चार ज्ञानधारी गणधर भी अज्ञानी है। मात्र अरहंत—सिद्ध ज्ञानी है।

प्र० ६—समयसार की १००वीं गाथा का क्या अर्थ है ?

उ०—जीव नहिं करे घट पट नहीं, नहिं शेष द्रव्यों जीव करे।
उपयोग योग निमित्त कर्ता, जीव तत्कर्ता, बने ॥१००॥

अर्थ—जीव घट को नहीं करता, पट को नहीं करता, शेष कोई

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

द्रव्यों को नहीं करता, परन्तु जीव के योग और उपयोग घटादि को उत्पन्न करने में निमित्त हैं, उनका कर्ता होता है।

यह कर्ता-कर्म अधिकार की १००वीं गाथा अनादि काल से करूँ-करूँ की मिथ्याबुद्धि को नष्ट करके, सम्यक्त्वादि की प्राप्ति का भव्य जीवों को निमित्त है। इसलिए यह गाथा प्रसिद्ध है।

प्र० ७-१००वीं गाथा पर से चार बोल कौन-कौन से निकलते हैं ?

उ०—(१) यदि आत्म व्याप्य—व्यापक भाव से पर द्रव्य का कर्ता हो तो उसके साथ तन्मयपने का प्रसंग आयेगा अर्थात् अभिप्राय में आत्मा का नाश हो जावेगा। (पररूपपना)

(२) यदि आत्मा निमित्त-नैमित्तिक भाव से पर द्रव्य का कर्ता हो तो नित्य कर्तृत्व का प्रसंग आवेगा अर्थात् उसका संसार तीनों काल बना रहेगा। (विकाररूप पना)

(३) अज्ञानी का योग और उपयोग पर द्रव्य की पर्याय का निमित्त-नैमित्तिक भाव से कर्ता है। (उपयोग, योग का स्वामीपना अर्थात् पर द्रव्य की पर्याय का निमित्तरूप से कर्तापना)

(४) ज्ञानी का योग और उपयोग पर द्रव्य की पर्याय का निमित्त-नैमित्तिक भाव से भी कर्ता नहीं, वह मात्र ज्ञाता है। (आत्मा का एकपना, परद्रव्य पर्याय का ज्ञेयपना)

प्र० ८—'कुम्हार ने घड़ा बनाया' इस पर १००वीं गाथा के चार बोल घटित करके बताओ; ताकि अनादिकाल की मिथ्याबुद्धि दूर हो ?

उ०—(१) 'कुम्हार ने घड़ा बनाया' इसमें घड़ा बना यह कार्य हुआ। कार्य को व्याप्य कहते हैं। आहारवर्गणा के स्कन्ध रूप मिट्टी घड़े का व्यापक है। यहाँ पर कोई मनीषी (अज्ञानी) ऐसा कहे कि "घड़ा व्याप्य और कुम्हार व्यापक" तो ऐसी मान्यता वाले

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जीव ने प्रथम तो यह भूल की, व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध एक ही द्रव्य और उसकी पर्याय में होता है, यहाँ दो पृथक्-पृथक् द्रव्यों में व्याप्य-व्यापक सम्बन्ध माना। यह तभी हो सकता है जबकि कुम्हार, आहारवर्गणा के स्कंध रूप मिट्टी हो जावे; ऐसी मान्यता वाले जीव ने अभिप्राय में कुम्हार का नाश माना। सो यह मिथ्याबुद्धि है। इससे सिद्ध हो गया कि घड़ा व्याप्य और आहार वर्गणा के स्कंध रूप मिट्टी व्यापक है, कुम्हार व्यापक नहीं है।

प्र० ६—कोई ऐसा कहे, घड़ा तो मिट्टी से बना, लेकिन कुम्हार निमित्त तो है ना ?

उ०—जरा देखो जगत में हर समय द्रव्य की कोई न कोई पर्याय तो होती रहती है और जब जब पर्याय होवे तब उसमें जो निमित्त बनना चाहते हैं—उसको नित्य कर्तृत्व का प्रसंग आवेगा अर्थात् उसका संसार तीनों काल बना रहेगा, उसे अपने त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव पर आने का मौका ही नहीं।

(३) 'कुम्हार ने घड़ा बनाया' इसमें घड़ा यह कार्य है इसके बनते समय कुम्हार के उस समय का राग (उपयोग) तथा हाथ चलाना आदि (योग) यह सब एक-एक समय की स्वतन्त्र पर्यायें हैं। वास्तव में (१) कुम्हार का राग, (२) हाथ चलाना आदि क्रिया (३) घड़ा बनना, यह सब एक समय में पृथक्-पृथक् द्रव्यों की अवस्थाएँ हैं-ऐसी वस्तु-स्थिति है। लेकिन अज्ञानी जीवों को तीनों के एकेक समय की स्वतन्त्र पर्यायों का अज्ञान वर्त रहा है। इसलिए वह कहता है कि कुम्हार का राग उपयोग और योग एक समय की पर्याय का निमित्त हैं ना ? इसलिए तीसरा बोल, अज्ञानी-का योग और उपयोग पर द्रव्य की पर्याय का निमित्त-नैमित्तिक भावसे कर्ता बनता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(४) "कुम्हार ने घड़ा बनाया" ज्ञानी जानता है कि कुम्हार का राग (उपयोग) हाथ चलना आदि (योग) और घड़ा पर द्रव्य पर्यायें हैं। यह सब पृथक् पृथक् द्रव्यों का स्वतन्त्र परिणमन है। वह एक समय की पर्याय का निमित्त कर्ता भी नहीं बनता, मात्र ज्ञायक ही रहता है। "ज्ञानी का योग और उपयोग पर द्रव्य की पर्याय का निमित्त-नैमित्तिक भाव से भी कर्ता नहीं, मात्र ज्ञाता है—यह चौथा बोल घटित हो जाता है।

प्र० १०—जैसे कुम्हार ने घड़ा बनाया उसी प्रकार (१) मैंने यह किताब बनायी, (२) स्त्री ने रोटी बनायी, (३) मैं जोर-शोर से बोल सकता हूँ, (४) मैंने रुपया कमाया, (५) मैंने बिस्तरा उठाया, (६) मैंने झाड़ू दी आदि प्रश्नों पर १००वीं गाथा के चारों बोलो को लगाकर बताओ?

उ०—पूर्व प्रश्न के उत्तर अनुसार जवानी लगाकर बताओ।

बारहवां पाठ

सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति का उपाय

प्र० १—समयसार गा० ३८ में सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति का क्या उपाय बताया है?

उ०—मैं एक शुद्ध सदा अरुपी, ज्ञान दृग हूँ यथार्थ से।
कुछ अन्य वो मेरा तनिक, परमाणु मात्र नहीं अरे ॥३८॥

अर्थ—दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप परिणत आत्मा यह जानता है कि मैं निश्चय से एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शन,ज्ञानमय हूँ, सदा अरूपी हूँ; किंचित् मात्र भी अर्थात् परमाणु मात्र भी मेरा नहीं-यह निश्चय है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भावार्थ—निगोद से लगाकर द्रव्यलिंगी मुनि तक अनादि काल से एक-एक समय करके अपनी भ्रमात्मक बुद्धि के कारण क्रोध, मान, माया, लोभ, पाँच इन्द्रियाँ, मन, वचन, देह, चार गतियों में, ८ द्रव्यकर्मों में, नोकर्म में(पर वस्तुओं में), धर्म-अधर्म आकाश एकेक, लोक प्रमाण असंख्यात काल, आदि द्रव्यों में अपनी आत्मा को छोड़कर अन्य आत्माओं में अपनेपने की खोटी बुद्धि से पागल हो रहे हैं-'यह मैं ही हूँ, मैं इनका कर्ता हूँ, यह मेरे काम हैं, मैं हूँ सो यह ही है, यह है सो मैं हूँ आदि भूत-भविष्य-वर्तमान विकल्पों में पागल होने से अत्यन्त अप्रतिबुद्धि था। तब धर्मी (ज्ञानी) ने कहा, हे भव्य ! नोकर्म, द्रव्यकर्म, भावकर्म से तेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है, तू क्यों व्यर्थ में पागल बना हुआ है। तू तो एक-शुद्ध-दर्शन ज्ञायमयी-सदा अरुपी भगवान आत्मा है। ऐसा सुनकर अपने स्वभाव की ओर दृष्टि दी, तो इसे ऐसा अनुभव हुआ "मैं चैतन्य मात्र ज्योति स्वरूप आत्मा हूँ, यह मेरे स्वसम्वेदन से ही प्रत्यक्ष ज्ञात होता है। मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, दर्शन-ज्ञानमयी हूँ, सदा अरुपी हूँ-यह स्वसम्वेदन अनुभवी ज्ञानी ही जानते हैं, द्रव्यलिंगी को भी इनका पता नहीं है। जो जीव ऐसा अनुभव करता हैं, उसी जीव ने प्रसन्न चित्त से भगवान आत्मा की बात सुनी है। वह नियम से मोक्ष को प्राप्त होता है। इसकी महिमा ज्ञानी ही जानते हैं, अज्ञानी नहीं जानते।

प्र० २—क्या करे, तो अनादिकाल का पागलपना समाप्त हो ?

उ०—मेरी आत्मा को छोड़कर बाकी अनन्त आत्माएँ हैं, अनन्तानन्त पुद्गल हैं, धर्म-अधर्म-आकाश एकेक और लोक प्रमाण असंख्यात् काल द्रव्य हैं, इनसे तो मेरा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध न था, न हैं और ना होगा। पर्याय में जो विकारी शुभाशुभ हैं वह एक समय के हैं। शुभाशुभ भावों में एकत्व बुद्धि संसार है वह एक समय की ही है, मैं स्वयं अनादि अनन्त हूँ ऐसा जाने तों उसी समय पागलपन

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिट जाता है और तुरन्त धर्म की प्राप्ति हो जाती है। फिर जैसे-जैसे अपने स्वभाव में एकाग्रता करता है, क्रमशः परिपूर्णता की प्राप्ति कर स्वयं ज्ञानघनरूप अमृत का पिण्ड बन जाता है।

प्र० ३—समयसार की ७३ वीं गाथा में धर्म की प्राप्ति का क्या उपाय बताया है ?

उ०—मैं एक शुद्ध ममत्वहीन रु ज्ञान दर्शन पूर्ण हूँ।
इसमें रहूँ स्थित लीन इसमें, शीघ्र ये सवक्षय करूँ ॥७३॥

भावार्थ—एक मात्र "मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, ममतारहित हूँ, ज्ञानदर्शन से परिपूर्ण हूँ, ऐसा अभेद स्वभाव की ओर दृष्टि करे, तो तुरन्त संसार का अभाव और धर्म की प्राप्ति होती है। यह ही उपाय क्रोधादि के क्षय का है, अन्य उपाय नहीं है। कर्ताकर्म की ६९-७० गाथा में पहले कहा था कि अभेद अनन्त गुणों का तादात्म्य सिद्ध सम्बन्ध है, उसकी ओर दृष्टि करे तो सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की प्राप्ति होती है। दया-दान-पूजा-यात्रा-महाव्रत-अणुव्रतादि का संयोगसिद्ध सम्बन्ध है। इनसे अपनापना माने तो पर्याय में मिथ्यादर्शन-ज्ञानचारित्र की द्रढ़ता होती है। शुभभाव जो संसार का कारण है उसका अज्ञानी दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी मोक्ष का कारण मानता है। आचार्य भगवान ने गा० ७२-७४ में शुभभावों को अपवित्र, घिनावना, मल-मैल रूप, जड़ स्वभावी, अनित्य, अशरण, अध्रुव, वर्तमान में दुःखदायी और भविष्य में भी दुःखदायी कहा है। ऐसा जाने और मैं "एक-शुद्ध-ममत्वहीन-ज्ञानदर्शनपूर्ण हूँ" ऐसे स्वभाव का आश्रय ले, तो धर्म की प्राप्ति होती है। यह धर्म की प्राप्ति का उपाय है।

प्र० ४—प्रवचनसार गा० १९२ में धर्म की प्राप्ति का क्या उपाय बताया है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—ए रीत दर्शन ज्ञान है, इन्द्रिय-अतीत महार्थ है।
मानू हूँ—आलम्बन रहित शुद्ध जीव निश्चल ध्रुव है ॥१९२॥

(१) (२) ज्ञान-दर्शन से तन्मयी=पर पदार्थों से अतन्मयी हूँ। (३) अतीन्द्रिय महा पदार्थ=इन्द्रियात्मक सब पर पदार्थ हैं। (४) अचल=चलायमान सर्व ज्ञेय पर्यायों से भिन्न हूँ, क्योंकि वह चलरूप हैं। (५) निरालम्ब=ज्ञेय रूप सब पर द्रव्यों से भिन्न हूँ।

भावार्थ—आचार्य भगवान कहते हैं कि मैं आत्मा को "(१) दर्शनस्वरूप (२) ज्ञानस्वरूप. (३) अतीन्द्रिय महापदार्थ, (४) अचल (५) निरालम्ब मानता हूँ-जानता हूँ, इसलिए आत्मा एक है, एक है तो शुद्ध है, शुद्ध है तो ध्रुव है, तो एकमात्र वह ही प्राप्त करने योग्य है। लक्ष्मी, शरीर, संयोगों में सुख-दुःख की कल्पना, शत्रु-मित्रपना यह मूर्खता है। अज्ञानी लक्ष्मी आदि की प्राप्ति में लगा रहता है, यह अनन्त संसार का कारण है। तू स्वयं को भूलकर पागल हो रहा है एक बार अपने भगवान आत्मा को देख तुझे तुरन्त शान्ति की प्राप्ति हो। इसलिए हे भव्य ! एकवार जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा मानकर अपने स्वभाव का आश्रय ले तो जो भगवान ने जाना है वैसा ही तू जानेगा और ऐसा अपूर्व आनन्द प्रगट होवेगा, जिसका वर्णन नहीं हो सकता है।

प्र० ५—आत्मा त्रिकाल शुद्ध है, ऐसा तो हम जानते है फिर हमें शान्ति क्यों नहीं है ?

उ०—बिल्कुल नहीं जानते, क्योंकि अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना आत्मा त्रिकाल शुद्ध है-यह जानना तोते जैसा है। देखो समयसार की छठी गाथा में भगवान अमृतचन्द्राचार्य जीने "वही समस्त अन्य द्रव्यों के भावों से भिन्न रूप से उपासित होता हुआ "शुद्ध" कहलाता है।" ऐसा बताया है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वास्तव में अनुभव होने पर ही मैं संसार में अकेला था और मोक्ष में भो अकेला हूँ, ऐसा पता चलता है। इसलिए पात्र जीवों को ज्ञानी गुरुओं के सत्संग में रहकर, सत्य बात का निर्णय करके, अपना आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति करना चाहिए। आज वर्तमान में मेरे विचार में ज्ञानी गुरु श्रो कानजी स्वामी ही दृष्टि में आते हैं उनके सान्निध्य में रहकर तुरन्त अपना कल्याण करना चाहिए।

प्र० ६—ज्ञानी के (धर्मी के) उपदेश से सावधान हुआ-ऐसा आपने कहा, क्या द्रव्यलिंगी मुनि के उपदेश से धर्म की प्राप्ति नहीं होती है?

उ०—वास्तव में धर्म प्राप्ति मात्र आत्मा के आश्रय से ही होती है। धर्मी-अधर्मी के आश्रय से कभी नहीं। परन्तु जैसे किसी ने हीरे जवाहारात का कार्य सीखना है तो वह जौहरी के पास से सीखता है और काम सीख लेने पर इनकी कृपा से सीखा, ऐसा उपचार से कहा जाता है, उसी प्रकार जिसे धर्म की प्राप्ति करनी हो, जिसको धर्म की प्राप्ति हुई हो, उसी से सीखना चाहिए। जब स्वयं अनुभव हो जाता है तब उपचार से इनसे हुआ ऐसा बोलने में आता है। द्रव्यलिंगी साधु कभी भी धर्म में निमित्त नहीं हो सकता है प्रवचनसार गा० २७१ में द्रव्यलिंगी मुनि को संसार तत्त्व कहा है, वह धर्म में निमित्त बने ऐसा कभी नही होता है। धर्म की प्राप्ति में निमित्त ज्ञानी गुरु ही होता हैं, अज्ञानी नहीं हो सकता।

प्र० ७—जब धर्म की प्राप्ति आत्मा के आश्रय से ही होती है, तब धर्मी गुरु निमित्त होता है ऐसा क्यों कहा?

उ०—वास्तव में कार्य उस समय की योग्यता से ही होता है, उस समय वहाँ कौन निमित्त है ऐसा ज्ञान कराया है, क्योंकि जहाँ उपादान होता है वहाँ निमित्त अवश्य ही होता है- ऐसा वस्तु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

स्वभाव है। निमित्त जितने भी है, वह सब धर्मद्रव्य के समान उदासीन ही हैं।

प्र० ८—जब उपादान में कार्य होता है तब निमित्त होता ही है, ऐसा कहाँ लिखा है ?

उ०—(१) प्रवचनसार गा० ९५ में "जो उचित बहिरंग साधनों की सन्निधि के सद्भाव में अनेक अवस्थाएँ करता है।

यहाँ तात्पर्य इतना ही है जहाँ कार्य हो, वहाँ उचित निमित्त होता ही है, न हो ऐसा नहीं होता है।

(२) "उपादान निज गुण जहाँ, तहाँ निमित्त पर होय।
भेद ज्ञान प्रमाण विधि, बिरला बूझै कोय॥"

(३) जहाँ सच्चा कारण रूप उद्यम करे, वहाँ अन्य निमित्त कारण होते ही है-ऐसा वस्तु स्वभाव है।

प्र० ९—आत्मा का अनुभव करने के लिए किस-किस पक्ष से भेद विज्ञान करें, जरा खोलकर समझाइये ?

उ०—नौ प्रकार के पक्ष से भेद विज्ञान हुए बिना आत्मा की प्राप्ति नहीं हो सकती हैं। वह इस प्रकार हैं :

(१) अत्यन्त भिन्न पर द्रव्य का पक्ष (२) आँख नाक आदि औदारिक शरीर का पक्ष (३) तैजसशरीर का पक्ष (४) कार्माण शरीर का पक्ष (५) शुभाशुभविकारी भावों का पक्ष (६) अपूर्ण-पूर्णशुद्ध पर्याय का पक्ष (७) भेद कर्म का पक्ष (८) अभेद कर्म का पक्ष (९) भेद-अभेद कर्म का पक्ष।

प्र० १०—अत्यन्त भिन्न पर द्रव्यों के पक्ष से भेद विज्ञान किस प्रकार करना चाहिए और सच्चा भेद ज्ञान कब है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—अपनी आत्मा के अलावा अनन्त आत्माएँ जिसमें २४ तीर्थंकर, २० विद्यमान तीर्थंकर, स्त्री-पुत्र, भाई-बहन, धन-मकान, सोना-चाँदी आदि पुद्गल, धर्म-अधर्म आकाश एकेक और लोक प्रमाण असंख्यात काल द्रव्य हैं, इन से किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है-ऐसा जानने वाले जीव को (१) भगवान मेरा भला कर दे, (२) में किसी का भला करदूं, (३) मैं रोटी खाता-पीता हूँ (४) मैं बिस्तरा बिछाता-उठाता हूँ, (५) बिजली का पंखा हो, तो आराम रहे, (६) गर्मियों में ठंडा पानी, सर्दियों में गरम पानी मिले, तो ठीक (७) मेरा जेवर है-मकान है-दुकान है, (८) मैं कपड़े पहनता हूँ-उतारता हूँ (९) मेरा लड़का-लड़की और भाई-बहिन है, (१०) भगवान की पूजा करूँ, तो वह मेरा उद्धार कर दे, (११) शास्त्र से, गुरू से, दिव्य-ध्वनि से ज्ञान होवे, (१२) सोने के लिए गद्देदार पलंग हो आदि प्रकार के प्रश्न उपस्थित नहीं होते हैं, क्योंकि यह अत्यन्त भिन्न पर पदार्थ हैं। इन से अपना सम्बन्ध माने और कहे यह तो अलग हैं—यह मायाचारी हैं। इसलिए हे आत्मा ! तू चिदानन्द भगवान है, ऐसा जानकर अपने स्वभाव का आश्रय ले, तो अत्यन्त भिन्न पर पदार्थ भिन्न हैं ऐसा अनुभव में आवे। अपना अनुभव हुवे बिना शास्त्र पाठी भी कहेगा, कि यह सब पृथक है, परन्तु वह तोते के समान है। इसलिए हे आत्मा ! एकबार तू अपने भगवान का आश्रय ले तभी अत्यन्त भिन्न पर पदार्थ है उनसे मेरा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है तब सच्चा भेद ज्ञान कहलाये।

प्र० ११—आँख-नाक आदि औदारिक शरीर के पक्ष से भेद विज्ञान होना कब कहलाये और औदारिक शरीर के पक्ष वाले भेद विज्ञानी को कैसे-कैसे प्रश्न उपस्थित नहीं होते ?

उ०—(१) मैं काला-गोरा हूँ (२) मुझे बुखार-खाँसी हो गया, (३) मैं लम्बा-मोटा हूँ (४) मेरी शक्ल सुन्दर है, (५) मेरा बाल-नाक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कैसी सुन्दर है (६) मैं बलिष्ट हूँ, मैं कमजोर हूं, (७) मेरी आँख-कान-नाक मुँह है, (८) मैं आँख से देखता हूँ, कान से सुनता हूँ, जीभ से चखता हूँ, नाक से सूंघता हूं (९) मेरा शरीर ठीक रहे, तो मैं ठीक (१०) शरीर खराब रहे तो मैं खराब, (११) मैं निर्बल (१२) मेरे हाथ की पैर की उँगलियाँ हैं आदि प्रश्न उपस्थित नहीं होते हैं। अपनी आत्मा का अनुभव हुये बिना इनसे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है ऐसा कहे, वह झूठा है। क्यों कि जैसे मतवाला माता को माता कहे तो भी वह झूठा है। अपनी आत्मा का अनुभव होने पर ऊपर लिखित सब प्रकार के प्रश्न उपस्थित नहीं होते हैं किन्तु वह तो मात्र व्यवहार से उनका ज्ञाता बन जाता है। इसलिए हे आत्मा ! तू एक बार शरीर रहित अपने त्रिकाली भगवान की ओर दृष्टि कर, तो तुझे पता चले कि इस शरीर से मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है क्योंकि इसका कर्ता तो आहारवर्गणा है।

प्र० १२—तैंजसशरीर के पक्ष से भेदविज्ञान कब कहलायेगा जावेगा ?

उ०—औदारिक आदि शरीरों को कान्ति देता है आदि प्रश्न उपस्थित नहीं होते हैं। अपनी आत्मा का अनुभव होनेपर तैजसशरीर तैजसवर्गणा का कार्य है, उसमें एक-एक परमाणु अपने अनन्त गुण-पर्याय सहित विराज रहा है ऐसा ज्ञानमें आवे, तो ज्ञानी तैजसशरीर का व्यवहारसे ज्ञाता है। इसलिए हे आत्मा ! अपने स्वभावका आश्रय ले, तो तैजसशरीर से भेदविज्ञान कहलावे।

प्र० १३—कार्माणशरीर के पक्ष से भेद विज्ञान कब कहलायेगा जावेगा ?

उ०—अनादि काल से जबतक शास्त्र नहीं पढ़ा था मुझे फलाना परद्रव्य दुःख-सुख देता है परन्तु गुरुगम बिना अन्धी दृष्टिसे शास्त्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पढ़ा तो (१) कर्म चक्कर कटाता है, (२) दर्शनमोहनीय सम्यग्दर्शन नहीं होने देता, (३) देखो, कर्मके उदयसे ११ वें गुणस्थानसे गिर जाता है, (४) ज्ञानावरणीय ज्ञानको रोकता है, (५) केवल ज्ञानावरणीय के अभाव से केवलज्ञान होता है, (६) ज्ञानावरणीय के क्षयोपशमसे ज्ञानका उघाड़ होता है, (७) अन्तरायकर्म पुरुषार्थ नहीं करने देता है, (८) अरहंत भगवानको चार अघातीकर्म चिपटे हुए हैं, (९) कर्म हटे, तो भगवानको मोक्ष हो, (१०) वेदनीयकर्म जीवको साता-असाता करता है (११) आयुकर्म जीवको आयु देता है (१२) सब कुछ कर्म ही करता है-आदि खोटी बुद्धि करता रहता है; इसलिए एकवार अपनी आत्माका आश्रय ले, तो इसे पता लगे कि कर्म जड़ है वह जीवको परिभ्रमण नहीं कराता है, मात्र जीवको अपनी खोटी बुद्धि ही परिभ्रमण कराती है। अपने आत्मा का अनुभव होने पर कर्म का व्यवहारसे ज्ञाता बन जाता है। तब कार्माण शरीर से भेद विज्ञान कहा जावेगा।

प्र० १४—शुभाशुभ विकारी भावों के पक्ष से भेद विज्ञान कब कहलायेगा जावेगा ?

उ०—हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रहका भाव पाप भाव है इसको तो सब बुराही जानते हैं। परन्तु दया-दान-पूजा-अणुव्रत-महाव्रत दर्शन-पूजा आदि भाव पुण्यभाव हैं। वास्तवमें पुण्य-पाप में जो अन्तर डालता है, वह घोर अपार संसार में भ्रमण करता है। दिगम्बर जैनका द्रव्यलिंगी साधु नाम धराकर शुक्ललेश्या भी करे, तो भी मिथ्यात्वका महानपाप उसके साथ होता है। श्री परमात्मप्रकाश अध्यायप्रथम गाथा ६८ में अज्ञानीके शुभभावको पापभाव कहा है और ज्ञानीके शुभभावको पुण्यबंधका कारण कहा है। अज्ञानी को शुभमें एकत्वबुद्धि है, क्योंकि शुभभाव और आत्माको एक मानना यह मिथ्यात्वका बीज है, अनन्त संसार है-ऐसा पुरुषार्थसिद्धि-उपाय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गा० १४ में बताया है कि ज्ञानीको जो शुभभाव होता हैं, वह भूमिकानुसार होता है, ज्ञानी उसे हेय मानता है। ज्ञानी का शुभभाव भी अनिष्ट है, दुष्ट है, मोक्ष का घातक है तब अज्ञानीके शुभभावकी तो बात ही क्या ? जबतक जीव को शुभभाव कुछ तो मददगार है ऐसी बुद्धि रहेगी तबतक धर्मकी प्राप्ति नहीं होगी। शुभाशुभभाव रहित अपने आत्माका आश्रय लेकर शुद्धदशा प्रगट करे, तो शुभाशुभ मेरा स्वरूप नहीं है ऐसा अनुभवमें आवे। जो शुभभावोंसे भला होना मानता है, वह दिगम्बर धर्म की आड़में श्वेताम्बरमतकी पुष्टि करता है, उसे कभी धर्मकी प्राप्ति नहीं होगी। अतः मेरा आत्मा अलग है शुभाशुभ अलग है। जैसे पानीमें तेल प्रवेश नहीं करता; उसीप्रकार आत्मामें शुभाशुभभावों का प्रवेश नहीं है; ऐसा जानकर अपनी ओर सन्मुख होवे, तो शुभाशुभभावों से भेद विज्ञान हुआ कहलाया जावेगा।

प्र० १५—अपूर्ण-पूर्ण शुद्धपर्याय के पक्ष से भेदविज्ञान क्या है ?

उत्तर—चक्षुदर्शन, अचक्षुदर्शन, अवधिदर्शन, देशसंयम, मतिज्ञान, श्रुतज्ञान, अवधिज्ञान, आदि अपूर्ण पर्याय हैं और क्षायिकसम्यक्त्व, क्षायिकचारित्र, केवलदर्शन, केवलज्ञान, क्षायिकभोग, क्षायिकउपभोग आदि पूर्णशुद्ध पर्यायें हैं। पर्याय की स्थिति एक समय की है। उसका आश्रय लिया ही नहीं जासकता है। शुद्ध पर्यायों के आश्रय से धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती है,अपने त्रिकाली द्रव्य के आश्रयसे ही धर्मकी शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है, अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्याय के आश्रयसे नहीं। इसलिए हे भगवान आत्मा। तू अपना आश्रय ले तो अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्यायों के पक्ष से भेदविज्ञान हो।

प्र० १६—भेद कर्म के पक्ष से भेद विज्ञान क्या है ?

उ०—शास्त्र पढ़ लिया, आत्मा एकनय से कर्ता है, एकनय से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कर्ता नहीं हैं, इस प्रकार चैतन्य में जो दो नयों के पक्षपात है यह सब भेद कर्म का पक्ष है। समयासार गा० १४२ में २० कलश दिये हैं, उन पक्षों में जो पड़ा रहेगा, उसका भला नहीं होगा। इसलिए कलश ६९ में बताया है कि "जो नय के पक्षपात को छोड़कर अपने स्वरूप में गुप्त होकर निवास करते है, वे ही जिनका चित्त विकल्प जाल से रहित शान्त हो गया है ऐसे होते हुए साक्षात् अमृतपान करते हैं।" इसलिए भेद कर्म का पक्ष छोड़कर अपने स्वभाव का आश्रय ले, तो कल्याण हो-तभी भेदकर्म से भेद विज्ञान कहलाया जावेगा।

प्र० १७—अभेद कर्म के पक्ष से भेद विज्ञान कब कहा जावेगा ?

उ०—भेद कम का पक्ष छोड़कर मात्र अभेद का पक्ष करे कि मैं शुद्ध हूँ, ज्ञायक हूं ऐसा मात्र कहे और उससे कल्याण होगा ऐसा माने किन्तु आत्मानुभव ना करे यह भी अनर्थ है। इसलिए अभेद पक्ष का ममत्व छोड़कर अपनी आत्मा का आश्रय ले, तो अभेद कर्म के पक्ष का भेद विज्ञान कहलायेगा।

प्र० १८—भेद-अभेद कर्म के पक्ष से भेद विज्ञान कैसे हो ?

उ०—कोई कहे हम तो भेद-अभेद दोनों को मानते हैं। वह भी संसार के पात्र हैं, पक्ष चाहे जैसा भी हो वह संसार का ही कारण है। भेद-अभेद रहित अपना त्रिकाली भगवान है उसका आश्रय ले, तो भेद-अभेद के पक्ष से भेद विज्ञान कहलायेगा।

वास्तव में अपनी आत्मा का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हो, तो तब नौ प्रकार के पक्ष से भेद विज्ञान हुआ है। अपनी आत्मा का अनुभव ना हो, तो एक प्रकार का भी भेद विज्ञान नहीं हुआ है। पहले इसका भेद विज्ञान, फिर दूसरे प्रकार का भेद विज्ञान ऐसा नहीं। कथन में क्रम पड़ता है। आत्मा का आश्रय लेते ही नौ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार के पक्ष का भेद विज्ञान हो जाता है, द्रव्यलिंगी मुनि को एक प्रकार का भी भेद विज्ञान नहीं है।

प्र० १९—क्या द्रव्यलिंगी मुनि को ११ अंग ९ पूर्व का ज्ञान होने पर भी भेद विज्ञान नहीं है ?

उ०—बिल्कुल नहीं है, जिनेन्द्र भगवान के कहे अनुसार व्रत पालता हुआ भी अभव्य मिथ्यादृष्टि कहा है। ११ अंग ९ पूर्व का पाठी अज्ञानी जैसे साँप को दूध पिलाने से विष बढ़ता है; उसी प्रकार अज्ञानी ११ अंग ९ पूर्व के पाठी का हाल है। वह भेद विज्ञान की बातें करे, मैं आत्मा हूँ परन्तु पर से मेरा किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, ऐसा दृष्टि में नहीं आता है। अज्ञानी का शास्त्र के अनुसार कथन करने पर भी उसे एक प्रकार का भी भेद विज्ञान नहीं है। जैसे नशेबाज माता को माता कहे, तो वह चतुर नहीं है; उसी प्रकार शास्त्रों के अनुसार बात करने वाला भी अपनी आत्मा का अनुभव हुए बिना पागल है-अनन्त संसारी है। तत्त्वार्थ सूत्र में "सत्-असत् के ज्ञान बिना उन्मत्तवत् कहा है"। इसलिए मैं एक, शुद्ध, अरूपी, ज्ञानघन आत्मा हूँ ऐसा जानकर अपना आश्रय ले तो धर्म की प्राप्ति होकर, क्रमशः वृद्धि होकर मोक्ष लक्ष्मी का नाथ बन जावे।

तेरहवां पाठ

निश्चय-व्यवहार समझने की कुंजी

प्र० १—निश्चय-व्यवहार किसे कहते हैं ?

उ०—(१) स्वाश्रित निश्चय, पराश्रित व्यवहार, (२) व्याप्य-व्यापक का सद्भाव निश्चय, व्याप्य-व्यापक का अभाव व्यवहार,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) अभेद सो निश्चय, भेद सो व्यवहार, (४) अनुपचार सो निश्चय, उपचार सो व्यवहार, (५) भूतार्थ सो निश्चय, अभूतार्थ सो व्यवहार, (६) मुख्य सो निश्चय, गौण सो व्यवहार, इन सब परिभाषाओं का अर्थ एक ही है।

प्र० २—स्वाश्रित निश्चय और पराश्रित व्यवहार को किस प्रकार जानना चाहिए ?

उ०—(१) जीव का विकारी भाव स्वाश्रित होने से निश्चय है, इसकी अपेक्षा कर्म आदि पर द्रव्य पराश्रित होने से व्यवहार है।

(२) निर्मल (अविकारी) परिणति स्वाश्रित होने से निश्चय है, इसकी अपेक्षा जीव का विकारीभाव, पर निमित्त की अपेक्षा रखता है, इसलिए पराश्रित होने से व्यवहार है।

(३) अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव स्वाश्रित होने से निश्चय है इसकी अपेक्षा निर्मल (अविकारी) परिणति त्रिकाली न होने से व्यवहार है।

दूसरी तरह से

(१) जीव का विकारी भाव व्याप्य-व्यापक भाव का सद्भाव होने से निश्चय है, कर्मादि पर द्रव्य-व्याप्य व्यापक भाव का अभाव होने से व्यवहार है।

(२) निर्मल परिणति व्याप्य-व्यापक भाव का सद्भाव होने से निश्चय है, जीव का विकारी भाव व्याप्य-व्यापक भाव का अभाव होने से व्यवहार है।

(३) अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव व्याप्य-व्यापक भाव का सद्भाव होने से निश्चय है, निर्मल परिणति व्याप्य-व्यापक भाव का अभाव होने से व्यवहार है

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसी प्रकार अभेद-भेद, अनुपचार-उपचार, भूतार्थ-अभूतार्थ और मुख्य-गौण लगाना चाहिए। अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव के सामने सब व्यवहार है।

प्र० ३—तीनों प्रकार के निश्चय-व्यवहार को समझने से क्या लाभ है?

उ०—शास्त्रों में चार अनुयोग रूप कथन है। चारों अनुयोगों में जहाँ-जैसा, जिस अपेक्षा कथन किया है वैसा जानकर अपने में वीतरागता प्रगट करना, चारों अनुयोगों का तात्पर्य है। सर्वज्ञ की वाणी का तात्पर्य एक मात्र वीतरागता ही है।

प्र० ४—विकारी पर्याय को स्वाश्रित निश्चय क्यों कहा है?

उ०—जो जीव रागादि को पर का मानकर, स्वच्छन्द होकर निरुद्यमी होता है, उसे क्षणिक उपादान की मुख्यता से रागादि आत्मा के हैं-ऐसा ज्ञान कराया है। रागादि मेरी पर्याय में मेरे अपराध से है, ऐसा जानकर स्वभाव-का आश्रय लेकर अभाव करे इसलिए विकारी पर्याय को स्वाश्रित निश्चय कहा है। यह अशुद्ध निश्चयनय से कहा हैं।

प्र० ५—निर्मल पर्याय को निश्चय क्यों कहा है?

उ०—प्रकट करने योग्य है अतः निश्चय कहा है, आश्रय करने योग्य नहीं।

प्र० ६—अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक को निश्चय क्यों कहा है?

उ०—अखण्ड त्रिकाली ज्ञायक आश्रय करने योग्य है अतः निश्चय कहा है, क्योंकि इसी-के आश्रय से धर्म की प्राप्ति, वृद्धि, पूर्णता, होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ७—(१) विकारी भाव, (२) शुद्ध निर्मलदशा, और (३) अखण्ड त्रिकाली, तीनों को निश्चय कहा, इससे अज्ञानी को भ्रमणा होती है ?

उ०—वास्तव में इससे तो अज्ञानी की भ्रमणा का अभाव होता है, क्योंकि जहाँ शास्त्रों में (१) विकारी भाव को निश्चय कहा है, वहाँ यह जानना कि आचार्य भगवान दोष का ज्ञान कराना चाहते हैं और जो जीव ऐसा मानता है कि रागादिक कर्म ही कराता है उनकी ऐसी बुद्धि हटाने के लिए विकारी भाव को निश्चय कहा हैं। (२) शुद्ध-निर्मल पर्याय प्रगट करने योग्य है, शुभ भाव नहीं, इस अपेक्षा निश्चय कहा है। (३) त्रिकाली अखण्ड ही एकमात्र आश्रय करने योग्य हैं, तू उसका आश्रय ले, तो तेरा भला होगा-इसलिए निश्चय कहा है।

उ० ८—रागादि को परभाव क्यों कहा है ?

उ०—रागादि पर के आश्रय से होता है इसलिए रागादि को परभाव कहा है।

प्र० ९—निश्चय-व्यवहार के विषय में क्या ध्यान रखना चाहिए ?

उ०—(१) निश्चयनय से जो निरूपण किया हो उसे सत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान अंगीकार करना और व्यवहारनय से जो निरूपण हो उसे असत्यार्थ मानकर उसका श्रद्धान छोड़ना क्योंकि जिनेन्द्र भगवान ने सम्पूर्ण व्यवहार का त्याग कराया है।

प्र० १०—व्यवहार के श्रद्धान से मिथ्यात्व क्यों है ?

उ०—व्यवहारनय, स्वद्रव्य-परद्रव्य को, स्वद्रव्य के भावों और परद्रव्य के भावों को तथा कारण-कार्यादिक को किसी को किसी में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मिलाकर निरूपण करता है, सो ऐसे हीं श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिए उसका त्याग करना।

प्र० ११—निश्चय के श्रद्धान से सम्यक्त्व क्यों है ?

उ०—निश्चयनय स्वद्रव्य-परद्रव्य को, स्वद्रव्य के भावों और परद्रव्य के भावों को तथा कारण-कार्यादिक को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण नहीं करता, सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिए उसका श्रद्धान करना।

प्र० १२—आप कहते हैं व्यवहारनय का त्याग करना और निश्चयनय का श्रद्धान करना, परन्तु जिनमार्ग में दोनों नयों को ग्रहण करना कहा है, सो कैसे ?

उ०—जिनमार्ग में कहीं तो निश्चयनय की मुख्यता लिये व्याख्यान है, उसे तो 'सत्यार्थ ऐसे ही है'—ऐसा जानना। तथा कहीं व्यवहारनय की मुख्यता लिए व्याख्यान है, उसे 'ऐसे है नहीं, निमित्तादि की अपेक्षा उपचार किया है'–ऐसा जानना इस प्रकार जानने का नाम ही दोनों नयों का ग्रहण है।

प्र० १३—कुछ मनीषी ऐसा कहते हैं "ऐसे भी हैं, और ऐसे भी हैं" इसलिए दोनों का ग्रहण करना चाहिए, क्या वह गलत है ?

उ०—बिल्कुल गलत है, उन्हें जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा का पता नहीं है। दोनों नयों के व्याख्यान को समान सत्यार्थ जानकर ऐसे भी हैं, ऐसे भी है—इस प्रकार भ्रमरूप प्रवर्तन से तो दोनों नयों का ग्रहण करना नहीं कहा है।

प्र० १४—व्यवहारनय असत्यार्थ है, तो जिन मार्ग में उसका उपदेश क्यों दिया ? एकमात्र निश्चयनय का ही निरूपण करना चाहिए था ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—ऐसा ही तर्क समयसार में किया हैं; उत्तर दिया है कि जैसे किसी अनार्यम्लेच्छ को म्लेच्छ भाषा बिना अर्थ ग्रहण कराने में कोई समर्थ नहीं है; उसी प्रकार व्यवहार के बिना परमार्थ का उपदेश अशक्य है-इसलिए व्यवहार का उपदेश है। इस प्रकार निश्चय को अंगीकार कराने के लिए व्यवहार के द्वारा उपदेश देते हैं परन्तु व्यवहारनय है वह अंगीकार करने योग्य नहीं है।

प्र० १५—भूतार्थ-अभूतार्थ क्या है ?

उ०—व्यवहारोऽभूयत्थो भूयत्थो देसिदो दु सुद्धणओ।
भूयत्थमस्सिदो खलु, सम्माइट्ठी हवइ जीवो।

॥समयसार गा० ११॥

व्यवहारनय अभूतार्थ दर्शित, शुद्धनय भूतार्थ है।
भूतार्थ आश्रित आत्मा, सुद्रष्टि निश्चय होय हैं ॥११॥

अर्थ—व्यवहारनय अभूतार्थ है और शुद्धनय भूतार्थ हैं, ऐसा ऋषीश्वरों ने बताया है। जो जीव भूतार्थ का आश्रय लेता है, वह जीव वास्तव में सम्यग्द्रष्टि है।

प्र० १६—ऋषीश्वरों ने क्या बताया है ?

उ०—व्यवहारनय सब ही झूठा है, इसलिए वह अविद्यमान, असत्य; अभूत अर्थ को प्रगट करता है; शुद्धनय एक ही भूतार्थ होने से विद्यमान, सत्यभूत, अर्थ को प्रगट करता हैं।

प्र० १७—क्या व्यवहारनय है ही नहीं ?

उ०—व्यवहारनय है, उसका विषय भी है, परन्तु व्यवहारनय अनुसरण करने योग्य नही है।

प्र० १८—व्यवहारनय अनुसरण करने योग्य क्यों नहीं है और निश्चय अनुसरण करने योग्य क्यों है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—(१) व्यवहारनय स्वद्रव्य और परद्रव्य को, किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है। सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिए उसका त्याग करना चाहिए। निश्चयनय स्वद्रव्य और परद्रव्य को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण नहीं करता। सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है,इसलिये उसका ग्रहण करना चाहिए।

(२) व्यवहारनय स्वद्रव्य के भावों को और परद्रव्य के भावों को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है। सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है इसलिए उसका त्याग करना चाहिए।" निश्चयनय स्वद्रव्य के भावों को और परद्रव्यों के भावों को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण नहीं करता। सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका ग्रहण करना चाहिए।

(३) व्यवहारनय कारण-कार्यादिक को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण करता है। सो ऐसे ही श्रद्धान से मिथ्यात्व होता है, इसलिये उसका त्याग करना चाहिए। निश्चयनय कारण-कार्यादिक को किसी को किसी में मिलाकर निरूपण नहीं करता हैं। सो ऐसे ही श्रद्धान से सम्यक्त्व होता है, इसलिये उसका ग्रहण करना चाहिए। अतः निश्चयनय का निश्चय रूप और व्यवहारनय का व्यवहार रूप श्रद्धान करने योग्य है।

प्र० १८—एक द्रव्य के भाव को उस स्वरूप ही निरूपण करना सो निश्चयनय है, उपचार से उस द्रव्य के भाव को अन्य द्रव्य के भाव स्वरूप निरूपण करना, सो व्यवहार है इस बात को दृष्टान्त देकर समझाइए ?

उ०—जैसे मिट्टी के घड़े को मिट्टी का घड़ा निरूपित किया जाय, सो निश्चय और घृत संयोग के कारण उपचार से उसी को घृत का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

घड़ा कहा जाय, सो व्यवहार है। इसी प्रकार १८ दृष्टान्त देकर समझाया जाता है।

(१) शुभभावों को आस्रव-बंध कहना यह निश्चय है, और शुभभावों को भूमिकानुसार मोक्षमार्ग कहना यह व्यवहार है।

(२) जीव को जीव कहना निश्चय है, और जीव को इन्द्रिय वाला कहना व्यवहार है।

(३) देव-गुरु-शास्त्र की श्रद्धा को बंध मार्ग कहना निश्चय है, और देव-गुरु शास्त्र की श्रद्धा को सम्यग्दर्शन कहना यह व्यवहार है।

(४) अणुव्रतादि के भाव को बंध रूप कहना निश्चय है, और ज्ञानी के अणुव्रतादि के भाव को श्रावकपना कहना यह व्यवहार है।

(५) महाव्रतादि के राग को बंध रूप कहना निश्चय है, और भावलिंगी मुनि के महाव्रतादि को मुनिपना कहना यह व्यवहार है।

(६) लोटे को पीतल का कहना निश्चय है, और लोटे को पानी का कहना यह व्यवहार है।

(७) रोटी आटे से बनी निश्चय है, और रोटी बाई ने बनायी यह व्यवहार कथन है।

(८) केवलज्ञान-ज्ञानगुण में से हुआ निश्चय हैं और केवलज्ञान ज्ञानावरणीय के अभाव से हुआ यह व्यवहार कथन हैं।

(९) वीर्य का क्षायिकपना वीर्य गुण में से हुआ निश्चय है, और वीर्य का क्षायिकपना अन्तराय कर्म के क्षय से हुआ यह व्यवहार कथन है।

(१०) ज्ञान का क्षयोपशम ज्ञान से हुआ यह निश्चय है, और ज्ञान का क्षयोपशम ज्ञानावरणीय के क्षयोपशम से हुआ यह व्यवहार कथन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(११) कपड़े अपने से धुले यह निश्चय है, और कपड़े बाई ने धोये यह व्यवहार कथन हैं।

(१२) जीव अपनी क्रियावती शक्ति से चला यह निश्चय है, और जीव धर्मद्रव्य से चला यह व्यवहार कथन है।

(१३) चश्मा, अपनी योग्यता से उठा यह निश्चय है और चश्मा को मैंने उठाया यह व्यवहार कथन है।

(१४) अभेद आत्मा को आत्मा कहना निश्चय है, और ज्ञान-दर्शन चारित्र को आत्मा कहना व्यवहार है।

(१५) श्रद्धागुण की शुद्ध पर्याय प्रगटी उसे सम्यग्दर्शन कहना निश्चय है और देव-गुरु-शास्त्र के राग को सम्यग्दर्शन कहना यह व्यवहार कथन है।

(१६) देशचारित्र को श्रावकपना कहना निश्चय है, और १२ अणुव्रतादिक को श्रावकपना कहना यह व्यवहार कथन है।

(१७) तीन चौकड़ी के अभाव रूप शुद्धि को मुनिपना कहना निश्चय है और २८ मूलगुण के राग को मुनिपना कहना व्यवहार कथन है।

(१८) राग को आत्मा का कहना निश्चय है, और राग को कर्म का कहना यह व्यवहार कथन है। ऐसे ही सब जगह जान लेना चाहिए। और व्यवहार का अर्थ ऐसा है नहीं, यह निमित्तादि की अपेक्षा कथन है।

प्र० २०—ग्यारहवीं गाथा में किस व्यवहार को अभूतार्थ कहा है और वहाँ किस व्यवहार की बात ही नहीं है?

उ०—ग्यारहवीं गाथा में अध्यात्म का जो चार प्रकार का व्यवहार है, जो उसे अभूतार्थ कहा है। आगम के व्यवहार की बात ११ वीं गाथा में नहीं है। जब अध्यात्म व्यवहार का निषेध है, तब आगम के व्यवहार की कौन बात है? अर्थात् कुछ भी नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० २१—चार प्रकार के आगम का व्यवहार कौन-कौन सा है ?

उ०—(१) उपचरित सद्‌भूत व्यवहारनयः—जो उपाधि सहित गुण-गुणी को भेद रूप से ग्रहण करे। जैसे-संसारी जीव के मतिज्ञानादि पर्याय और नर-नारकादि पर्यायें।

(२) अनुपचरित सद्‌भूत व्यवहारनयः—जो निरुपाधिक गुण और गुणी को भेद रूप ग्रहण करे। जैसे केवलज्ञान, केवलदर्शन।

(३) उपचरित असद्‌भूत व्यवहारनयः—अत्यन्त भिन्न पदार्थों को जो अभेद रूप से ग्रहण करे। जैसे-जीव के महल, घोड़ा, वस्त्रादि कहना।

(४) अनुपचरित असद्‌भूत व्यवहारनयः—जो नय संयोग सम्बन्ध से युक्त दो पदार्थों के सम्बन्ध को विषय बनाये। जैसे जीव का शरीर, जीव का कर्म आदि कथन। ११वीं गाथा में इसे आगम के व्यवहार की तो बात ही नहीं है।

प्र० २२—चार प्रकार का आगम का व्यवहार कब और किसको लागू पड़ता है ?

उ०—एकमात्र अपना अनुभव-ज्ञान होने पर साधक जीवों को ही लागू पड़ता है। मिथ्यादृष्टि और केवली को लागू नहीं पड़ता है।

प्र० २३—चार प्रकार के अध्यात्म का व्यवहार कौन-कौन सा है ?

उ०—(१) उपचरित सद्‌भूत व्यवहारनयः—"ज्ञान पर को जानता है", अथवा ज्ञान में राग ज्ञात होने से "राग का ज्ञान है" ऐसा कहना। अथवा ज्ञाता स्वभाव के भानपूर्वक ज्ञानी "विकार को भी जानता है" ऐसा कहना। (२) अनुपचरित सद्‌भूत व्यवहार नय :—ज्ञान और आत्मा इत्यादि गुण-गुणी का भेद करना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) उपचरित असद्भूत व्यवहारनयः—साधक ऐसा जानता है कि मेरी पर्याय में विकार होता है। उसमें जो व्यक्त राग-बुद्धिपूर्वक राग प्रगट ख्याल में लिया जा सकता है ऐसे राग को आत्मा का कहना। (४) अनुपचरित असदभूत व्यवहारनयः—जिस समय बुद्धि पूर्वक राग है उस समय अपने ख्याल में न आ सके, ऐसा अबुद्धिपूर्वक राग भी है उसे जानना।

प्र० २४—चार प्रकार का अध्यात्म का व्यवहार कब और किसको लागू पड़ता है ?

उ०—एकमात्र साधक जीवों को ही लागू पड़ता है। मिथ्या दृष्टि और केवली को लागू नहीं पड़ता हैं।

प्र० २५—चार प्रकार के अध्यात्म के व्यवहार को भी झूठा क्यों कहा है ?

उ०—भेद दृष्टि में निर्विकल्प दशा नहीं होती और सरागी को विकल्प बना रहता है; इसलिए जहाँ तक रागादिक दूर न हो वहाँ तक भेद को गौण करके, अभेद रूप निर्विकल्प अनुभव कराया गया है। इस अपेक्षा अध्यात्म के व्यवहार को झूठा कहा हैं।

[समयसार गा० ७ के भावार्थ में से]

प्र० २६—क्या व्यवहार सर्वथा असत्यार्थ है ?

उ०—व्यवहार को असत्यार्थ कहा था, वहाँ ऐसा नहीं समझना चाहिए कि वह सर्वथा असत्यार्थ है किन्तु कथंचित् असत्यार्थ जानना चाहिए, क्योंकि जब एक द्रव्य को भिन्न, स्वपर्यायों से अभेद रूप, उसके असाधारण गुणमात्र को प्रधान करके कहा जाये तब परस्पर द्रव्यों का निमित्त-नैमित्तिक भाव तथा निमित्त से होने वाली पर्यायें वे सब गौण हो जाते हैं। अभेद द्रव्य की दृष्टि में वे प्रतिभासित नही होते, इसलिए वे सब उस द्रव्य में नहीं है-ऐसा कथंचित् निषेध

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

किया जाता है। यदि उन भावों को उस द्रव्य में कहा जावे, तो व्यवहारनय से कहा जा सकता है। [समयसार गा० ११ में से]

प्र० २७—किस दृष्टि से व्यवहारनय सत्यार्थ है ?

उ०—यदि निमित्त-नैमित्तिक भाव की दृष्टि से देखा जावे, तो व्यवहारनय कथंचित् सत्यार्थ भी कहा जा सकता है, यदि सर्वथा असत्यार्थ ही कहा जावे तो सर्व व्यवहार का लोप हो जावेगा और व्यवहार का लोप होने से परमार्थ का भी लोप हो जावेगा। इसलिए जिनदेव का स्याद्वाद रूप उपदेश समझने से ही सम्यक्ज्ञान है। सर्वथा एकान्त मिथ्यात्व है।

[समयसार गा० ५८ से ६० के भावार्थ में से]

प्र० २८—व्यवहारनय के त्याग का उपदेश क्यों दिया ?

उ०—निश्चयनय को प्रधान कहकर व्यवहारनय के ही त्याग का उपदेश किया है, क्योंकि समयसार गा० २७२ में कहा है कि निश्चय-नय के आश्रय से वर्तते है, वे ही कर्मों से मुक्त होते है और जो एकान्त व्यवहार के ही आश्रय से वर्तते हैं, वे कभी कर्मों से नहीं छूटते। इसलिए व्यवहारनय है, उसका विषय भी है किन्तु उसके आश्रय से कभी धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता नहीं होती, बल्कि उसके आश्रय से संसार परिभ्रमण होता है इसलिए व्यवहारनय के त्याग का उपदेश दिया है।

प्र० २९—व्यवहार का फल क्या है ?

उ०—प्राणियों को भेदरूप व्यवहार का पक्ष तो अनादिकाल से ही है, उसका उपदेश भी बहुधा सर्व प्राणी परस्पर करते है, जिन-वाणी में व्यवहार का उपदेश शुद्धनय का हस्तावलम्बन जानकर बहुत किया है, किन्तु उसका फल संसार ही है। देखो, भगवान का

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

कहा हुआ व्यवहार नववें ग्रैवेयक तक ले जाता है किन्तु उसका संसार बना रहता है–उसका दृष्टान्त द्रव्यलिंगी मुनि है।

प्र० ३०—निश्चयका फल क्या है ?

उ०—शुद्धनय का पक्ष तो कभी आया नहीं, उसका उपदेश भी विरल है, वह कहीं-कहीं पाया जाता है, इसलिए उपकारी श्रीगुरु ने शुद्धनय के ग्रहण का फल मोक्ष जानकर उसका उपदेश प्रधानता से दिया है। देखो—भगवान का कहा हुआ निश्चय शुभ-अशुभ दोनों से बचाकर, जीव को शुद्धभाव में—मोक्ष में ले जाता है–उसका दृष्टान्त सम्यग्दृष्टि है कि जो नियम से मोक्ष प्राप्त करता है।

प्र० ३१—ग्यारहवीं गाथा का भाव थोड़े में क्या रहा ?

उ०—देखो, संसार में चार प्रकार का अस्तित्व है :

(१) पर द्रव्य का अस्तित्व—अपनी आत्मा के अलावा अनन्त आत्माएँ, अनन्तानन्त पुद्गल द्रव्य, धर्म, अधर्म, आकाश एकेक, लोकप्रमाण असंख्यात कालद्रव्य, इतना पर द्रव्य का अस्तित्व है। (२) विकारीपर्यायों का अस्तित्व=शुभाशुभ विकारी भाव का अस्तित्व है। (३) अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्यायों का अस्तित्व है। (४) त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव का अस्तित्व हैं। अब जिसको अपना भला करना हो, वह तीन प्रकार के अस्तित्व से अपना ध्यान हटा-, कर चौथे प्रकार का अस्तित्व स्वयं है उस पर दृष्टि देवे, तो ही धर्म की शुरूआत्, वृद्धि और पूर्णता होकर मुक्तिरूपी लक्ष्मी का नाथ बनता है। ११वीं गाथा जैन दर्शन का प्राण है। यदि कुन्दकुन्द भगवान की आज्ञा माने, तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति हो और अनन्त-काल का संसार—परिभ्रमण अल्पकाल में नाश हो जावे। अतः अपने त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से ही धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ३२—पंच परमेष्ठियों के आश्रय से, दया दान-पूजा-अणुव्रत-महाव्रतादि के आश्रय से धर्म की प्राप्ति नहीं हो सकती और क्या हम जो व्रतादि करते हैं, वह व्यर्थ ही है ?

उ०—अनादिकाल से अज्ञानी जीव अनन्तवार दिगम्बर जैन द्रव्यलिंगी मुनि बना और शुक्ललेश्या का शुभभाव अनन्तवार किया, परन्तु संसार का ही पात्र रहा। प्रवचनसार में द्रव्यलिंगी मुनि को संसार-तत्त्व कहा है। इसलिए तीनकाल–तीनलोक में कभी भी भगवान के आश्रय से, अणुव्रत-महाव्रतादि के आश्रय से धर्म की प्राप्ति नहीं होती है। एकमात्र अपने त्रिकाली के आश्रय से धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है—ऐसा चारों अनुयोगों में सब भगवानों ने कहा है। यही बात भगवान कुन्दकुन्द आचार्य ने ११वीं गाथा में बतायी है, इसलिए हे आत्मा ! तू अपने आत्मा को दुःख समुद्र में नहीं डुबाना चाहता, तो एकबार अपने भगवान का आश्रय ले, तो देख। जीवन में अपूर्व आनन्द की प्राप्ति होगी, फिर तुझे किसी से पूछना नहीं पड़ेगा।

प्र० ३३—दो द्रव्यों की पर्यायों में जो व्यवहार कहा जाता है, वह किस-प्रकार है ?

उ०—जीव पुद्गल के गति, स्थिति, अवगाहन, परिणमन आदि कार्यों में जो धर्म-अधर्म-आकाश और कालद्रव्य का गतिहेतुत्व, स्थिति-हेतुत्व, अवगाहनहेतुत्व, और परिणमनहेतुत्व का जो कथन आता है—वह सब व्यवहार कथन ही है। इस व्यवहार कथन का अर्थ मात्र इतना ही है कि जीव पुद्गल अपने गति, स्थिति आदि कार्यों को तो स्वयं अपनी-अपनी स्वतन्त्र उस समय की क्षणिक योग्यता से ही करते हैं। धर्म अधर्म आकाश और काल की उपस्थिति मात्र

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हैं। जैसे हमारे चलने में सड़क उपस्थिति मात्र है; उसी प्रकार जीव और पुद्गल के गति-स्थिति आदि में धर्म अधर्म द्रव्यों की यदि उपस्थिति मात्र है।

प्र० ३४—कुछ मनीषी कहलाने वाले पुद्गल और जीव की गति-स्थिति आदि कार्यों का कर्ता धर्म-अधर्म आदि द्रव्यों को ही कहते हैं और ऐसा ही उपदेश करते हैं, क्या वह गलत है ?

उ०—बिल्कुल गलत है, वे मनीषी दो द्रव्यों की कर्ता--कर्म रूप एकत्व-बुद्धि की पुष्टि करके मिथ्यात्व का पोषणकर निगोद के पात्र बनते हैं और उनकी बात मानने वाले भी गृहीत मिथ्यात्व की पुष्टिकर निगोद में चले जाते हैं, क्योंकि सच्चे देव-गुरु-शास्त्र की विराधना का फल निगोद है।

प्र० ३५—कुछ मनीषी धर्म-अधर्म-आकाश और काल द्रव्यों को मानते हीं नहीं है, क्या यह बात उनकी ठीक है ?

उ०—बिल्कुल गलत है। जो मनीषी धर्मादि द्रव्यों को नहीं मानते हैं। वह निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध का लोप करने वाले एकांती हैं और निगोद के पात्र है। क्योंकि भगवान की वाणी में आया है कि "जहाँ उपादान होता है, वहाँ निमित्त होता ही है" ऐसा वस्तु स्वभाव है।

प्र० ३६—मोहनीय कर्म के उदय से राग उत्पन्न होता है, (२) जीव के राग करने से मोहनीय कर्म उत्पन्न होता है, (३) ज्ञानावरणीय ज्ञान को रोकता है, (४) दर्शन मोहनीय सम्यक्त्व नहीं होने देता, (५) जीवों का मरना-जीना, सुख-दुःख पुद्गलों का उपकार है, (६) जीवों ने कर्म किये—जीवों ने कर्मों को भोगा, (७) जीव बोलता है, (८) आत्मा ने शरीर को चलाया, या शरीर ने आत्मा को चलाया, (९) जीव दूसरे जीवों की रक्षा की या मारा, (१०) सैनी जीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है, असैनी जीव है, इन्द्रियों वाला जीव है आदि कथन शास्त्रों में आते हैं; इनसे क्या समझना समझना चाहिए ?

उ०—यह सब निमित्त की अपेक्षा कथन किया है, यह असत्यार्थ कथन है ऐसा जानकर असत्यार्थ कथन का श्रद्धान छोड़ना। इस व्यवहार के कथन का ऐसा का ऐसा श्रद्धान करने से मिथ्यात्व की पुष्टि होती है, क्योंकि शास्त्रों में इनका तात्पर्य मात्र धर्म द्रव्य के समान उपस्थिति मात्र है, ऐसा बताना है।

जो जीव एक द्रव्य का दूसरे द्रव्यों के साथ कर्ता—कर्म मानता है, वह द्विक्रियावादी जिनमत से बाहर है। इसलिए पात्र जीवों को दो द्रव्यों की एकता बुद्धि छोड़कर, अपने स्वभाव का आश्रय लेकर अपना कल्याण करना चाहिए।

प्र० ३७—गुरुगम बिना अपनी खोटी मान्यता से जिनवाणी को सुना और क्या सीखा ? विकार पुद्‌गल का कार्य है, हमारा कल्याण जब होना होगा तब होगा। अशुभभाव आना है तो आवेगा हम क्या करें, वह जीव कैसा है ?

उ०—(१) वीतराग का मार्ग स्वछन्द होने के लिए नहीं है। जो जीव वीतराग की बात सुनकर उससे उल्टा अर्थ निकलता है वह निगोद का पात्र है। जबकि वर्तमान में बड़े भाग्य से शुभाशुभ भाव रहित वीतरागता प्रगट करने का समय आया है उसके बदले कहे, अशुभ भाव का भी तो समय आया हैं—ऐसी मान्यता वाला जिनवाणी सुनने के अयोग्य है।

(२) जैसे जिसको सोने की पहिचान हो गई, वह १४ कैरेट आदि कह सकता है; उसीप्रकार जिसने अपने स्वभाव का आश्रय लेकर अनुभव-ज्ञान प्राप्त हो गया है, वह ही कह सकता है, जिस समय जो होना होगा, वही होगा मिथ्यादृष्टि नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) श्री समयसार जी के बंध अधिकार में आया है कि कोई जीव किसी अन्य जीव को मार-जिला नहीं सकता और सुख-दुख नहीं दे सकता। ऐसा सुनकर अज्ञानी श्री समयसार की आड़ लेकर दूसरे जीवों को मारे और दुःखी करे, और कहे समयसार में लिखा है कोई किसी को मार-जिला और सुखी-दुखी नहीं कर सकता। अरे भाई, ऐसी स्वच्छन्दता का सेवन करके तू मर जावेगा। समयसार कच्चा पारा है। यदि हजम हो जावे, तो अमर बन जावेगा और यदि हजम ना हुआ, फूट-फूट कर रोयेगा।

श्री समयसार का कथन जब तुझे कोई मारे, तुझे दुःखी करे तब याद कर कि भगवान ने समयसार में ऐसा कहा है। अज्ञानी जीव समयसार की आड़ में मिथ्यात्व की पुष्टी करता है।

(४) जैसे एक आदमी ने "बुलट प्रुफ कोट" अर्थात् जिस कोट में गोली ना लगे, ऐसा कोट तैयार किया। वह फौज के कप्तान के पास गया कि आप "बुलट प्रुफ कोट" का आर्डर दो। उसने कहा, ठीक है "आप इसे पहिनो।" कप्तान अन्दर जाकर पिस्तौल लाया, तो देखा वह आदमी नौ दो ग्यारह हो गया; उसी प्रकार जिनवाणी में जो कथन है वह अपने लिए ही है, ऐसा जानकर उन प्रकारों को पहिचानकर अपने में ऐसा दोष हो तो, उसे दूर करके सम्यक् श्रद्धानी होना, औरों के ही दोष देख-देखकर कषायी ना होना, क्योंकि अपना बुरा-भला अपने परिणामों से है। औरों को रुचिवान देखे, तो कुछ उपदेश देकर उनका भी भला करे। इसलिए अपने परिणाम सुधारने का उपाय करना योग्य है। सर्वप्रकार के मिथ्यात्वभाव छोड़कर सम्यग्दृष्टि होना योग्य है, क्योंकि संसार का मूल मिथ्यात्व है और धर्म का मूल सम्यक्त्व है। [मोक्षमार्ग-प्रकाशक पृष्ठ २६६]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे रोजनामचे में अनेक रकमें जहाँ-तहाँ लिखी है, उनकी खाते में ठीक खतौनी करे तो लेने-देने का निश्चय हो; उसी प्रकार शास्त्रों में तो अनेक प्रकार का उपदेश जहाँ-तहाँ दिया हैं; उसे सम्यग्ज्ञान में यथार्थ प्रयोजन सहित पहिचाने, तो हित-अहित का निश्चय हो। इसलिए स्यात् पद की सापेक्षता सहित सम्यग्ज्ञान द्वारा जो जीव जिन वचनों में रमते हैं, वे जीव ही शीघ्र शुद्धात्मस्वरूप को प्राप्त होते हैं। मोक्षमार्ग में पहला उपाय आगम ज्ञान कहा है, आगम ज्ञान बिना धर्म का साधन नहीं हो सकता, इसलिए तुम्हें भी यथार्थ बुद्धि द्वारा आगम का अभ्यास करना, तुम्हारा कल्याण होगा।

प्र० ३८—जो व्यवहार कथन को सच्चा मानता है, उसे शास्त्रों में क्या-क्या कहा है ?

उ०—(१) समयसार नाटक में 'मूर्ख' कहा है।

(२) आचार्य कल्प टोडरमल जी ने 'अनीति' आदि कहा है।

(३) आत्मावलोकन में हरामजादीपना कहा है।

(४) समयसार कलश ५५ में 'अज्ञान मोंह अन्धकार है, उसका सुलटना दुर्निवार है', 'मिथ्यादृष्टि' आदि कहा है।

(५) प्रवचनसार में पद-पद पर धोखा खाता है— ऐसा कहा है।

(६) पुरुषार्थसिद्धि उपाय में 'तस्य देशना नास्ति' कहा है।

(७) मोक्षमार्गप्रकाशक में उसके धर्म के अंग मिथ्यात्व भाव को प्राप्त होते हैं।

(८) समयसार गा० ११ के भावार्थ में 'उसका फल संसार है।'

आदि चारों अनुयोगों में व्यवहार के कथन को सच्चा बानने वालों को चारों गतियों में घूमकर निगोद में जाने वाला कहा है, क्योंकि व्यवहार निश्चय का प्रतिपादक है। इसके बदले उसको सच्चा मान लेता है, वह मिथ्यात्व है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ३९—शास्त्रों में दो द्रव्यों की पर्यायों में निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध बताने का क्या प्रयोजन है ?

उ०—विश्व की रचना इस प्रकार है अर्थात् वस्तु स्वभाव है कि जहाँ उपादान होता है, वहाँ निमित्त होता ही है, उसको दूर करना असम्भव है।

प्र० ४०—दो द्रव्यों की पर्यायों में निमित्त-नैमित्तिक समझने से क्या लाभ है ?

उ०—पात्र जीव भिन्न-भिन्न चतुष्टय का भान करके भेद विज्ञान बनके वीतरागी बनता है और अज्ञानी एकत्वबद्धि करके और मिथ्यात्व की पुष्टि करके चारों गतियों का पात्र बनता है।

प्र० ४१—जहाँ प्रत्येक द्रव्य का स्वचतुष्ट्य भिन्न-भिन्न दिखाना हो, वहाँ क्या जानना चाहिए ?

उ०—जहाँ प्रत्येक द्रव्य का स्वचतुष्ट्य भिन्न-भिन्न दिखाना हो, वहाँ पर निश्चय हीं प्रयुक्त होता है। स्वचतुष्टय की दृष्टि से औदयिक, औपशमिक, क्षायोपशमिक और क्षायिक भावों का कर्ता निश्चय से जीव ही है। कर्मों के उदय-उपशम-क्षय आदि का कर्ता निश्चय से पुद्गल ही है।

यहाँ पर ध्रुव स्वभाव तथा पर्याय चाहे विकारी हो या अविकारी हो दोनों निश्चय हैं, इस अपेक्षा से रागादि जीव का कार्य है। जब दो द्रव्यों को अलग बताना हो, तो जीव के विकारी भावों को भी उसकी पर्याय में उत्पन्न होने की अपेक्षा स्वाश्रित निश्चय कहा है, परद्रव्य को पराश्रित व्यवहार कहा है।

प्र० ४२—दो द्रव्यों के स्वचतुष्टय जानने से क्या प्रयोजन है और क्या लाभ है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—प्रत्येक वस्तु का कर्ता-कर्म अनादि से अनन्तकाल तक स्वतन्त्र रूप से दिखाना, यह प्रयोजन है। (लाभ)—अपने विभाव भावों का कर्ता जो जीव-पुद्गल को मानता था, वह बुद्धि छूटकर अपने विभाव भावों कर्ता मैं हूँ, ऐसा जानकर भव्य जीव अपने स्वभाव का आश्रय लेकर उसका अभावं कर देता है। यहाँ पर शुभाशुभ सब पर्यायों को स्वाश्रितों निश्चय और पर द्रव्य को पराश्रितों व्यवहार कहा है।

प्र० ४३—शास्त्रों में जो आत्मा के आश्रय से शुद्धभाव प्रगटा उसे निश्चय कहा है और शुद्ध के साथ शुभ अंश को व्यवहार कहा है, उससे क्या प्रयोजन और क्या लाभ है ?

उ०—यहाँ पर मोक्षमार्ग दिखलाना है। जिसके प्रकट होने से धर्म की शुरूआत, वृद्धि होती है। मोक्षमार्ग होने पर शुद्धभाव को स्वाश्रित निश्चय कहते हैं और भूमिकानुसार राग को पराश्रितों व्यवहार कहते हैं। यहाँ पर शुभभावों को व्यवहार कहा है। शुद्धभाव को निश्चय कहने की प्रयोजन यह है कि शुद्धभाव ही मोक्षमार्ग है, धर्म है। शुभभाव को व्यवहार कहने का प्रयोजन यह है कि सच्चे देव-गुरू-शास्त्र का राग, अणुव्रत, महाव्रतादि का राग, दया-दान-पूजा आदि का भाव मोक्षमार्ग नहीं है, बन्धभाव है।

लाभ—ज्ञानी जानता है प्रगट करने योग्य वीतराग भाव से मेरा हित है यह प्रगट करने योग्य उपादेय है और जो राग है वह अहित रूप हेय है।

प्र० ४४—कुछ मनीषी कहलाने वाले दया दान-पूजा-अणुव्रत-महाव्रतादि से परस्परा मोक्ष की प्राप्ति बतलाते हैं, क्या वह बात झूठ है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—बिल्कुल झूठ है, क्योंकि अनादि से तीर्थंकरादि, गणधर आदियों ने शुभभावों को बंधका और दुःख का कारण कहा है। जो शुभभावों से मोक्षमार्ग या मोक्ष मानते हैं, वह सब जीव निगोद के पात्र हैं।

प्र० ४५—शुभभाव को बन्ध का कारण और दुःख का कारण, कहाँ कहा है ?

उ०—श्री समयसारजी गा० ७२ तथा ७४ में शुभभावों को अपवित्र, जड़स्वभावी, दुःख का कारण तथा बंध का कारण, अध्रुव, अनित्य, अशरण वर्तमान में दुःखरूप और भविष्य में भी दुःखरूप कहा हैं। शुभभाव को मोक्ष का घातक कहा है, दुष्ट-अनिष्ट भी कहा है। अज्ञानी के शुभ भाव को तो वास्तव में शुभभाव भी नहीं कहा जाता है, क्योंकि मिथ्यात्व का महान पाप उसके साथ है।

प्र० ४६—एकमात्र त्रिकाली ध्रुव स्वभाव स्वाश्रित निश्चय और शुद्ध पर्याय चाहे पूर्ण हो या अपूर्ण, सब को पराश्रित व्यवहार क्यों कहा है ?

उ०—जिस जीव को अपना कल्याण करना हो, उस जीव को सामान्य ध्रुव स्वभाव, पारिणामिक जीवत्वभाव आदि नामों से कहते हैं वह मात्र निश्चय हैं क्योंकि इसी के आश्रय से धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है।

औपशमिक, क्षायिक, धर्मका क्षायोपशमिकभाव भी व्यवहार है क्योंकि त्रिकाली की अपेक्षा शुद्ध पर्याय को भी पराश्रित व्यवहार कहा है।

ज्ञानियों को मात्र द्रव्य स्वभाव ही सदा मुख्य रहता है पर्याय धर्म सदा गौण ही रहता है; क्योंकि साधक द्रव्य स्वभाव के आश्रय से शुद्धि की वृद्धि करता हुआ, साक्षात् केवली बन जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निश्चयनय (द्रव्य स्वभाव) और व्यवहारनय (पर्याय स्वभाव) दोनों जानने योग्य हैं, किन्तु आश्रय करने योग्य एकमात्र निश्चय ही है, व्यवहार कभी भी आश्रय करने योग्य नहीं है, उसे हेय ही समझना।

स्वभाव की दृष्टि करना ही मोक्षमार्ग प्राप्त करना और मोक्ष हैं। क्योंकि उसी के आश्रय से मोक्षमार्ग और मोक्ष प्राप्त होता है।

प्र० ४७—द्रव्य स्वभाव के आश्रय से ही मोक्षमार्ग और मोक्ष प्राप्त होता है यह कहाँ आया है ?

उ—पूरा नियमसार और समयसार इसके साक्षी हैं।

प्र० ४८—पाँच बातें कौन कौनसी याद रखनी चाहिए ?

उ०—(१) द्रव्यरूप हिंसा, झूठ, चोरी, कुशील, परिग्रह, और द्रव्यरूप अहिंसा, सत्य, अचौर्य, ब्रह्मचर्य और अपरिग्रह तो मात्र पुद्गल द्रव्य की स्वतन्त्र क्रियाएँ हैं। नोकर्म-द्रव्यकर्म सब का पुद्गल कर्ता है, इनकी क्रियाओं से ना पुण्य होता है, ना पाप होता है और ना धर्म होता है।

(२) हिंसा-झूठ-चोरी-कुशील-परिग्रह यह अशुभभाव पापभाव हैं और अहिंसा-सत्य-अचौर्य-ब्रह्मचर्य और परिग्रह का शुभ भाव पुण्य भाव है धर्म नहीं है।

(३) अज्ञानी का शुभभाव अनन्त संसार का कारण है, क्योंकि वह उसे उपादेय, धर्म का कारण मानता है। ज्ञानी शुभभाव को हलाहल जहर रूप हेय मानता है उसे व्यवहार कहा है।

(४) मोह-क्षोभरहित आत्मा का परिणाम वीतरागभाव वह धर्म है उसका फल अतीन्द्रिय सुखरूप मोक्ष है। यह शुद्धभाव एकमात्र अपने आश्रय से ही प्रगट होता है, पर, विकार, शुद्ध पर्याय के आश्रय से प्रगट नहीं होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi.

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५) जीव केवल भाव कर सकता है, पर की क्रिया तो मिथ्यादृष्टि भी नहीं कर सकता है। शुभाशुभ भावों तक अज्ञानी की दौड़ हैं। ज्ञानी की दौड़ शुद्धभाव तक है। ऐसा जानकर अपने स्वभाव का आश्रय लेना ही कल्याणकारी है।

चौदहवाँ पाठ

धर्म प्राप्ति के लिए जीव की पात्रता

प्र० १—भगवान की वाणी सुनने की पात्रता कब कब कही जा सकती है ?

(१) "करी वृत्ति अखण्ड सन्मुख, मूल मारग सांभलो जिन नो रे॥ अपनी आत्मा के सन्मुख अखण्ड वृत्ति किये बिना वीतरागी मूलमारग सुनने के लिए लायक नहीं हो सकता है। (अ) जैसे-एक आदमी ने बादाम में से तेल निकालना शुरू किया। जब तेल निकालने का समय आया, तो जरा चाय पी आऊँ। फिर आकर तेल निकालने लगा। जब फिर तेल निकलने का समय आया, तो जरा पेशाब कर आऊँ। इस प्रकार उसे कभी भी तेल की प्राप्ति नहीं होगी; उसी प्रकार शास्त्र सुनते हुए अन्य सांसारिक कार्य के सम्बन्ध में विचार आवे तो वह भगवान की वाणी सुनने लायक नहीं है।

(आ) एक बार श्रीमद् रायचन्द्रजी का प्रवचन बहुत आदमी सुन रहे थे। वहाँ पर एक आदमी बीड़ी पीकर आया बीड़ी पीने के बाद गन्ध तो आती है। उसके बैठते ही दूसरे बीड़ी पीने वाले को बीड़ी की तलफ लगी, वह उठकर तुरन्त बाहर गया और बीड़ी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पीकर वापस आकर बैठ गया। उस समय एक पैसे की तीन बीड़ी आती थी, एक बीड़ी का मूल्य एक पाई होता था। तब श्रीमद् ने कहा अरे भाई जो आत्मा की कीमत एक पाई से भी कम मानते हैं, वह भगवान की वाणी सुनने लायक नहीं है। इसलिए पहले नम्बर की लायकात वृत्ति को अखण्ड सन्मुख करके वीतराग का मूल मारग सुनना चाहिए।

(२) नो य पूजादिनी जो कामना रे, भूलमारग सांभलो जिननो रे॥

जो जीव ऐसा मान के शास्त्र सुने कि मेरी पूजा प्रतिष्ठा हो, पुण्य का बन्ध हो, सांसारिक वासना पूर्ति की इच्छा करता हो, वह वीतरागी मूल मारग सुनने लायक नहीं है। वक्ता कहे, आइये-सेठजी, तो वह अपनी प्रशंसा सुनेगा किन्तु वीतरागता की बात नहीं सुन सकेगा। वीतरागता की रुचि वाले जूते रखने की जगह में बैठकर भी वीतरागी वाणी सुनने से पीछे नहीं हटते। जो मान-कीर्ति के चक्कर में हैं, वह भगवान की वाणी सुनने लायक नहीं है।

(३) नो य व्हालुं अन्तर भव दुःख मूल मारग सांभलो, जिननो रे॥

अन्तर में कोई भी भव का दुःख कडुवा लगे अर्थात् अच्छा ना लगे। जिसे मनुष्य भव, देव भव अच्छा लगता हो, वह वीतरागी वाणी सुनने के लायक नहीं हैं।

प्र० २—चारों गति के विषय में मोक्षपाहुड गा० १६ में क्या कहा है ?

उ०—चारों गति का भाव दुर्गति है "पर दव्वादो दुग्गइ, सद-व्वादो हु सुगई" अर्थात् स्व द्रव्य में परिणति सो सुगति है, पर द्रव्य में परिणति सो दुर्गति है।

जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र का बन्ध होता है, वह भाव भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

दुर्गति है और जिस भाव में शुद्धोपयोग रूप परिणमन हो वह सुगति है। इसलिए जिसे संसार का दुःख अच्छा ना लगता हो,वह ही भगवान की वाणो सुनने लायक है।

(४) करी जो जो वचन की तुलना रे, जो जो शोधी ने जिन सिद्धान्त, मूल मारग सांभलो जिननो रे॥

यह जीव संसार में बड़ी हुश्यारी से काम लेता है। जैसे हर व्यापारी अपने माल को अच्छा ही बताता हैं, लेकिन खरीददार बिना परीक्षा किये माल को नहीं खरीदता। अरे भाई, जहाँ आत्मा का सर्वस्व अर्पण कर देना हैं, वहाँ जो उपदेश मिलता है, वह हमारे कल्याण के लिए है या नहीं, उसकी परीक्षा नहीं करते, वह वीत-रागी मूल मारग सुनने के लायक नहीं है। इसलिए जो उपदेश मिलता है। उसकी जिन सिद्धान्त के साथ तुलना करे और जो जैन सिद्धान्त के विरुद्ध हो, वह जिन वचन नहीं हैं। ऐसा जानकर पात्र जीवों को जिन मार्ग का लाभ लेना चाहिए।

(१) वृत्ति को अखण्ड करके; (२) पूजादि की चाहना नहीं करके; (३) जिसे संसार का दुःख लगा हो; (४) जिन वचन की परीक्षा करके उसमें लगा रहता है वह भगवान की वाणी सुनने लायक हैं। उसे इसी भव में सम्यक्त्व की प्राप्ति हो जायगी।

प्र० ३—जबतक सम्यक्त्व की प्राप्ति न हो, तब तक क्या करे सम्यक्त्व की प्राप्ति हो ?

उ०—(१) जबतक सच्चा तत्त्व श्रद्धान न हो; (२) यह 'इसी प्रकार है—'ऐसी प्रतीति सहित जीवादि तत्त्वों का स्वरुप आपको भासित न हो; (३) जैसे द्रव्यकर्म, नोकर्म भावकर्म में एकत्व बुद्धि है, वैसे केवल आत्मा में अहंबुद्धि ना आवे; (४) हित-अहित रूप

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अपने भावों को न पहिचाने तब तक सम्यक्त्व के सन्मुख मिथ्यादृष्टि हैं; यह जीव थोड़े ही काल में सम्यक्त्व को प्राप्त करेगा।...क्योंकि तत्त्व विचार रहित देवादि की प्रतीति करे, बहुत शास्त्रों का अभ्यास करें, व्रतादि पाले, तपश्चरणादि करे, उसको तो सम्यक्त्व होने का अधिकार नहीं है और तत्त्व विचार वाला इनके बिना भी सम्यक्त्व का अधिकार होता है।

प्र० ४—सुख पाने के लिए पाँच बातोंका विचार क्या है?

उ०—श्रीमद् रायचन्द्र जी ने पाँच बातें बतायी हैं—

(१) अल्पआयु; (२) अनियत प्रवृत्ति; (३) असीम बलवान असत्संग; (४) पूर्व का प्रायः करके अनाराधकत्व; (५) बलवीर्य की हीनता।

प्र० ५—अल्पआयु से क्या तात्पर्य है?

उ०—हे आत्मन्! शरीर का सम्बन्ध अल्प समय का देखने में आता है। ऐवरेज ३५ वर्ष की है, लेकिन तुझे पीढ़ियों की चिन्ता है। क्या यह तेरे लिए ठीक है? सबकी चिन्ता करता है, किन्तु क्या यह तेरे साथ जावेगा? विचार तो कर।

प्र० ६—अनियत प्रवृत्ति से क्या तात्पर्य है?

उ०—हे आत्मन्! विचार—साढ़े तीन हाथ तुझे जमीन चाहिए, लेकिन बड़े-बड़े महलों की चिन्ता है। आधे सेर अनाज की जरूरत है, लेकिन चिन्ता लाखों की है। और उसके लिए तू रात-दिन प्रवृत्ति करता है, क्या यह योग्य है?

प्र० ७—असीम बलवान असत्संग से क्या तात्पर्य है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—हे जीव, विचार—जहाँ देखो, काम-भोग बन्ध की बातें सुनने को मिलती है। आगे चलो, पुण्य करो, दान करो, उपवास करो, प्रतिमा लो, भला हो जावेगा, यह सब बातें सुनने को मिलती हैं। अध्यात्म की बात तो सुनने को मिलती ही नहीं है। हे आत्मा! अनादि अनन्त किसी से तेरा कुछ भी सम्बन्ध नहीं है। प्रत्येक वस्तु कायम रहते हुए परिणमन करना इसका स्वभाव है। तेरा कल्याण भी तेरे से और बुरा भी तेरे से है। ऐसी बातें सुनने को मिलती ही नहीं, इसलिए असीम बलवान असत्संग कहा है। त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव जो सत् है उसका संग छोड़कर मात्र क्षणिक भाव का तू संग करता है, इससे तेरा हित नहीं होगा।

प्र० ८—पूर्व का प्रायः करके अनाराधकपना क्या है?

उ०—हे आत्मा! तूने अनादिकाल से अपनी आत्मा की अनाराधना की है, तू इस समय अनाराधकपने को मिटाकर आराधकपना प्रगट कर सकता है, क्योंकि पंचमकाल में जो जीव उत्पन्न होते हैं सब मिथ्यादृष्टि होते हैं। लेकिन वह वर्तमान में पुरुषार्थ से मिथ्यादर्शन को समाप्त करके, सम्यग्दर्शन प्रगट कर सकते हैं। इसलिए हे भव्य! तू अपनी आत्मा की आराधना कर और अनादिकाल का अनाराधकपना मिटा दे, तो तुझे सुख की प्राप्ति हो।

प्र० ९—बलवीर्य की हीनता से क्या तात्पर्य है?

उ०—यह जीव अपनी मूर्खतावश अपने वीर्य को संसार के कार्यों में जोड़ता है, जबकि उनमें तेरा वीर्य जोड़ना व्यर्थ है। वास्तव में जो जीव अपना वीर्य आत्म कार्य में नहीं जोड़ता है वह नपुंसक है जिसको पुण्य की तथा पुण्य फल की भावना है वह नपुंसक है। स्वरूप की रचना करना वह वीर्य है।

प्र० १०—अब क्या करे तो कल्याण का अवकाश है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—यह अवसर चूकना योग्य नहीं है। अब सब प्रकार से अवसर आया है, ऐसा अवसर प्राप्त करना कठिन है। ज्ञानी गुरु दयालु होकर मोक्षमार्ग का उपदेस देते हैं। उसमें भव्य जीवों को प्रवृत्ति करनी चाहिए। यदि इस अवसर में भी तत्त्व निर्णय करने का पुरुषार्थ न करे, प्रमाद से काल गमावे, मन्दरागादि सहित विषय कषायों के कार्यों में ही प्रवर्ते, तो अवसर चला जावेगा और संसार में ही भ्रमण रहेगा।

सच्चे देव, गुरु और शास्त्र का भी निमित्त बन जावे, तो वहाँ उनके निश्चय उपदेश का तो श्रद्धान नहीं करता, परन्तु व्यवहार श्रद्धा से अतत्त्व श्रद्धानी ही बना रहता है। याद रक्खो :—

(१) यदि तुम पुरुषार्थ करो तो स्वरूप को प्राप्त कर सकते हो।

(२) यदि समय व्यर्थ खो दिया तो अवसर चला जावेगा।

प्र० ११ जीव को धर्म प्राप्ति का पात्र कब कहा जा सकता है ?

उ०—(१) जगत में जो जो बातें और वस्तुएँ महिमावान गिनी जाती हैं ऐसा शोभायमान गृह आदि आरम्भ अर्थात् कषायों की प्रवृत्तियों में चतुर।

(२) अलंकारादि परिग्रह अर्थात् कषायों के साथ एकत्वबुद्धि।

(३) लोकदृष्टि का विचक्षणपना (चतुराई)।

(४) लोकमान्य धर्म श्रद्धावानपना (लोग जिसे धर्म कहे उसकी श्रद्धा)।

जब तक जीव इन चारों को लबालब भरा प्रत्यक्ष जहर का प्याला नहीं माने, तब तक आत्मा का किंचित् मात्र भी कल्याण

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं हो सकता है। अर्थात् जीव को धर्म प्राप्ति का पात्र भी नहीं कहा जा सकता है।

प्र० १२—'शोभायमान गृह आदि आरम्भ' को स्पष्ट कीजिए ?

उ०—शोभायमान ग्रह आदि आरम्भ अर्थात् कषायों की प्रवृत्तियों को आरम्भ कहते हैं। अर्थात् कुछ करना कराना आदि प्रवृत्ति नाम आरम्भ है।

बड़े-बड़े कारखाना चलाना, बड़ी-बड़ी दुकान चलाना यह तो अल्प आरम्भ है। 'करूँ-करूँ' यह कषाय की प्रवृत्ति यह सबसे महान आरम्भ है। जिस प्रकार कोई हलाहल जहर को पीले, वह बच नहीं सकता; उसी प्रकार जो अनादि काल से शुभभाव की प्रवृत्ति को अच्छा माने, उसका कभी कल्याण नहीं हो सकता। क्योंकि यह मिथ्यात्व है और मिथ्यात्व सात-व्यसनों से भी महा भयंकर पाप है। इसलिए जब तक शुभभाव अच्छा, अशुभभाव बुरा यह मान्यता रहती है तब तक जीव धर्म प्राप्त करने का पात्र नहीं कहा जा सकता है।

प्र० १३—"अलंकारादि परिग्रह" को स्पष्ट कीजिए ?

उ०—अलंकारादि परिग्रह अर्थात् कषायों के साथ एकत्वबुद्धि। लोक में कपड़ा, धन, गहना, मोटरगाड़ी आदि परिग्रह कहा जाता है। लेकिन वास्तवमें "इच्छा ही परिग्रह है" समस्त प्रकार से ग्रहण किया जावे ऐसा दया दान-पूजा का भाव हितकारी-मददगार है यह कषायों के साथ एकत्वबुद्धि है।

अज्ञानी मिथ्यादृष्टि दया दान-पूजा, शास्त्र पढ़ने के भाव को हितकारी मानते हैं। जब तक उसे प्रत्यक्ष जहर का प्याला ना जाने तब तक आत्म कल्याण नहीं हो सकता, क्योंकि शुभभाव भी आस्रव-बन्धरूप, दुःखरूप, अपवित्र, जड़ स्वभावी है। जो शुभभाव को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अच्छा मानता है उसका संसार भ्रमण बढ़ता है और वह दुःख भोगता है ऐसा जीव धर्म प्राप्त करने का पात्र भी नहीं कहा जा सकता है।

प्र० १४—"लोक दृष्टि का विचक्षणपना" को स्पष्ट कीजिए ?

उ०—लोक दृष्टि का विचक्षणपना अर्थात् लौकिक चतुराई। आत्म दृष्टि का नहीं, ज्ञान दृष्टि का नहीं, परन्तु लोकदृष्टि में जो चतुर है, उस चतुरपने को जो प्रत्यक्ष हलाहल जहर का प्याला न माने, तब तक वह धर्म प्राप्त करने का पात्र नहीं कहला सकता है।

(अ) जैसे एक आदमी पचास रुपया लेकर अफ्रीका गया। दस साल बाद घर आया। पचास लाख रुपया कमाकर लाया। उसे संसार चतुर कहता है। किन्तु जब तक संसार की चतुराई को हलाहल जहर का प्याला न जाने, तब तक धर्म पाने का पात्र नहीं है।

(आ) जैसे कुछ चोर चोरी करने जा रहे थे, रास्ते में कोई एक बढ़ई मिला। उसने कहा, मुझे भी अपने साथ मिला लो। जब चोरी करने गये तब बढ़ई ने सोचा कि मैं ऐसा कार्य करूँ, जिससे यहाँ का मालिक मुझे याद रक्खे। उसने आरी से दरबाजे के कंगूरे काटने शुरू किये। बाद में अन्दर जाने के लिए अपना पैर अन्दर रक्खा। तो अन्दर से मालिक ने उसके पैर खेंचे और बाहर से चोरों ने खैंचे। विचारो—जैसे बढ़ई को संसार की चतुराई अपने को दुःख दे गयी; उसी प्रकार शुभभाव के साथ एकत्व की चतुराई अनन्त संसार का कारण है।

(इ) मैं जानता हूँ समझता हूँ यह शास्त्र अभिनिवेश आत्म कल्याण में बड़ा भारी विघ्न करने वाला है।

प्र० १५—गुरु की वाणी सुनी और कहे, यह तो मैं जानताहूं ?

उ०—गणधर चार ज्ञान का धारी जो एक अन्तर्मूहर्त में १२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अंग की रचना करता है वह भी केवली के ज्ञान के सामने अपने ज्ञान को कुछ भी नहीं गिनता। भगवान की वाणी २४ घण्टों में चार बार खिरती है। एक बार ६ घड़ी तक दिव्य देशना भव्य प्राणियों के निमित्त होती है, इस प्रकार २४ घण्टों में से साढ़े नौ घण्टों से ज्यादा समय वाणी खिरती है। उसमें गणधर की हाजरी अवश्य होती है। हम कहें, हमने समझ लिया। ऐसा जब तक पर-लक्षी ज्ञान का शास्त्रीय अभिनिवेश रहता हैं, तब तक वह धर्म प्राप्त करने का पात्र नहीं कहा जा सकता है।

(ई) मैं लोगों के काम बड़ी हुश्यारी से पार उतार देता हूँ। जिसकी ऐसी बुद्धि रहे वह धर्म पाने का पात्र नहीं कहा जा सकता है।

प्र० १६—'लोकमान्य धर्म श्रद्धावान पना' को स्पष्ट कीजिए ?

उ०—लोकमान्य धर्म श्रद्धावानपना अर्थात् लोग जिसे धर्म कहे, जैसे यह सात प्रतिमाधारी है, यह ११ प्रतिमाधारी है,यह २८ मूलगुणों का पालन करता है, यह महीनों का उपवास करता हैं, यह दिन में तीनबार सामायिक करता है, यह करोड़ों रुपयों का दान करता है,यह बड़ा दयालु है, यह अपने पास एक वस्त्र भी नहीं रखता है, संसार की दृष्टि में यह महात्मा माना जाता है। जीव जब तक दृष्टि में इन सब शुभभावों को हलाहल जहर का प्याला न जाने, तब तक वह धर्म पाने का पात्र नहीं कहला सकता है।

प्र० १७—जिन बातों से हम धर्म मानते आ रहे हैं आपने तो उन सब बातों का निषेध कर दिया, फिर अब हम क्या करें ?

उ०—लोक में अनादि काल से मिथ्यादृष्टि जीव परलक्षी ज्ञान और पुण्य की मिठास में ही अपना कल्याण होना मानते है। इसी लिए वे एक-एक समय करके अनादि से संसार के पात्र हो रहे हैं। उनके कल्याण के निमित्त कहा है, कि जब तक जीव को परलक्षी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्ञान और पुण्य की मिठास में दृष्टि रहेगी तब तक वह धर्म पाने का अधिकारी नहीं है।

इन चारों में से किसी भी प्रकार की जरा भी मिठास रहेगी तब तक उसके मिथ्यात्व का नाश नहीं होगा। चाहे वह द्रव्यलिंगी मुनि कहलावे, तो भी वह संसार का ही पात्र बना रहेगा। इसलिए कहा जाता है: कि जब तक परलक्षी ज्ञान और पुण्य की मिठास रहेगी तब तक उसे सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की श्रद्धा नहीं हो सकती और जब तक पर्याय में शुभ भाव रहेगा तब तक पर्याय में सर्वज्ञ-सर्वदर्शी नहीं बन सकता।

प्र० १८—अब परलक्षी ज्ञान और पुण्य की मिठास से बचने का कुछ उपाय है?

उ०—हाँ है,परलक्षी ज्ञान और शुभभावों की रुचि छोड़कर एकमात्र अपना वीतराग सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा की ही रुचि करना, उसका ही ज्ञान करना और उसी में लीनता करना यह एकमात्र उपाय है।

प्र० १९—वर्तमान में सर्वज्ञदेव विराजमान नहीं हैं, सच्चे गुरु भी दृष्टि में नहीं आते,ऐसी दशा में किसकी सीख और किसकी आज्ञा माने, यह समझ में नहीं आता?

उ०—भाई, वर्तमान में अरहंत भगवान साक्षात् विराजमान नहीं है, सच्चे भावलिंगी मुनि भी प्राय: करके दृष्टि में नहीं आते हैं यह बात ठीक है। परन्तु जो अनादि से देवकी आज्ञा है, गुरु की आज्ञा है। उसको ही बताने वाले श्री कानजी स्वामी हैं। उन्होंने वर्तमान में पात्र जीवों को भगवान अरहंत का विरह भुला दिया है और पंचम काल को चौथा काल बनाया है-ऐसे स्वानुभवी महान् सम्यग्दृष्टि पूज्य गुरुदेव हैं। वर्तमान में जो आज्ञा देवकी है वही गुरु

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वता रहे हैं। इसलिए निमित्त रूप से पात्र जीवों को आज्ञा, सीख और विश्वास श्री गुरुदेव का करना है।

वास्तव में वर्तमान में साक्षात् सरस्वती की मूर्ति सम्यग्दृष्टि ही द्रष्टि गोचर होते है। इसलिए ज्ञानियों को सीख, आज्ञा और विश्वास करके अपने आत्मा का कल्याण कर लेना ही पात्र जीव का धर्म है।

प्र० २०—अध्यात्म शैली में श्रीमद् राजचन्द्र जी ने मंगलरूप पाठ में सात दिनों को कैसे-कैसे उतारे हैं ?

उ०—श्रीमद् राजचन्द्र ने १६ वर्ष की उम्र में मोक्षमाला में १०८ पाठ लिखे हैं, उसमें अन्तिम पाठ मंगलरूप है, उसमें यह सात बार उतारे हैं।

तपोपध्याने रविरूप थाय,
वो सांधकर—सोम रही सुहाय।
महान वे—मंगल पंक्ति पावे,
आवे पिछे वे बुध के प्रणामे ॥१॥
निर्ग्रन्थ ज्ञाता—गुरु सिद्धि दाता,
या तो स्वयं-शुक्र प्रपूर्ण ख्याता।
त्रियोग वहाँ केवल—मन्द पाये,
स्वरूप सिद्धे, विचरी विरामे ॥२॥

अर्थ—(१) रविवार—तपोपध्या ने रवि रूप थाय" अर्थात् सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र रूप मुनिपने के द्वारा निश्चय सम्यग्दर्शन पूर्वक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

निज शुद्धात्मतत्त्व के उग्र आलम्बन के बल द्वारा स्वरूप विश्रान्त निस्तरंग चैतन्य में प्रतापवन्त रहना, शुभाशुभ इच्छा का स्वयं उत्पन्न नहीं होना, वह इच्छा निरोध तप है, वही सच्चा तप है। धर्मध्यान मयी तप रूप मुनिपने के द्वारा यह जीव चैतन्य प्रकाशमय रवि रूप होता है।

(२) **सोमवार**—(चन्द्र को सोम कहते हैं) 'वो साधकर सोम रही सुहाय' अर्थात् मुनिपना को साधकर चन्द्र समान शान्त स्वरूप में सुशोभित रहते हैं।

(३) **मँगलवार**—'महान् वे मंगल पंक्ति पामे' अर्थात् पुण्य पाप रूपी मल रहित और पवित्रता सहित महान् उत्तम मंगल की पंक्ति को प्राप्त होता है।

(४) **बुधवार**—'आवे पिछे वे बुध के प्रणामे" वह बुधजन अर्थात् ज्ञानियों द्वारा वन्दनीय होते हैं।

(५) **गुरुवार**—'निर्ग्रन्थ ज्ञाता गुरु सिद्धि दाता' ऐसा गुरु निर्ग्रंथ है, स्वपर के ज्ञाता है और वह ही सिद्धि के दाता है।

(६) **शुक्रवार**—'या तो स्वयं शुक्र प्रपूर्ण ख्याता' अर्थात् वह स्वयं परिपूर्ण वीर्य प्रकट करके प्रसिद्ध होते हैं (१३ वां गुणस्थान है)।

(७) **शनिवार**—'त्रियोग वहाँ केवल मंद पामे' अर्थात् यहाँ १४ वां गुणस्थान लेना है यहाँ त्रियोग केवल मन्द अभाव होता है। मन्द कहो शनी कहो, एक ही बात है।

फल—'स्वरूप सिद्धे विचरी विरामे' उसके बाद जीव अल्पकाल में सिद्ध परमात्मा हो जाते हैं और सादि अनन्त काल तक लोकाग्रस्थित निज अक्षय अनन्त सुख में विश्रान्ति पाते हैं।

प्र० २१—आप कहते हो संसार में सुख नहीं है, हम तो लोगों को सुखी देखते हैं ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—संसार में दुःख ही है, सुख नहीं है, क्योंकि विचारो—कोई पुण्यशाली जीव है उसके विषय में विचारते हैं :

(१) सुबह क्यों उठता है ? उत्तर—दुःखी है इसलिए।
(२) टट्टी क्यों जाता है ? उत्तर—दुःखी है इसलिए।
(३) हाथ क्यों धोता हैं ? उत्तर—दुःखी है इसलिए।
(४) स्नान क्यों करता है ? उत्तर—दुःखी हैं इसलिए।
(५) कपड़े क्यों पहरता हैं ? उत्तर—दुःखी हैं इसलिए।
(६) मन्दिर क्यों जाता है ? उत्तर—दुःखी हैं इसलिए।
(७) मोटर में क्यों बैठता हैं ? उत्तर—दुःखी हैं इसलिए।
(८) रोटी क्यों खाता है ? उत्तर—दुःखी हैं इसलिए।
(९) पानी क्यों पीता हैं ? उत्तर—दुःखी हैं इसलिए।
(१०) दुकान पर क्यों जाता है ? उत्तर—दुःखी हैं इसलिए।
(११) रुपया क्यों इकट्ठा करता है ? उत्तर—दुःखी है इसलिए।
(१२) आराम क्यों करता हैं ? उत्तर—दुःखी है इसलिए।
(१३) शास्त्र क्यों पढ़ता हैं ? उत्तर—दुःखी हैं इसलिए।
(१४) दवाई क्यों खाता है ? उत्तर—दुःखी हैं इसलिए।
(१५) भोग क्यों करता हैं ? उत्तर—दुःखी है इसलिए।
(१६) सफर क्यों करता है ? उत्तर—दुःखी हैं इसलिए।

इस प्रकार मिथ्यादृष्टि जीव संसार में दुःखी ही है।

प्र० २२—हमें धर्म की प्राप्ति क्यों नहीं होती है ?

उ०—जिसका (आत्मा के आश्रय का) नम्बर रखना चाहिए सबसे पहले, उसका नम्बर रखता है आखरी में, इसलिए धर्म की प्राप्ति नहीं होती है। श्रीमद् राजचन्द्र जी ने किसी से पूछा, तुम धर्म क्यों नहीं करते ? उसने कहा, कि समय नहीं मिलता है, हम क्या करें ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्रीमद् ने पूछा, प्रश्न	उत्तर
(१) सोने का समय मिलता है ?	हाँ, मिलता है।
(२) घूमने का समय मिलता है ?	हाँ, मिलता है।
(३) रोटी खाने,पानी पीने का समय मिलता है?	हाँ मिलता है।
(४) अखबार पढ़ने का समय मिलता है ?	हाँ, मिलता है।
(५) वही देखने का समय मिलता है ?	हाँ, मिलता है।
(६) दुकानदारी का समय मिलता हैं ?	हाँ, मिलता है।

अरे भाई, तेरी ऐसी मान्यता है कि उपरोक्त कार्य किये बिना मैं दुःखी हो जाऊँगा अतः इन सबके लिए समय निकालता है यह तो दृष्टान्त है; उसी प्रकार यदि तेरी समझ में आजावे कि आत्म धर्म किया बिना मेरे को अनन्त काल तक दुःख भोगना पड़ेगा तो धर्म करने के लिए मुझे टाइम नहीं मिलता ऐसी बहानाबाजी कभी नहीं करोगे। तात्पर्य यह कि धर्म करने के लिए सतत प्रयत्नशील रहना चाहिए।

पन्द्रहवाँ पाठ

वीतराग-विज्ञानता के मिले-जुले प्रश्नोत्तर

प्र० १—क्या, जीव मेहनत करता है, तब संयोग-रुपया आदि का सम्बन्ध होता है ?

उ०—वर्तमान में जीव मेहनत करता है उसके साथ संयोग आदि का सम्बन्ध नहीं है। "सर्व जीवों के जीवन-मरण, सुख दुख, अपने कर्म के निमित्त से होता है"। जहाँ एक जीव अन्य जीव के इन कार्यों का कर्ता हो, वही मिथ्याध्यवसाय बन्ध का कारण है। अतः संयोग आदि में वर्तमान चतुराई कोई कार्यकारी नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[अ] वर्तमान में एक कसाई हजार गायों को मारता है, उसके बदले में उसे दो हजार रुपया मिलता है। गायों को मारने का भाव पाप भाव है। क्या पाप भाव से रुपयों की प्राप्ति का संयोग सम्बन्ध हो सकता है ? कभी भी नहीं।

[अ] डाक्टर एक मेंढ़क चीरता है, उससे ज्ञान का उघाड़ देखा जाता है। यदि सौ मेंढक चीरे जावे, तो बहुत ज्ञान का उघाड़ होना चाहिए ? मेंढक चीरने का भाव पाप भाव है। क्या पाप भाव से ज्ञान का उघाड़ हो सकता हैं ? कभी भी नहीं।

[इ] एक जीव सुबह से शाम तक मेहनत करता है फिर भी एक पैसा नहीं मिलता और कोई ना करे तो भी लाखों रुपया मिलता है ऐसा देखने में आता हैं।

इसलिए रुपया कमाने में वर्तमान चतुराई कार्यकारी नहीं है, वह तो पूर्व में पुण्य-पाप भाव किया था। उसका फल स्वरूप संयोग देखने में आता हैं।

वास्तव में जीव का कार्य ज्ञाता-दृष्टा है। वह संयोग आदि में कुछ फेरफार करे ऐसा है ही नहीं। ऐसा जानकर अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेकर ज्ञातादृष्टा बनना और स्वभाव की एकाग्रता करके धर्म की वृद्धि, और पूर्णता करना ही जीव की चतुराई है।

प्र० २—क्या बाह्य संयोग के अनुसार सुख-दुःख वा राग-द्वेष का माप है ?

उ०—नहीं है (१) एक के पास सौ रुपया है उसने एक हजार की इच्छा की और उस पर एक हजार हो गया तो वह अपने को सुखी मानता हैं और दूसरे के पास एक लाख रुपया है, उसका हजार खो गया तो वह अपने को दुःखी मानता है। विचारो, एक के पास ९९ गुना

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

अधिक रुपया है वह अपने को दु:खी मानता है और एक हजार वाला अपने को सुखी मानता है। इससे सिद्ध होता है कि बाहर के संयोग अनुसार सुख-दु:ख का माप नहीं है।

(२) एक को ९९ डिग्री बुखार है वह ज्यादा दु:खी दिखाई देता है दूसरे को १०५ डिग्री का बुखार है वह शान्त दिखाई देता है। विचारों, यदि बाह्य संयोग अनुसार सुख-दु:ख होता तो १०५ डिग्री वाला विशेष दु:खी होना चाहिए था, सो नही है। इससे सिद्ध होता है कि बाह्य संयोग अनुसार रागद्वेष का माप नहीं है, पर में एकत्व-बुद्धि ही एक मात्र दु:ख का कारण है।

प्र० ३—क्या बाह्य रागद्वेष के अनुसार ज्ञानी-अज्ञानी का माप है ?

उ०—नहीं है क्योंकि एक द्रव्यलिंगी मुनि है उसको कषाय बहुत मन्द है उसके पास कुछ भी परिग्रह नहीं है फिर भी वह अज्ञानी है और दूसरा ज्ञानी चक्रवर्ती है, जो ९६ हजार स्त्रियों के वृन्द में बैठा हो कभी लड़ाई भी लड़ता हो, तीर पर तीर चलाता हो उसे बाह्य में तीव्र कषाय देखने में आता है और बाह्य संयोग भी बहुत देखने में आता हो, फिर भी वह ज्ञानी है। इस-लिए यह सिद्ध हुआ कि बाह्य राग द्वेष अनुसार ज्ञानी अज्ञानी का माप नहीं है। इसमें से दो बोल निकले हैं—

(१) बाह्यसंयोग अनुसार रागद्वेष का माप नहीं है।

(२) बाह्य रागद्वेष अनुसार ज्ञानी-अज्ञानी का माप नहीं है।

क्योंकि मोक्षमार्गप्रकाशक अध्याय दूसरा पृष्ठ ४० में लिखा है कि 'परम कृष्ण लेश्या रूप तीव्र कषाय हो, वहाँ भी और शुक्ल लेश्या रूप मन्द कषाय हो वहाँ भी निरन्तर चारों ही का उदय रहता है क्यों कि तीव्र मन्द की अपेक्षा अनन्तानुबंधी आदि भेद नहीं हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ४—शास्त्राभ्यास किस लिए और कैसे करना चाहिए ?

उ०—एक कारीगर ने तीन पुतलियाँ बनायी। तीनों देखने में एक सी लगती थी। वह उनको बेचने के लिए राजा के दरबार में पहुँचा, राजा ने मन्त्री से तीनों का मूल्य लगाने के लिए कहा। लेकिन मन्त्री की समझ में नहीं आया। आठ दिन बाद तीनों पुतलियों की कीमत बताने को मन्त्री ने अनुमति माँगी। उनकी कीमत बताने के लिए आज सातवां दिन समाप्त होने को है परन्तु मन्त्री की कुछ समझ में नहीं आया। मन्त्री ने एक सलाई एक पुतली के कान में गेरी, वह आरपार निकल गयी। दूसरी पुतली के कान में गेरी वह मुँह से निकल गयी। और तीसरी पुतली के कान में गेरी, तो अन्दर समा गयी। मन्त्री बड़ा प्रसन्न हुआ।

राज दरबार में आकर मंत्रीं ने तीसरी पुतली की कीमत एक लाख रुपया लगाया बाकी दो पुतलियों की एक कानी फूटी कौड़ी भी नहीं। मन्त्री से यह बात स्पष्ट करने को कहा, कि जबकि तीनों पुतलियाँ एक सी हैं, तो दो की कीमत कुछ नहीं और तीसरी की एक लाख क्यों है? मन्त्री ने कहा नं० १ की पुतली से कहा जावे, तो यह दूसरे कान से जभी निकाल देती है। नं० २ की पुतली जो कुछ सुनती है वह दूसरों को सुना देती हैं। नं० ३ की पुतली जो कुछ सुनती है वह अपने में पचा लेती हैं; उसी प्रकार कुछ (१) जो जीव शास्त्र पढ़ता है या सुनता है, इधर सुना, उधर निकाल दिया, या पता ही नहीं, क्या सुना या क्या पढ़ा; यह व्यर्थ है। (२) जो जीव शास्त्र इसलिए पढ़ता या सुनता है, कि मैं सुनकर दूसरों को बताऊँ तो लोग मेरा मान-आदर करे; यह भी व्यर्थ है। (३) जो जीव शास्त्राभ्यास अपने कल्याण के लिए पढ़ता है या सुनता है अपने जीवन में घटित करता हैं; वह ही धन्य है। जैसा वस्तु का स्वरूप है वैसा का वैसा निर्णय करने से मन्द कषाय हो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जाती है और विशेष पुरुषार्थ करे, तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति हो जाती है। इसलिए शास्त्राभ्यास हमेशा अपने कल्याण के निमित्त ही कार्यकारी है।

प्र० ५—जैन धर्म का सेवन किसलिए है और किसलिए नहीं है?

उ०—जैनधर्म का सेवन तो संसार नाश के लिए किया जाता है परन्तु जो जीव शास्त्र पढ़कर, सुनाकर, पूजा करके, सिद्धचक्र आदि का पाठ करके रुपया पैसा लेते हैं वह तो पापी भी है और मिथ्यादृष्टि तो है ही। इसलिए पात्र जीव हिंसादि से आजीविकादि के अर्थ व्यापारादि करता हैं तो करे परन्तु पूजा आदि कार्यों में तो आजीविकादि प्रयोजन विचारना योग्य नहीं है। जो जीव रुपया-पैसा लेकर आजीविका आदि के अर्थ धर्म की बातें करते हैं, वे पापी हैं।

प्र० ६—वर्तमान में ज्ञानी जीव तो मिलते नहीं, तब रुपया-पैसा देकर हम शास्त्र-अभ्यास करे तो क्या नुकसान है?

उ०—श्रद्धानादिक गुणों के धारी वक्ताओं के मुख से ही शास्त्र सुनना। इस प्रकार के गुणों के धारक मुनि अथवा श्रावक-सम्यग्दृष्टि उनके मुख से तो शास्त्र सुनना योग्य है और पद्धति बुद्धि से अथवा शास्त्र सुनने के लोभ से श्रद्धानादिक गुणों से रहित पापी पुरुषों के मुख से शास्त्र सुनना उचित नहीं है। क्योंकि जिसको शास्त्र बाँचकर आजिविका आदि लौकिक कार्य साधने की इच्छा हो वह आशावान यथार्थ उपदेश नहीं दे सकता; इसलिए मिथ्यादृष्टि चाहे वह द्रव्यलिंगी मुनि क्यों ना हो, उससे उपदेशादि नहीं सुनना चाहिए। जैसे लौकिक में जिसको जो कार्य आता हो, वही उसी कार्य को सुचारु रूप से कर सकता है, दूसरा नहीं; उसी प्रकार सच्चे गुरुगम बिना शास्त्रों का अभ्यास अनर्थकारी है।

प्र० ७—अनादिकाल की भूल कैसे मिटे?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—जहाँ भूल है, वहाँ भूल को देखना, यही भूल को मिटाने का एकमात्र उपाय है। (१) जैसे मुंह पर दाग है और सामने शीशा है। यदि दाग को मिटाने के लिए हम शीशे को रगड़े, तो क्या मुँह का दाग दूर हो जावेगा ? कभी भी नहीं; उसी प्रकार गलती तो अपनी पर्याय में हैं, उसे दूर करने के लिए दूसरों का दोष देखे तो क्या कभी गलती दूर होवेगी ? कभी भी नहीं।

(२) जैसे सामने शीशा है, यदि हमारा मुँह टेड़ा है तो शीशे में टेड़ा दिखायी देगा, उसमें शीशे का दोष नहीं; यदि हम मुँह को टेड़ा नहीं देखना चाहते, तो उसका उपाय मुँह को सीधा करना हैं; उसी प्रकार दोष तो अपने में है,देखते हैं कर्म का या परद्रव्य का। यदि हम अपने में दोष नहीं देखना चाहते तो अपने स्वभाव का आश्रय ले।

(३) जैसे एक स्त्री जल भरने गयी, रास्ते में पीतल का कलशा गिर गया, उसमें खड्डा पड़ गया। यदि उस खड्डे को ऊपर उठाने के लिए ऊपर से हथौड़ा मारे, तो वह ऊपर नहीं आवेगा, बल्कि बढ़ता चला जावेगा। मात्र उसे ठीक करने का उपाय अन्दर से चोट मारे, तो ठीक हो सकता हैं; उसीप्रकार अज्ञानी जीव सुख-शान्ति-ज्ञान आदि की प्राप्ति के लिए बाह्य सामग्री, विकार की ओर दृष्टि करते हैं तो उन्हें सुख-शान्ति-ज्ञान प्राप्त नहीं होता है। जिसमें सुख-शान्ति-ज्ञान आता हैं यदि उसमें दृष्टि दे, तो ही उसकी प्राप्ति हो सकती है।

(४) आचार्यकल्प टोडरमल जी ने मोक्षमार्गप्रकाशक में कहा है कि "तत्त्व निर्णय न करने में किसी कर्म का दोष नहीं, तेरा ही दोष है। और जो अपना दोष कर्मादिक को लगाता है, तो तू स्वयं महन्त होना चाहता है, सो जिन-आज्ञा माने तो ऐसी अनीति सम्भव नहीं है।"

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५) जैसे कोई अपने हाथ में पत्थर लेकर अपना सिर फोड़ लें, तो पत्थर का क्या दोष ? उसी प्रकार जीव मोह-राग-द्वेष भावों से अपना बुरा करे, तो कर्म का क्या दोष ?

(६) समयसार कलश २२० तथा २२१ में लिखा है कि जीव का ही दोष है, कर्मादि का नहीं। जो पर का दोष देखते हैं, वह मोह नदी को कभी भी पार नहीं कर सकते हैं। इसलिए हे भव्य ! अपनी पर्याय में दोष अपने अपराध से है दूसरे के कारण नहीं, ऐसा जानकर अपने स्वभाव का आश्रय ले, तो दोषरहित स्वभाव दृष्टि में आवे तब धर्म की प्राप्ति हो, तब अनादि की भूल मिटे।

प्र० ८—:'जबकि ज्ञान से ज्ञान होता है" तब वाणी सुनो, सत्समागम करो, ऐसा उपदेश आप क्यों देते हैं ?

उ०—भगवान का गणधर चार ज्ञानधारी होता है और गणधर की उपस्थिति भगवान की देशना के समय अवश्य ही होती है। भगवान की दिव्यदेशना एक दिन में चार बार होती है। एक बार दिव्यदेशना ६ घड़ी होती है; इस प्रकार एक दिन में ८।। घण्टे से ज्यादा तो दिव्यदेशना धर्मवजीर गणधर भी श्रवण करता है। धर्मवजीर गणधर अन्तर्मुहूर्त में १२ अंग की रचना करता है। इतना ज्ञान का धनी होने पर भी भगवान की वाणी सुनता है, तब अल्पज्ञानी या अज्ञानी के लिए उसका निषेध कैसे हो सकता है ? कभी नहीं। परन्तु जो जीव स्वछन्दी हैं पूरीबात का विचार नहीं करते, वे ही कहते हैं कि "जव ज्ञान से ज्ञान होता है, तब वाणी, सत्समागम की क्या आवश्यकता है" ? लेकिन याद रखना चाहिए जवतक जीव विकार रहित नहीं होता, तबतक अल्पज्ञानी को वाणी सुनने का और सत्समागम करने का भाव आता ही है। तब जो अज्ञानी है, उनको तो निरन्तर सत्समागमादि होना ही चाहिए। हमेशा उपदेश तो आगे बढ़ने का ही दिया जाता है। जब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

तक केवलज्ञान ना हो, तब तक ज्ञानी भी वाणी श्रवण करते हैं। जो अपनी आत्मा में पूर्ण स्थिरता करके अरहंत सिद्ध बन जाते हैं उनकी बात, तथा जो श्रेणी में आरूढ़ होते हैं उनकी बात, यहाँ पर नहीं है।

प्र० ९—हमने तो भगवान की वाणी अनन्तवार सुनी है और आप कहते हैं कि गुरु की वाणी सुनो और सत्समागम करो परन्तु गुरु की वाणी, भगवान की वाणी के सामने क्या है ?

उ०—अज्ञानी कहता है कि मैंने अनेकों बार भगवान की दिव्य-वाणी को सुना है, अब गुरु की वाणी का मेरे ऊपर क्या असर होना है।

देखो,भाई ! जैसे एक राजा था। उसके पास बहादुर लड़ाका एक ऊँट था। दूसरे राजा ने उसके राज्य पर चढ़ाई करदी। वहाँ की जमीन रेतीली थी वहाँ पर घमासान लड़ाई हुई। उस बहादुर लड़ाके ऊँट ने बड़ी बहादुरी दिखाई। ऊँट की बहादुरी के कारण दूसरा राजा भाग गया। राजा ऊँट की बहादुरी पर बड़ा प्रसन्न हुआ। राजा ने उसको इनाम के बदले में एक ऐलान निकाल दिया कि "ऊँट अपनी इच्छानुसार जिस किसी के भी खेत में जाकर चर सकता है, उसे कोई मारे नहीं, यदि मारेगा तो दण्ड का भागी होगा।"

एक बार यह ऊँट एक हरे-भरे बड़े खेत में चला गया और चरने लगा। वहाँ के मालिक ने ढोल टाँग रक्खा था ताकि उसके बजाने पर जानवर भाग जावे और खेत को खराब ना करे। मालिक ने कई जानवरों के साथ ऊँट को खेत में चरते हुए देखकर ढोल बजाना शुरू किया। आवाज सुनकर और जानवर तो डर कर सब भाग गये, ऊँट चरता ही रहा। मालिक जोर-जोर से ढोल बजाता हुआ ऊँट के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नजदीक आया। तब ऊँट ने कहा कि मैंने बड़ी-बड़ी लड़ाइयाँ लड़ी हैं और बड़ी-बड़ी तोप बन्दूकों की गर्जना सुनी हैं, मैं तेरे ढोल रूपी पीपनी की आवाज सुनकर नहीं भाग सकता; उसी प्रकार (अ) यहाँ पर मिथ्यात्व रूपी ऊँट है, (आ) बन्दूक-तोपों की गर्जना रूपी भगवान की दिव्यध्वनि है, (इ) ढोल रूपी पीपनी की आवाज रूपी गुरु की अमृतमयी वाणी है।

मिथ्यात्व रूपी ऊँट कहता है, कि मैंने अनन्तवार समोशरण में तोपों-गोलों की आवाज रूपी भगवान की दिव्यध्वनि सुनी हैं। अब यह तेरी ढोल रूपी पीपनी की आवाज गुरु की वाणी मेरे लिए कुछ भी नहीं हैं।

ऐसे ही व्यवहाराभासी के नशे में निश्चय-व्यवहार के अर्थ को न जानने वाले अज्ञानी जन बकते हैं कि हमने भी शास्त्र पढ़े हैं, हम भी समयसार को पढ़ते हैं, गोमट्टसार के अभ्यासी हैं, इनके सामने गुरु की वाणी कुछ नहीं है।

वास्तव में जब तक जीव पर मिथ्यात्व रूपी भूत चढ़ा रहता है तब तक उसे भगवान की दिव्य देशना रूप गुरु की वाणी का बहुमान आता ही नहीं।

पात्र जीव को जब तक वह पूर्ण नहीं हो जाता तब तक अपने से बड़ों के प्रति आदर का भाव आता ही है। उनकी वाणी, सत्समागम और अपूर्ण शुद्ध पर्याय का ऐसा ही कोई निमित्ति-नैमित्तिक सम्बन्ध हैं। शुद्धि के साथ जो अशुद्धि है। उस अशुद्धि का और वाणी का निमित्तनैमित्तिक सम्बन्ध हैं, शुद्धि का नहीं। इसका प्रगट रहस्य अनुभव सम्यदर्शन होने पर ही होता हैं।

(१) चौथे गुणस्थान में निश्चय सम्यग्दर्शन प्रगट होता हैं तब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सच्चे देव गुरु के प्रति आदर का भाव आता हैं, कुगुरु के प्रति नहीं आता है। (२) पाँचवे गुणस्थान में १२ अणुव्रतादि का शुभभाव तथा छट्ठे गुणस्थान में २८ मूलगुण पालन का विकल्प आता हैं,इस भूमिका में ऐसा ही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

प्र० १०—चन्दन क्या शिक्षा देता है ?

उ०—जैसे चन्दन को घिसो तो सुगन्ध देता हैं, चन्दन पर कुल्हाड़ी मारो तो वह कुल्हाड़ी को भी सुगन्धित बना देता है, चन्दन को जलाओ तब भी वह अपनी सुगन्ध को नहीं छोड़ता हैं; उसी प्रकार हे आत्मा ! जब तुम्हें चन्दन के समान कोई घिसता नहीं, काटता नहीं, और जलाता नहीं, तब तुम अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को क्यों छोड़ते हो ? देखो, चन्दन पर कैसी कैसी मुसीबतें आने पर भी वह अपना सुगन्धी का स्वभाव नहीं छोड़ता; उसी प्रकार हे आत्मा ! तू अपने ज्ञायक स्वभाव को साथ रक्खे, तो संसार की कितनी ही प्रतिकूलता क्यों ना हो, तुझे दुःखी नहीं कर सकती। चन्दन पर जैसी-जैसी मुसीबतें आती है वैसी तेरे साथ नहीं, इसीलिए तू अपने ज्ञायक स्वभाव को पहिचाने तो 'चन्दन' को जाना कहलाया जावेगा।

प्र० ११—'गन्ना' क्या शिक्षा देता है ?

उ०—जैसे गन्ने को कोल्हू में पेलकर रस निकालते हैं। रस को खूब औटा करके गुड़ बनता है, यह हमेशा मीठा ही लगता हैं, उसी प्रकार हे आत्मा ! जब तुम्हें गन्ने के समान पेलता नहीं,ओटाता नहीं, तब तुम व्यर्थ में क्यों आकुलित होते हो ? इसलिए हे आत्मन् ! तुम त्रिकाको ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लो तो हमेशा गन्ने के समान मीठा ही स्वाद आवेगा और चारों गतियों का भवभ्रमण मिट जावेगा। गन्ना हमें यह शिक्षा देता है कि जिस प्रकार मैं अपने मीठे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पने के स्वभाव को कितनी ही प्रतिकूलता आने पर भी नहीं छोड़ता; तब तुम भी अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को कितनी ही प्रतिकूलता आने पर भी मत छोड़ो।

प्र० १२—सोना क्या शिक्षा देता है ?

उ०—जैसे सोने को गलाओ, तपाओ तो वह मैल को छोड़ देता हैं ; उसी प्रकार हे आत्मा ! तुम्हें कोई सोने के समान गलाता नहीं, तपाता नहीं, तो फिर तुम क्यों आकुलित होते हो ?

सोना सुनार से कहता है कि—

श्लोक—हे हेमकार, पर दुःख विचारमूढ़,
कि माँ मुहुः क्षिपसि वार शतानि वन्हौ।
दग्धे पुनर्मयिं भवन्ति गुणातिरेको,
लाभः परं खलु मुखे तव भस्म पातः॥

अर्थ—हे सुनार, तुम मुझे बार-बार अग्नि में क्यों तपाते हो ? तुम मुझे चाहे कितनी ही बार अग्नि में तपाओ; उससे मेरे में तो शुद्धि की वृद्धि ही होती है, लेकिन तुझे मुँह में राख के अलावा कुछ भी लाभ नहीं मिलेगा। सोने से हमें यह शिक्षा मिलती हैं कि हे आत्मा ! जिस प्रकार सोने पर मुसीबतें आने पर वह शुद्ध ही होता जाता हैं; उसी प्रकार सांसारिक प्रतिकूलता आने पर तुम भी अपने स्वभाव की दृष्टि करोगे, तो तुम्हें शुद्धोपयोगी की ही प्राप्ति होगी।

प्र० १३—'बावना चन्दन' क्या शिक्षा देता है ?

उ०—जैसे गरम उबलते हुए तेल में यदि नारियल गेरा जावे, तो उसके तत्काल ही टुकड़े-टुकड़े हो जाते हैं और जलकर खाक हो जाता है, लेकिन उस उबलते हुए तेल में जरा सा बावना चन्दन गेर दिया जावे तो वह उसी समय ठंडा हो जाता है; उसी प्रकार

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे आत्मा ! जब तुम अपने बावना चन्दन रूपी त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेवे तब क्षण भर में अनन्त संसार का ताप समाप्त हो जाता है। यह जीव अनादि काल से एक-एक समय करके संसार ताप से दुःखी होकर जल रहा है, इसको एक अपना स्वभाव ही संसार से पार होने में महा मन्त्र हैं। बावना चन्दन यह शिक्षा देता है कि मैं जरा सा इतने उबलते तेल को शीतल बना देता हूँ, तब हे आत्मा क्या तुम अनादि काल के ताप को क्षणभर में शान्त नहीं कर सकते ? यदि यह आत्मा एक क्षण के लिए अपने स्वभाव का आश्रय ले तो तुरन्त अनादि का जन्म-मरण समाप्त हो जावे। कहा है—

क्षणभर निज रस को पी चेतन, मिथ्या मल को धो देता है।
काषायिक भाव विनष्ट किये, निज आनन्द अमृय पीता है ॥

प्र० १४—'लकड़ी' क्या शिक्षा देती है ?

उ०—एक मनुष्य लकड़ी को देखकर कहने लगा कि "हे लकड़ी, क्या तुझे खबर है तेरा तरने का स्वभाव है, परन्तु तू लोहे का साथ करेगी तो डूब जावेगी।" इस पर लकड़ी बोली अरे मनुष्य ! हम तरे या डूबे, उसमें हमको कोई भी दुःख-सुख नहीं; इसलिए तू हमारी चिन्ता किसलिए करता है; तेरा तरने का स्वभाव है उसकी क्या तुझे खबर है ? तेरा तरने का स्वभाव होने पर भी, पर का संग मान करके संसार समुद्र में क्यों डूब रहा है ? क्यों दुःखी हो रहा है ? इसलिए तू हमारी चिन्ता छोड़कर और पर की भी चिन्ता छोड़कर, अपने त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव को पर से पृथक जानकर उसी की भावना कर, जिससे तू संसार समुद्र से पार होकर सिद्ध परमात्मा बन जावेगा। लकड़ी हमें शिक्षा देती है कि जैसे लकड़ी अपने स्वभाव को नहीं छोड़ती; उसी प्रकार हमें अपने ज्ञाता-दृष्टा स्वभाव को कभी भी नहीं छोड़ना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० १५— 'लकड़ी का छोटा टुकड़ा' क्या शिक्षा देता है ?

उ०—नदी, नहर, समुद्र में लकड़ी का टुकड़ा पड़ा हो, वहाँ कैसी भी बड़ी तरंगे उठ रही हो, परन्तु लकड़ी का टुकड़ा कभी भी डूबता ही नहीं; उसी प्रकार जो जीव अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लेता है, संसार में कितनी ही प्रतिकूलता क्यों ना हो, उसे डिगा नहीं सकती, वह हर समय कुन्दन ही रहेगा। लकड़ी का छोटा सा टुकड़ा हमें शिक्षा देता है कि जिस प्रकार मुझ पर लाखों तूफान आने पर भा, मैं अपने तरने का स्वभाव नहीं छोड़ता; उसीप्रकार हे आत्मा ! तुझे अपने ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर प्रतिकूल संयोगों और विकारी भावों के होने पर कभी भी स्वभाव में से विचलित नहीं होना चाहिए।

प्र० १६—'चीनी का नारियल' से क्या शिक्षा मिलती है ?

उ०—जैसा नारियल होता है वैसा ही चीनी का नारियल हो और आप उसे खावें तो उसमें मिठास ही मिठास आता है, आत्मा तो सम्पूर्ण अमृत की पूरी नारियली जैसा ही है उसके अनुभव करने से अमृततत्त्व की ही प्राप्ति होती है।

चीनी का नारियल हमें यह शिक्षा देता है कि जैसे मैं सब तरफ से मीठा ही हूँ; उसी प्रकार हे आत्मा ! तू भी हर समय ज्ञायक स्वभावी ही रहा है और रहेगा।

प्र० १७—'चन्दन का इच्छुक पुरुष' से क्या शिक्षा मिलती हैं ?

उ०—जैसे चन्दन का इच्छुक पुरुष जब चन्दन लेने जंगल में जाता है तो वह अपने साथ गरुड़ या मोर को ले जाता हैं। मोर या गरुड़ की टहुँकार की आवाज को सुनने ही चन्दन पर लिपटे हुए अजगर और साँप भी भाग जाते हैं। यदि चन्दन का इच्छुक पुरुष गरुड़ या मोर को साथ में नी ले जावे तो वह चन्दन को प्राप्त

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नहीं कर सकता; उसी प्रकार अनादिकाल से मिथ्यात्वरूपी अजगर रागद्वेष रूपी साँप चन्दन के समान शीतल आत्मा के ऊपर लिपटे हुए हैं; यदि यह जीव अपने ज्ञायक स्वभाव का टंकारा मारे, तो मिथ्यात्व-रागद्वेष रूपी अजगर और साँप सब स्वयं भाग जाते हैं। चन्दन के इच्छुक पुरुष के दृष्टान्त से यह शिक्षा मिलती है कि जैसे चन्दन का इच्छुक पुरुष अपने पास गरुड़ या मोर को रखता है तो वह चन्दन को प्राप्त कर लेता है, उसी प्रकार मोक्ष का इच्छुक अपने साथ अपने ज्ञायक स्वभावी आत्मा को रक्खे तो मिथ्यात्व-रागद्वेष कभी भी पास ना आवे।

प्र० १८—'कीचड़ में पड़ा सोना' क्या शिक्षा देता है ?

उ०—जैसे कीचड़ में सोना पड़ा हो, उसे कभी भी जंग नहीं लगती; उसीप्रकार जो जीव अपने ज्ञायक स्वभावी आत्मा का अनुभव करले तो संसार की कोई भी ताकत चारों गति रूपी कीचड़ में नहीं फंसा सकती। इससे हमें यह शिक्षा मिलती है कि जिस प्रकार कीचड़ में पड़े सोने को जंग नहीं लगती; उसी प्रकार जिसे अपने स्वभाव का अनुभव हो गया है, वह सम्यग्दृष्टि हो, गृहस्थ हो उसे मिथ्यात्वरूपी भूत कभी नहीं डसता।

प्र० १९—'अग्नि' हमें क्या शिक्षा देती है ?

उ०—जैसे अग्नि में जो डालो वह स्वाहा हो जाता है। वह किसी अल्प बहुत मूल्यवान वस्तु का ख्याल नहीं करती और जलने योग्य को जला ही देती है; उसी प्रकार हे आत्मा! तेरा कार्य ज्ञान है, तू क्यों व्यर्थ में परकी करूं-करूं की मान्यता में बावला होकर पागल हो रहा है। 'अग्नि हमको यह शिक्षा देती है कि जिस प्रकार मैं अपने जलाने के स्वभाव को नहीं छोड़ती; उसी प्रकार हे भव्य आत्मा! तुझे भी अपने ज्ञान कार्य को नहीं छोड़ना चाहिए।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० २०—साँप और नेवला' हमें क्या शिक्षा देता है ?

उ०—साँप और नेवला एक दूसरे का दुश्मन होता है। जब नेवला साँप के साथ लड़ाई करता है तो जंगल में एक नोलबेल नाम की जड़ी-बूटी होती है उसी के पास रहकर नौला साँप के साथ लड़ाई करता है, क्योंकि यदि लड़ाई में साँप काटले, तो उस नोलबेल बूटी को सूँघ लेने से उसका विष दूर हो जाता है, तो हर हालत में नेवला साँप को मार देता हैं; उसी प्रकार यह सारा संसार सर्प-रूप है और पुरुषार्थ करने वाला जीव नौला के समान है। संसार—जो अपने ज्ञायक स्वभाव को नहीं जानता हैं और संयोग और राग-द्वेष में उलझा रहता है इस बुद्धि का नाम संसार है।

संसार सर्प के समान हैं, उसकी जब पुरुषार्थ करने वाले जीव के साथ लड़ाई चलती है तो यह जीव अपने त्रिकाली अविनाशी आत्मा में एकत्वबुद्धि करता हैं, तो अनादिकाल की संसार बुद्धि दूर हो जाती है। कहा है कि—

सर्प रूप संसार है, नौल रूप नर जान।
सन्त बुटी संयोग तें, होत अहि-विषहाण॥

यह संसार सर्परूप है और नौलारूपी पुरुषार्थ करने वाला जीव है; जब यह जीव संसार के विषय भोगों की अनुकूलता और प्रतिकूलता में जलता हैं, तब उसको संतरूपी जड़ी-बूटी से सर्परूप जो मिथ्यात्व है, उसका नाश हो जाता है। यह जीव अनादिकाल से दुःखी हो रहा है, उसका कारण केवल यही है कि इसे सन्तरूपी बूटी नहीं मिली, सन्त रूपीबूटी जो अपना स्वभाव ही है, वह चारों गतियों में भ्रमण नहीं करने देता है, इसका पता न होने से दुःखी है। जिसे अपनी सन्तरूपी बूटो (ज्ञायक स्वभावी) का अनुभव-ज्ञान होता है, वह कभी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भी आकुलित नहीं होता है। साँप और नेवला के दृष्टान्त से यह शिक्षा मिलती है, जो अपने ज्ञायक स्वभाव बूटी का आश्रय लेता है उसे संसार में कभी भी परिभ्रमण नहीं करना पड़ता है, क्योंकि आत्मा संयोग, संयोगी भावों से, और भेद रूप व्यवहार से भिन्न है।

प्र० २१—जो जीव अपने ज्ञायक स्वभावरूप सन्त बूटी का आश्रय लेता है, तो उसे क्या-क्या प्रगट होता है और किस किसका अभाव होता है ?

उ०—(१) द्रव्य, क्षेत्र, काल, भव और भावरूप पाँच परावर्तन रूप संसार का अभाव हो जाता है।

(२) चारों गतियों से विलक्षण पंचमगति मोक्ष की प्राप्ति होती है।

(३) पंच परमेष्टियों में उसका नाम आ जाता है।

(४) पंचम परम पारिमाणिक भाव का महत्व आ जाता है।

(५) मिथ्यात्व, अविरति, प्रमाद, कषाय और योग पाँच कर्म बन्धन के कारण है, उनका अभाव हो जाता है।

प्र० २२—कर्म के उदय का क्या अर्थ है ?

उ०—उदय का अर्थ प्रगट है, जो कर्म सत्ता में पड़ा था, वह उदय में आया अर्थात् जो उदय में आता है, वह यह प्रगट करता है कि मैं जा रहा हूँ। कर्म बड़ा सज्जन है। वह कहता है कि मैं जा रहा हूँ, तुम आगे ऐसी ओंधाई मत करना, जो मुझे आना पड़े।

लेकिन अज्ञानी जीव कर्म के उदय में रागभाव करके अपना जीवन खोते रहते हैं। जैसे हमारे घर पर कोई मेहमान आवे, हम उसकी पूछताछ ना करें तो वह जल्दी ही चला जाता है। वास्तव में जब जीव पागलपन करता है तो उस समय कर्म का उदय निमित्त है। निमित्त विकार नहीं कराता है, परन्तु जीव विकार करे, तो वहाँ कौन उपस्थित है, उसका ज्ञान कराता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० २३—आजकल के कोई पंडित-त्यागी कहते हैं, कि कर्म चक्कर कटाता है और गोमटसार आदि शास्त्रों में भी लिखा है कि ज्ञानावरणीय कर्म का उदय ज्ञान—को नहीं होने देता है, कर्म के उदय से जीव भ्रमण करता है आदि तो ऐसा शास्त्रों में लिखा है, क्या वह असत्य है ?

उ०—शास्त्रों में जो लिखा है, वह तो सत्य है लेकिन उस कथन का क्या तात्पर्य है वह अज्ञानी नहीं जानता है :—

देखो भाई, कोई वकील का कार्य करता है तो उसमें दूसरा कोई आदमी दखल नहीं देता है। कोई डाक्टर डाक्टरी करता है, तो उसमें अन्य कोई दखल नहीं देता है। कहने का तात्पर्य यह है कि जो जिस व्यापार को करता है—जानता है, उसमें दूसरे व्यापारवाला दखल नहीं देता है।

लेकिन लोकोत्तर मार्ग में भी ऐसा करे कि जो आगम का अनुभवी ज्ञाता हो, उससे प्रथम धर्म श्रवण करे, निर्णय करे, तो किसी भी शास्त्र को पढ़े, तो दृष्टि ठीक होने से, वीतरागता ही प्रगट हो। मिथ्यादृष्टि जीव लोकोत्तर मार्ग में अपनी बुद्धि लगाते हैं, परन्तु उसका रहस्य ना जानने से धर्म की प्राप्ति नहीं होती है। मोक्ष-मार्ग प्रकाशक में लिखा है कि दिगम्बर जैन अनुयायी निरन्तर शास्त्रों का अभ्यास करता है, भगवान की आज्ञा मानता है, तब भी मिथ्यात्व का अभाव नहीं होता है। जिनागम में जो निश्चय-व्यवहाररूप वर्णन है उसका पता ना होने से वह संसार का पात्र बना रहता है।

जिसको अभी यह भी मालूम नहीं कि "मैं कौन हूँ? मेरा क्या कार्य है? कहाँ से मैं आया हूँ?" और पढ़ लिया गोमटसार। कहता हैं कि कर्म के कारण जीव चक्कर काटता है—यह जिनागम के अर्थ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

का अनर्थ करता है। इसलिए हे भाई ! जैसे लौकिक कार्य में जिसका अपने को पता नहीं, उसमें हम दखल नहीं देते है और जिसको उसका पता है उसकी बात मानते हैं; उसीप्रकार लोकोत्तर मार्ग में भी धर्मगुरु से, विनय से, निश्चय-व्यवहार का रहस्य जानकर अपनी आत्मा का आश्रय ले, तो भला हो।

प्र० २४—रागादि को पुद्गल का क्यों कहा है ?

उ०—(१)जैसे लड़का माँ का है परन्तु विवाह होने पर बहू का पक्ष करे तो तो बहू का कहलाता है; उसीप्रकार रागादिक पुद्गल के निमित्त से होता है, इसलिए रागादि को पुद्गल कहा है।

(२) जिसमें मिलना और बिछुड़ना हो, उसे पुद्गल कहते हैं; उसीप्रकार रागादि आते हैं चले जाते हैं, इसलिए रागादि को पुद्गल कहा है।

(३) रागादि आत्मा के स्वभाव में विघ्नकारक हैं, अतः रागादि को आत्म स्वभाव से विपरीत होने से पुद्गल कहा है।

(४) जाने सो चेतन और न जाने तो अचेतन। रागादि अपने को भी नहीं जानता, पर को भी नहीं जानता। इसलिए रागादि को अचेतन होने से पुद्गल कहा है।

(५) जो निकल जाता है, वह अपना नहीं। रागादि आत्मा से निकल जाता है, इसलिए रागदि को पुद्गल का कहा है।

रागादि अज्ञानी जीव की पर्याय में होता है, यदि वह स्वभाव का आश्रय लेकर उनको दूर करे तो रागादि पुद्गल का है ऐसा उनका कहना सार्थक है।

प्र० २५—रागादि को आपने पुद्गल कहा, क्या रागादि में स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण पाया जाता है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—नहीं रागादि में स्पर्शादि नहीं हैं, परन्तु जड़ है । वास्तव में रागादि ना जीव का है और ना पुद्‌गल का है, क्योंकि रागादि जीव के पास गये, तुम हमें अपने में मिलालो, तो जीव ने कहा, क्या तुम्हारे में चेतनपना है, वह वहाँ से भाग गया । फिर रागादि पुद्‌गल के पास गया, तुम हमें अपने में मिलालो, तब पुद्‌गल ने कहा, क्या तुम्हारे में स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण हैं, तो वह वहाँ से भी भाग गया अर्थात् त्रिशंकु की तरह रागादि बीच में लटकता रहता है ।

प्र० २६—आप कहते हो, पर वस्तु से आत्मा का कोई सम्बन्ध नहीं है । आत्मा पर वस्तु के ग्रहण-त्याग से रहित है, तो आत्मा रागादिक का ग्रहण तो न करे, किन्तु छोड़ तो सकता है ना ?

उ०—बिलकुल नहीं—(१) जैसे जिस समय लड़का उत्पन्न हुआ, क्या उसी समय वह मर सकता है ? आप कहेंगे, नहीं; उसी प्रकार जिस समय रागादि उत्पन्न हुआ उसी समय उसका अभाव नहीं हो सकता । भूत का राग है ही नहीं, वह तो समाप्त हो गया है । भविष्य का राग आया ही नहीं । उसको क्या छोड़े ? अतः आत्मा भूत-भविष्य-वर्तमान के राग का त्याग नहीं कर सकता है ।

(२) अज्ञानी कहता है जब राग आवेगा, तब मैं उसका अभाव कर दूंगा । किन्तु वह राग छद्‌मस्थ के ज्ञान में असंख्यात समय के बाद आता है, तब जो राग वह छोड़ना चाहता है वह तो असंख्यबार स्वयं बदल गया होगा अर्थात् उस राग का तो व्यय हो गया होगा, तो किसको छोड़ेगा ?

(३) जब एक समय की पर्याय पकड़ में आवेगी तब उसे केवल-ज्ञान होना चाहिए और केवलज्ञान होने से पहलें १२वें गुणस्थान में रागादि का सर्वथा अभाव हो जाता है । अतः राग का भी त्याग करना नहीं पड़ता है ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० २७—शास्त्रों में लिखा है कि रागादिक का त्याग करो, तो क्या यह असत्य लिखा है ?

उ०—नहीं, असत्य नहीं लिखा है। वह निमित्त की अपेक्षा कथन किया है। जैसे किसी को बुखार आया, डाक्टर ने दवाई दी, तो वह उतर गया। वास्तव में बुखार आया ही नहीं, उसको बुखार उतर गया, ऐसा बोलने में आता है; उसी प्रकार जीव ने अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय लिया, तो राग-द्वेष उत्पन्न ही नहीं हुआ, तो रागद्वेष को दूर किया ऐसा व्यवहार से कथन किया जाता है। क्योंकि स्वभाव का आश्रय लेना, अशुद्ध पर्याय का व्यय और शुद्ध पर्याय की उत्पत्ति का एक ही समय है।

प्र० २८—साकार, निराकार का किस-किस अर्थ में प्रयोग होता है ?

उ०—(१) दर्शनोपयोग को निराकार उपयोग कहते हैं, क्योंकि दर्शन पदार्थों को अभेदरूप से देखता है। (२) ज्ञानोपयोग को साकार उपयोग कहते हैं, क्योंकि ज्ञान पदार्थों को भिन्न-भिन्न जानता है।

दूसरी तरह से

(१) इन्द्रिय गम्य ना होनें से आत्मा को निराकार कहते हैं।
(२) प्रदेशत्वगुण के कारण आत्मा को साकार कहते हैं।

प्र० २९—सविकल्प और निर्विकल्प किस-किस स्थान पर प्रयोग होता है ?

उ०—(१) बुद्धिपूर्वक राग-अवस्था को सविकल्प अवस्था कहते हैं। (२) अबुद्धिपूर्वक राग सहित, किन्तु बुद्धिपूर्वक राग रहित अवस्था को निर्विकल्प अवस्था कहते हैं।

दूसरी तरह से।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१) ज्ञान में पदार्थ भिन्न-भिन्न जाना जाता है, इसलिए ज्ञान को सविकल्प कहते हैं। (२) दर्शन में पदार्थ अभेद रूप से देखा जाता है, इसलिए दर्शन को निर्विकल्प कहा जाता है।

प्र० ३०—सामान्य और विशेष किस-किस स्थान पर प्रयोग होता है ?

उ०—(१) दर्शन को सामान्य कहते हैं। (दर्शनोपयोग)

(२) ज्ञान को विशेष कहते हैं। (ज्ञानोपयोग)

दूसरी तरह से

(१) संक्षेप में (थोड़े में) बोलने के अर्थ में सामान्य कहते हैं, जैसे भाई थोड़े में वर्णन करो।

(२) विस्तारपूर्वक अर्थ के कथन करने को विशेष कहते हैं।

तीसरी प्रकार से

(१) द्रव्य को सामान्य कहते हैं (२) पर्याय को विशेष कहते हैं।

प्र० ३१—भेद अभेद किस-किस स्थान पर प्रयोग होता है ?

उ०—(१) एक वस्तु का दूसरी वस्तु से भेद करके जानना, उसे भेद कहते हैं। (२) भेद गेरे बिना देखना, वह अभेद है।

दूसरी तरह से

(१) गुण पर्याय को,भेद कहते हैं। (२) द्रव्य को, अभेद कहते हैं।

प्र० ३२—धर्म क्या है ?

उ०—जीव द्रव्य की अविकारी (शुद्ध) पर्याय, वह धर्म है।

प्र० ३३—अधर्म क्या है ?

उ०—जीव की विकारी पर्याय, वह अधर्म है।

प्र० ३४—सात तत्वों में धर्म का समावेश कौन-कौन से तत्वों में है ?

उ०—संवर-निर्जरा-मोक्ष में है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ३५—सात तत्वों में अधर्म का समावेश कौन-कौन से तत्वों में है ?

उ०—आस्रव-बंध, पुण्य-पाप में है।

प्र० ३६—धर्म कैसे उत्पन्न होता है ?

उ०—त्रिकाली द्रव्य का लक्ष्य करने से ही धर्म उत्पन्न होता है।

प्र० ३७—अधर्म कैसे उत्पन्न होता है ?

उ०—अपने त्रिकाली द्रव्य की ओर दृष्टि न करने से तथा पर पदार्थों पर दृष्टि देने से अधर्म उत्पन्न होता है।

प्र० ३८—हर समय क्या लक्ष्य करना ?

उ०—अनादि अनन्त अपना ज्ञायक स्वभावी जीव द्रव्य का लक्ष्य करना।

प्र० ३९—धर्म किसमें प्रगट होता है ?

उ०—पर्याय में प्रगट होता है, क्योंकि द्रव्य-गुण तो त्रिकाल शुद्ध ही है। पर्याय में शुद्धता का प्रगट होना, वह धर्म है।

प्र० ४०—रत्नकरण्डश्रावकाचार में धर्म किसे कहा है ?

उ०—सम्यग्दर्शनादि को धर्म कहा है।

प्र० ४१—रत्नकरण्डश्रावकाचार में अधर्म किसे कहा है ?

उ०—मिथ्यादर्शनादि को अधर्म कहा हैं। मिथ्यात्व सबसे बड़ा अधर्म-पाप है।

प्र० ४२—जीव को लोकाग्र जाने में एक समय से ज्यादा समय लगे, तो क्या हानि है ?

उ०—जब जीव सम्पूर्ण शुद्ध हो जाता है, तब उसमें सम्पूर्ण शक्ति प्रगट हो जाती है। यदि लोकाग्र जाने में एक समय से ज्यादा लगे, तो जीव की पूर्ण शक्ति प्रगट नहीं हुई ऐसा कहा जा सकता है। लेकिन पर्याय में पूर्ण शक्ति प्रगट हो गई हैं, इसलिए लोकाग्र जाने में एक समय ही लगता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ४३—छेद और छेदोपस्थापना किसे कहते हैं ?

उ०—अपने स्वरूप की रमणता से हटकर श्रद्धा सहित प्रमाद के वश होना, उसे छेद कहते हैं । उस प्रमाद को हटाकर अपने स्वरूप में आना, उसे छेदोपस्थापना कहते है । जैसे—सातवाँ गुणस्थान वाले मुनि जब छठ्ठे गुणस्थान में आते हैं, उसे २८ मूलगुण पालने का भाव आता है, उसका नाम भी छेद है । और उस वृत्ति को तोड़कर सातवें गुणस्थान में आना, छेदोपस्थापना है ।

प्र० ४४—सामायिक किसे कहते हैं ?

उ०—अपने स्वरूप में रमण करना, वह सामायिक है ।

प्र० ४५—सामायिक कितने प्रकार की है ?

उ०—(१) शक्तिरूप सामायिक, (२) एकदेश सामायिक, (३) पूर्णदेश सामायिक, यह तीन प्रकार की हैं ।

प्र० ४६—शक्ति रूप सामायिक क्या है ?

उ०—अनन्त गुणों का अभेद पिण्ड शक्तिरूप सामायिक है ।

प्र० ४७—एकदेश और पूर्णदेश सामायिक क्या है ?

उ०—शक्तिरूप सामायिक के आश्रय से जितनी अपूर्ण शुद्धि प्रगटी, वह एकदेश सामायिक है और पूर्णशुद्धि प्रगटी, वह पूर्णदेश सामायिक है ।

प्र० ४८—जो हम पाठ पढ़ते हैं माला जपते हैं नासाग्रदृष्टि करते हैं दो-दो घण्टे बैठते हैं क्या यह सामायिक नहीं है ?

उ०—पाठ पढ़ना, माला जपना, नाक की ओर देखना, दो-दो घण्टे बैठना यह सब पुद्गल की क्रिया है यह सामायिक नहीं हैं यह तो जड़ की क्रिया है । जो इसे सामायिक मानता है, स्थूलबुद्धि जड़ अनात्मा है ।

प्र० ४९—व्यवहार सामायिक किसे कहते हैं ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—जब ज्ञानी निर्विकल्पदशा से हटकर सविकल्पदशा में आता है, तब सामायिक पाठ आदि का विचार (भाव) उपचार से व्यवहार सामायिक नाम पाता है और तब शरीर आदि की और बोलने आदि की जड़ की क्रिया को उपचार का उपचार करके कथन किया जाता है, कि यह व्यवहार सामायिक है। "है नहीं, परन्तु कहा जावे" तब व्यवहार सामायिक है।

प्र० ५०—अज्ञानी को कौनसी सामायिक कही जाती है ?

उ०—किसी भी प्रकार की सामायिक अज्ञानी को होती ही नहीं, क्योंकि सामायिक की शुरूआत चौथे गुणस्थान से होती है।

प्र० ५१—सच्ची सामायिक के लिए हम क्या करें ?

उ०—प्रथम सच्चेदेव-गुरु-शास्त्र का निर्णय करके, सात तत्त्वों के विचारपूर्वक, स्व-पर का भेद विज्ञान करे, तब स्व को स्व जाने, पर को पर जाने। तब स्वरूप की प्रतीति होने पर ही सामायिक की शुरूआत होती है।

शक्तिरूप सामायिक के बिना एकदेश सामायिक की प्राप्ति नहीं होती। एकदेश सामायिक को प्राप्त किये बिना पूर्णदेश सामायिक की प्राप्ति नहीं होती हैं। एकदेश सामायिक प्रगट होने पर व्यवहार सामायिक नाम पाता हैं।

प्र० ५२—मुक्ति के कितने भेद हैं और कैसे प्राप्त हो ?

उ०—(१) शक्तिरूप मुक्ति, (२) दृष्टि मुक्ति, (३) मोहमुक्त मुक्ति, (४) जीवनरूप मुक्ति (५) विदेहरूप मुक्ति।

शक्तिरूप मुक्ति के आश्रय बिना दृष्टि मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है। दृष्टि मुक्ति प्राप्त किये बिना मोहमुक्त मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती है। मोहमुक्त मुक्ति प्राप्ति किये बिना जीवन मुक्ति की प्राप्ति नहीं होती हैं। जीवन मुक्ति की प्राप्ति किये बिना विदेहरूप मुक्ति

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की प्राप्ति नहीं होती। इसलिए हे भव्य ! एकबार शक्तिरूप मुक्ति का आश्रय ले, तो सब मुक्तियों का पता चलता हैं, अपना अनुभव हुए बिना किसी भी मुक्ति का पता नहीं चल सकता हैं।

प्र० ५३—आप्त किसे कहते हैं ?

उ०—वीतराग-सर्वज्ञ और हितोपदेशी को आप्त कहते हैं।

प्र० ५४—जो वीतराग हो, वह सर्वज्ञ है या नहीं ?

उ०—११-१२ वें गुणस्थान में वीतराग हैं, सर्वज्ञ नहीं है।

प्र० ५५—सर्वज्ञ हो, वह वीतराग है, या नहीं ?

उ०—नियम से है, क्योंकि १३ वें गुणस्थान में सर्वज्ञ हैं। वह १२वें गुणस्थान में वीतराग हो ही जाता हैं।

प्र० ५६—पूर्ण आप्तपना नियम से किसके होता है ?

उ०—तीर्थंकर के ही होता हैं, क्योंकि उनकी दिव्यध्वनि खिरती हैं।

प्र० ५७—तीर्थंकर पद का बंध, तीर्थंकर के लिए कार्यकारी है, या भव्य जीवों के लिए कार्यकारी है ?

उ०—तीर्थंकर पद का बंध जिस जीव को प्राप्त होता हैं, उसका फायदा ना तो स्वयं तीर्थंकर होने वाले को है, और ना भव्य जीवों के पार के लिए हैं, क्योंकि तीर्थंकर प्रकृति विशिष्ट पुण्य प्रकृति हैं।

प्र० ५८—तीर्थंकर पद का बंध तीर्थंकर होने वाले के लिए, क्यों कार्यकारी नहीं है ?

उ०—(१) जैसे महावीर स्वामी के जीव को नन्दराजा के भव में तीर्थंकर गोत्र का बंध हुआ। उससे उनके तीन भव बढ़ गये। यदि वह उस समय विशेष स्थिरता करके अपने में पूर्ण लीन हो जाते, तो उसी भव से मोक्ष हो जाता।

(२) तीर्थंकर प्रकृति का उदय १३वें गुणस्थान में आता हैं, तो

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

विचारों तीर्थंकर पद का बंध, तीर्थंकर के लिए क्या कार्यकारी रहा ? कुछ भी नहीं, क्योंकि उनको जो समोसरणादि ऋद्धि की प्राप्ति हुई, वह तो उनका ज्ञान का ज्ञेय बना।

प्र० ५९—क्या भव्य जीवों को पार करने के लिए भी तीर्थंकर पद कार्यकारी नहीं है ?

उ०—नहीं है, क्योंकि कोई जीव भगवान के समोसरण में दिव्यध्वनि सुन रहा है, उसका उपयोग दिव्यध्वनि की ओर रहे, तो वह धर्म प्राप्त नहीं कर सकता है, इसलिए तीर्थंकर पद से भी दृष्टि उठावो। एकमात्र अपने स्वभाव का आश्रय लो, तो ही धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्र० ६०—आत्मा में बंध तथा पुद्गल में बंध कैसे होता है ?

उ०—(१) कर्म आठ हैं, इनमें से अघाति कर्म तो बंध के कारण नहीं है, क्योंकि अघाति के कारण संयोग मिलता है। (२) घातियों में से ज्ञानावरण-दर्शनावरण और अन्तराय का क्षयोपशम किसी ना किसी अंश में सर्व संसारी जीवों को प्रगट है। इन तीनों की हीनादिक अवस्था बंध का कारण नहीं है। ज्ञान-दर्शन-वीर्य का जितना उघाड़ हैं, वह भी बंध का कारण नहीं है, क्योंकि वह स्वभाव का अंश है। यदि स्वभाव बंध का कारण हो, तो स्वभाव त्रिकाल है, फिर बंध भी त्रिकाल हो जावेगा, इसलिए जितना उघाड़ है वह बंध का कारण नहीं है। ज्ञान-दर्शन-वीर्य का जितना अभाव है वह भी बंध का कारण नहीं है। (३) अब रहा मोहनीय। उसमें भी विशेष बन्ध का कारण दर्शनमोहनीय का उदय है और चारित्र मोहनीय के उदय से जो रागद्वेष होता है वह भी बंध का कारण है।

प्र० ६१—पाँच भावों में, से बंध का कारण कौन है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—पाँच भावों में से मात्र औदयिक भाव ही बंध का कारण है, किन्तु सर्व ओदयिक भाव भी बंध के कारण नहीं है, किन्तु मिथ्यात्व, असंयम, कषाय और योग ये चार बंध के कारण हैं।

[धवला भाग सात पृष्ठ ९]

पुद्गल में स्पर्श-रस-गन्ध-वर्ण आदि सब पाये जाते हैं। इसमें भी स्पर्श को छोड़कर बाकी गुणों की पर्यायों के कारण बंध होता ही नहीं। स्पर्श गुण की ८ पर्यायें हैं। इन आठ पर्यायों में से मात्र स्निग्ध और रुक्ष इन दो पर्यायों में ही बंध होता है।

पुद्गल में स्निग्ध—रुक्ष के कारण बंध होता है।
जीव में राग—द्वेष के कारण बंध होता है।

प्र० ६२—यह जीव स्वयं स्वर्ण अक्षरों में निगोद के टिकट पर हस्ताक्षर कैसे कर रहा है ?

उ०—इंगलैण्ड में जिस समय चार्ल्स चौथा राजा था। उस समय वहाँ की पार्लियामेण्ट ने चार्ल्स के लिए फांसी का प्रस्ताव पास किया। चार्ल्स के पास हस्ताक्षर करने के लिए भेज दिया, क्योंकि वहाँ पर उस समय ऐसा ही कायदा था, कि पार्लियामेण्ट द्वारा पास होने पर भी जब तक किंग के हस्ताक्षर नहीं हो जावे, तब तक वह पास नहीं माना जाता था।

देखो, उस समय राजा ने अपनी फांसी पर स्वयं हस्ताक्षर किये; उसी प्रकार अनादिकाल से मोह रूपी पागलपन के कारण यह अज्ञानी जीव क्षण-क्षण मे भावमरण कर रहा है। संसार में इसका किसी के साथ सम्बन्ध नहीं है. लेकिन यह अज्ञानी जीव जहाँ भी जाता है, वहाँ पर 'यह मेरा, यह तेरा', करता रहता है, 'किसी पदार्थ को इष्ट मानता है और किसी को अनिष्ट मानता है जबकि कोई भी पदार्थ इष्ट-अनिष्ट नहीं है, इसी कारण यह जीव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाव-मरण करता आ रहा है और निगोद का पात्र बनता रहता है।

प्र० ६३—रागद्वेष की उत्पत्ति का क्या कारण है ?

उ०—आत्म तत्त्व से छूटकर, परद्रव्य का लक्ष करना वह रागद्वेष की उत्पत्ति का कारण है और पुद्‌गल कर्म के प्रदेशों में स्थित होना, यह निमित्त कारण है। [समयसार के शब्दों में]

हर कार्य में दो कारण होते हैं; (१) उपादान कारण, (२) निमित्त कारण।

(१) रागद्वेष की उत्पत्ति में अनादिकाल से एक-एक समय करके निमित्त कारण मोहनीय कर्म है। (२) उपादान कारण अपने त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव का आश्रय ना लेना अर्थात् उससे खिसक जाना है। वास्तव में आत्म स्वभाव से भ्रष्ट होना ही रागद्वेष की उत्पत्ति का उपादान कारण है। जब उपादान कारण होता है उस समय निमित्त मोहनीय कर्म का उदय होता ही है ऐसा सहज ही निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध है।

प्र० ६४—रागद्वेष के अभाव में उपादान और निमित्त क्या है ?

उ०—मोहनीय कर्म का अभाव निमित्त कारण है और त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव का आश्रय यह उपादान कारण है।

प्र० ६५—साधक जीव को रागद्वेष की उत्पत्ति में क्या कारण है ?

उ०—४-५-६ गुणस्थान में अपनी-अपनी भूमिका अनुसार शुद्ध परिणति तो निरन्तर रहती है। श्रद्धा गुण की तो निर्मल पर्याय सौ टका पूरी-पूरी है, लेकिन साधक को चारित्र गुण की एक समय की पर्याय में दो धारा चलती हैं; एक शुद्ध, दूसरी अशुद्ध। इसकी पहिचान ज्ञानियों को है, अज्ञानियों को नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

शुद्ध परिणति में जितनी स्थिरता होती है वह तो रागद्वेष का अभाव रूप वर्तती है और जितना वह अपने से खिसक जाता है वह रागद्वेष की उत्पति का मूल कारण है।

प्र० ६५—एक मुमुक्षु भाई की की पंडित जी के साथ आपस में क्या चर्चा हुई थी ?

प्र० —मुमुक्ष=रागद्वेष की उत्पत्ति का क्या कारण है ? साथ ही आप यह तो जानते और मानते ही है, कि हर कार्य की उत्पत्ति में दो कारण होते हैं-उपादान और निमित्त। रागद्वेष की उत्पत्ति में निमित्त कारण मोहनीय कर्म है इसमें आपको और हमें, किसी को भी आपत्ति नहीं हैं, लेकिन पण्डित जी ! उपादान कारण क्या है ?

उ०—पण्डितजी=वैभाविक शक्ति उपादान कारण हैं।

प्र०—मुमुक्षु=वैभाविकशक्ति गुण है, यदि वह रागद्वेष का उपादान कारण हो, तो सिद्धों में भी राग होना चाहिए, इसलिए पण्डित जी वैभाविक शक्ति तो रागद्वेष का उपादान कारण प्रतीत नहीं होता है।

उ०—पण्डित जी=फिर आप ही बताइए।

प्र०—मुमुक्षु=मैं तो आपको बता ही दूँगा, लेकिन आपसे ही इसका उत्तर कहलवाना चाहता हूँ। अच्छा पण्डित जी, आप थोड़ी देर के लिए इस प्रश्न को डिपोजिट रखिये और पण्डित जी ! यह बताइये कि "रागद्वेष के अभाव का क्या कारण है ?

उ०—पण्डित जी=निमित्त कारण मोहनीय कर्म का अभाव है और उपादान कारण त्रिकाली स्वभाव का आश्रय है।

प्र०—मुमुक्षु=ठीक है, पंण्डित जी ! देखिये जैसे रागद्वेष के अभाव का उपादान कारण त्रिकाली स्वभाव का आश्रय है, उसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार रागद्वेष की उत्पत्ति का उपादान कारण अपने त्रिकाली स्वभाव का आश्रय ना करना, यह है। देखिये पण्डित जी, जो बात डिपोजिट रक्खी थी उससे यह हल हो जाता है, या नही।

उ०—पण्डित जी=ठीक हैं, आपका ज्ञान विशाल है।

प्र०—रागद्वेष की उत्पत्ति का कारण स्वभाव का आश्रय ना करना है, इसके लिए क्या शास्त्राधार है ?

उ०—(१) आत्मा के रागादिक उत्पन्न होते हैं वह अपने ही अशुद्ध परिणाम हैं। निश्चय से विचार किया जाये, तो अन्य द्रव्य (द्रव्यकर्म) रागादिक का उत्पन्न करने वाला नहीं हैं; अन्य द्रव्य उनका निमित्त मात्र है; क्योंकि अन्य द्रव्य के, अन्य द्रव्य-गुण-पर्याय उत्पन्न नहीं करते ऐसा नियम है। जो ऐसा मानते है कि पर द्रव्य ही मुझे रागादिक उत्पन्न कराते हैं" वे नय विभाग को नहीं समझते हैं, वे मिथ्यादृष्टि हैं। यह रागादिक जीव के सत्त्व में उत्पन्न होते हैं, पर द्रव्य निमित्त मात्र है-ऐसा मानना, वह सम्यग्ज्ञान है।

[समयसार गा ३७२ की टीका का भावार्थ]

(२) परमार्थ से आत्मा अपने परिणामस्वरूप ऐसे उस भाव कर्म का ही कर्ता हैं, ÷ ÷ ÷ परमार्थ से पुद्गल अपने परिणामस्वरूप ऐसे उस द्रव्यकर्म का ही कर्ता हैं, परन्तु आत्मा के कर्मस्वरूप भाव कर्म का नहीं। कहा है कि—

उपादान निजगुण जहाँ, तहाँ निमित्त पर होय।
भेद ज्ञान प्रमाण विधि, विरला बूझे कोय॥

प्र० ६७—सपूर्ण सुखी होने का उपाय क्या है ?

उ०—वस्तु स्वरूप को समझने से ही आकुलता मिटेगी, अन्य कोई उपाय नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जैसे कोई मूर्ख मुर्दे को जिन्दा माने, उसे खिलाना चाहे, पिलाना चाहे और मुर्दा खावे-पीवे नहीं, तो उसकी आकुलता कभी भी दूर नहीं होगी। इससे उल्टा मुर्दा को मुर्दा माने, जिलाने से जियेगा नहीं, खिलाने से खायेगा नहीं, तभी शान्ति प्राप्त हो सकती है; उसी प्रकार अनादिनिधन वस्तुएँ भिन्न-भिन्न अपनी मर्यादा सहित परिणमित होती है, कोई किसी के आधीन नहीं, कोई किसी के परिणमित कराने से परिणमित नहीं होती है, तथापि मिथ्यादृष्टि सोचता हैं, मैं जैसा चाहूँ वैसा पदार्थ परिणमन करे तब ठीक हो। सब मेरे मित्र हो, दुश्मन ना हो। सब मेरी प्रशंसा करे व निन्दा ना करे। संसार में मैं सबसे बड़ा कहलाऊँ, सब मेरे दास रहे, आदि अगणित इच्छा करके दुःखी होता है। इसलिए उन्हें यथार्थ मानना और परिणमित कराने अन्यथा परिणमित नहीं होगे, ऐसा मानना ही दुःख दूर होने का उपाय है। भ्रम जनित दुःख दूर करने का उपाय भ्रम दूर करना ही है। सो भ्रम दूर होनेसे सम्यक् श्रद्धान होता है। वही सत्य उपाय आकुलता मिटाने का है, अन्य नहीं।

प्र० ६८—कोई दिगम्बर नाम धराके निश्चय रत्नत्रय १२ वें गुणस्थान में व कोई ८ वें गुणस्थान में और कोई १३ गुणस्थान में बतलाते हैं, क्या यह बात ठीक है ?

उ०—वास्तव में निश्चय रत्नत्रय की शुरूआत चौथे गुणस्थान से ही होती है। चौथे गुणस्थान में कषाय की एक चौकड़ा अभावरूप, पाँचवें में दो चौकड़ी अभाव रूप, छट्ठे में तीन चौकड़ो अभाव रूप शुद्ध अंश होता हैं उतना निश्चय रत्नत्रय होता है, क्रम-क्रम से बढ़ता जाता है। जो जीव उल्टा बोलते हैं उनका क़थन मिथ्या है, क्योंकि "अचिरात्-शीघ्र तद्भवे तृतीय भवादौ वा अवश्यं-नियमतः समयस्य-पदार्थस्य-सिद्धान्तशासनस्य वा सारं परमात्मानं-टंकोत्कीर्ण स्वभावं विदंति-लभते, साक्षात् परमात्मा भवतीति यावत्।" देखिए, निश्चय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

रत्नत्रय से एक भव, दो भव या तीन भव में निर्वाण को प्राप्त होता है।'' यदि ८, १२-१३ वें गुणस्थान में निश्चय रत्नत्रय हो, तो वहाँ दो भव या तीन भव की बात कहाँ रही? क्योंकि १२-१३ वां गुणस्थान हो उसको उसी भव से नियम से मोक्ष हो जाता है। (सर्व विशुद्धि अधिकार कलश ४७ टीका शुभचन्द्राचार्य)

तथा नियमसार परमभक्ति अधिकार गाथा १३४ में लिखा है 'जो श्रावक व श्रमण सम्यग्दर्शन-ज्ञान-चारित्र की भक्ति करते हैं, उसको भगवान ने निर्माण की भक्ति कही है।

प्र० ६९—यह जीव इतना सुनने पर भी क्यों नहीं चेतता है?

उ०—(१) जैसे कोई आदमी मोटे-मोटे तीन गद्दे ओढ़कर सो रहा है उसे कितना हो मारो, वह उठता ही नहीं; उसी प्रकार अनादि काल से यह जोव मिथ्यादर्शन-ज्ञान चारित्र रूप तीन गद्दे ओढ़कर सो रहा है। उसे सद्गुरु कितना ही जगाये, वह उठता ही नहीं है। (२) जैसे कोई पतली चादर ओढ़कर सो रहा है उसे जरा हिला दो, वह तुरन्त उठ जाता है; उसी प्रकार पात्र जीव को जरा ही कहो कि 'तू भगवान है तो फौरन जाग जाता है।

प्र० ७०—श्री कानजी स्वामीजी निश्चय को तो मानते हैं और व्यवहार को मानते ही नहीं, क्या यह बात ठीक है?

उ०—जैसे एक करोड़पति का एक ही लड़का था, उसे जवानी में वेश्या सेवन का शौक पड़ गया। उसके पिताजी ने यह देखकर कि लड़का बिगड़ता जा रहा है उसकी शादी करने का निश्चय किया। लड़की वाले रोजाना आते थे कि हमारी लड़की ले लो, तब सेठ जी ने एक बहुत सुन्दर लड़की से लड़के का रिस्ता तै कर दिया जब उस वैश्या को पता लगा कि इसका विवाह हो रहा हैं, तो उसने उस लड़के से कहा, जिससे तुम्हारा विवाह हो रहा है तुम उसको

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

देखोगे, तो अन्धे हो जावोगे। लड़का वेश्या के प्रेम में पागल हो रहा था, उसने विवाहिता स्त्री की शक्ल न देखने का निश्चय किया। तब सेठजी ने एक तरकीब सोची और लड़की वाले को बुलाकर कहा देखो जी,हमारे यहाँ यह रिवाज है कि जब लड़के के फेरे पड़ते हैं, तो उसकी आँख पर पट्टी बाँधकर ही पड़ते हैं। लड़की वाले ने उसे स्वीकार किया। विवाह हो गया। जब लड़का घर पर आता पट्टी बांधकर आता, तब लड़की को उसकी बात का पता चल गया। पाँच दिन बाद लड़की ने कहा, देखो आप मुझे देखोगे, तो अन्धे हो जावोगे। आप कृपा करके ऐसा करो, एक आँख की पट्टी खोल दो और उससे आप मुझे देखो, तब उसने ऐसा ही किया। तब लड़की ने कहना, अब आप इस पट्टी को इस आँख पर बाँधलो, तो मुझे इस आँख से देखो, तब उसने ऐसा भी किया। तब फिर कहा, अब दोनों से पट्टी हटाकर मुझे देखो, तब ऐसा ही किया, तो वह अन्धा नही हुआ और उस पर मोहित हो गया, और वेश्या के यहाँ जाना छोड़ दिया; उसी प्रकार जो यह कहते हैं कि सोनगढ़ वाले निश्चय को तो मानते हैं और व्यवहार को नहीं मानते तो उनकी एक आँख तो तुम्हारे हिसाब से उघड़ी हुई है। परन्तु जरा दूसरी आँख उघाड़ कर देखो, तो वहाँ पर (सोनगढ़में) सुबह से शाम तक कैसा व्यवहार होता है, देवदर्शन, पूजा, स्वाध्याय, कीर्तन- तत्वचर्चा होती हैं। ६० के करीब तो पढ़ी लिखी बहनों ने आजन्म ब्रह्मचर्य व्रत लिया हुआ है, वहाँ पर कोई आदमी अभक्ष्य आलू आदि नहीं खाता। रात्रि को पानी तक नहीं पीता। ज्यादातर वहाँ पर रहने वाले पति-पत्नी ब्रह्मचर्य सहित रहते हैं। सोनगढ़ जैसा व्यवहार दुनियाँ में देखने को नहीं मिलता हैं। इसलिए ऐसा कहना कि सोनगढ़ वाले व्यवहार को नहीं मानते हैं। ऐसा कहने वाले समाज में उल्टी बात बतलाकर भ्रम फैलाते हैं ऐसे भ्रम से बचना पात्र जीवों का परम कर्तव्य है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

क्योंकि निश्चय व्यवहार एक साथ साधक को होता हैं ऐसा द्रव्य-संग्रह गा० ४७ में बताया है। निश्चय सम्यग्दर्शन होने पर ही व्यवहार होता है।

प्र० ७१—आप कहते हो (१) कोई आत्मा शरीर का काम नहीं कर सकता, (२) रोटी खाने का कार्य पुद्गल का ही है, आत्मा का नहीं, (३) कर्मों के उपशमादि कार्माण वर्गणा का ही कार्य है, जीव से उसका सम्बन्ध नहीं है, (४) गुरु से, शास्त्र से, दिव्यध्वनि से लाभ नहीं होता हैं, अपने से ही लाभ होता है, (५) कर्म चक्कर नहीं कटाते, जीव अपनी मूर्खता से ही चक्कर काटता है, लेकिन हमको तो जैसा आप कहते हो उससे उल्टा ही दीखता हैं, इसका क्या कारण है ?

उ०—(१) जैसे किसी की आँख में पीलिया रोग हो गया तो उसे सब चीजें पीली ही दीखती हैं; उसी प्रकार अज्ञानियों को सब बातें शास्त्र से विरुद्ध ही दिखाई देती हैं।

(२) जैसे आप रेल में जाते हैं वहाँ से बाहर की तरफ देखे तब पेड़ चलते हुए दीखते हैं। क्या पेड़ चलते हैं ? आप कहेंगे नही; उसी प्रकार अज्ञानी को सब कार्य शरीरादि के हम करते हैं ऐसा दिखता है। लेकिन जैसे आपके ज्ञान में आता है कि पेड़ चलते नहीं हैं। वैसे ही जिनेन्द्र भगवान की आज्ञा मानकर अपने स्वभाव का आश्रय ले, तो सही बात ध्यान में आवे।

(३) "बछेरे के अण्डे के समान आत्मा ने किया, ऐसा अज्ञानी मानता है। बछेरे के अण्डे का दृष्टान्त निम्न प्रकार से है: एक बार एक दरबार दो सुन्दर घोड़े के बछेरे को खरीदने के लिये बाहर निकला। दरबार पहले कभी महल से बाहर नहीं निकला था, इस-लिए उसे दुनियाँ का कोई अनुभव नहीं था। वह बछेरे खरीदने एक

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाँव से दूसरे गाँव में जा रहा था। बीच में उसे कुछ ठग मिले। बातचीत में उन ठगों ने जान लिया कि दरबार बिल्कुल अनुभव हीन है और बछेरे खरीदने बाहर निकला है। उन ठगों ने दरबार को ठगने को निश्चय किया और दो बड़े काशीफल लेकर एक पेड़ पर टाँग दिये। उसी पेड़ के पास वाली झाड़ी में दो खरगोश के बच्चे छिपा रक्खे थे। उन ठगों ने दरबार से कहा, हमारे पास बछेरे के दो सुदन्र अण्डे हैं इनमें से दो सुन्दर बछेरे निकलेंगे। दरबार से सौदा तै करके दो हजार रुपया ले लिए। फिर उस पेड़ पर छिपा कर रक्खे हुए दोनों काशीफलों को नीचे गिरा दिया। नीचे गिरते ही वे फट गये आर जोर से धड़ाका हुआ, उस धड़ाके की आवाज सुनकर वे खरगोश के बच्चे झाड़ी में से निकल कर भागे। तब वे ठग ताली बजाकर हंसे और बोले महाराज महाराज, अण्डे तो फूट गये। वे तुम्हारे दोनों बछेरे भागे जा रहे हैं। पकड़ो-पकड़ो। दरबार उन्हें सचमुच बछेरे जानकर उन्हें पकड़ने दौड़ा। परन्तु वे खरगोश किसी झाड़ी में छिप गये, हाथ न आये, दरबार मन मार कर घर आ गया। घर आकर अन्तःपुर के लोगों ने पूछा कि महाराज, बछेरों का क्या हुआ ? तब दरबार ने अण्डे खरीदने की समस्त वार्ता कह सुनाई और कहने लगा कि इतने सुन्दर बछेरे निकले कि निकलते ही दौड़ पड़े। अन्तःपुर के लोगों ने कहा कि महाराज ! आप मूर्ख होगये हैं, कहीं बछेरों के अण्डे भी होते हैं। परन्तु दरबार ने कहा अरे ! मैंने अपनी आँखों से देखे हैं ना ? परन्तु कोई पूछे, अरे जब बछेरे के अण्डे होते ही नही, तो तुमने देखे कहाँ से ? उसी प्रकार अज्ञानी जीव कहता है कि "आत्मा पर द्रव्य के कार्य को करता देखा जाता है ना ? अरे भाई जब आत्मा पर द्रव्य का कुछ कर ही नहीं सकता, तो तूने देखा कहाँ से ? खोटी दृष्टि से देखा है कि आत्मा ने यह जड़की क्रिया की, यह देखो, हाथ में लकड़ी है। अब

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह ऊँची हो गई, इसमें आत्मा ने क्या किया ? आत्मा ने यह जाना तो सही, कि लकड़ी पहले नीचे थी और अब ऊपर हो गई है। परन्तु आत्मा लकड़ी को ऊँचा करने में समर्थ नहीं हैं। अज्ञानी मानता है कि मैंने लकड़ी ऊँची की है यह विपरीत मान्यता है। इसलिए याद रक्खो :—

(क) एक आत्मा दूसरी आत्मा का कुछ नहीं कर सकता है। (ख) एक आत्मा जड़ का कुछ नहीं कर सकता है। (ग) एक पुद्गल दूसरे पुद्गल का कुछ नहीं कर सकता है। (घ) एक पुद्गल भी आत्मा का कुछ नहीं कर सकता है। ऐसा मानना सम्यग्ज्ञान है, इससे उल्टा मानना महान पाप मिथ्यात्व है।

(४) देखो, अरहंत भगवान को अनन्त चतुष्टय की प्राप्ति हुई है। वह उसी समय चार अघाती कर्म और शरीर का अभाव नहीं कर सकते हैं और उनका भक्त कहे, हम कर सकते हैं; कितना आश्चर्य है।

(५) सिद्ध भगवान सबको जानते हैं, किसी का कुछ भी नहीं कर सकते हैं, ऐसा जानकर अपना आश्रय ले, तो धर्म की प्राप्ति सम्भव है।

प्र० ७२—त्रेसठशलाका पुरुष सम्यग्दृष्टि होते हैं या मिथ्यादृष्टि ?

उ०—त्रेसठशाला का बंध सम्यग्दर्शन होने के बाद ही होता है, मिथ्यादृष्टि को इनमें से एक का भी बंध नहीं होता है परन्तु :—

(१) २४ तीर्थंकर तो सम्यग्दृष्टि ही होते हैं और उसी भव से मोक्ष जाते हैं। (२) चक्रवर्तीअवस्था में कोई मोक्ष जाता है,कोई स्वर्ग जाता है और कोई सम्यक्त्व का अभाव करके सातवें नरक भी जाता है। (३) नव बलदेव सब सम्यग्दृष्टि ही रहते हैं कोई मोक्ष और कोई स्वर्ग जाता है। (४) नारायण और प्रतिनारायण इनका सम्यक्त्व नष्ट हो जाता है और नरक जाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ७३—पर्याप्ति कितनी हैं, उससे क्या सिद्ध होता है ?

उ०—पर्याप्ति छह होती हैं—(१) आहार, (२) शरीर, (३) इन्द्रिय, (४) श्वासोच्छवास, (५) भाषा (६) मन।

जैसे संज्ञी पचेन्द्रिय जीव जब-जब जहाँ पर उत्पन्न होता हैं वहाँ पर इन सब पर्याप्तियों की शुरूआत एक साथ होती हैं लेकिन पूणता क्रम से होती हैं, उसीप्रकार सम्यग्दर्शन होने पर सर्व गुणों में अंशरूप से शुद्धता आ जाती है,परन्तु पूर्णता क्रम से होती हैं। सम्यग्दर्शन चौथे गुणस्थान में पूर्ण हो जाता है चारित्र १२ वें गुणस्थान में तथा पूर्ण ज्ञान, दर्शन, वीर्य की पूर्णता १३वें गुणस्थान में और योग की पूर्णता १४वें गुणस्थान में होती है।

प्र० ७४—कोई कहे, सम्यग्दर्शन होते ही पूर्णता होनी चाहिए, नहीं तो हम सम्यग्दर्शन होना मानते ही नहीं, क्या उनका कहना ठीक है ?

उ०—सम्यग्दर्शन होते ही पूर्णता आजावे,तो निम्न दोष आते हैं। (१) सम्यग्दर्शन होते ही सिद्ध हो जावे तो किसी जीव को ज्ञानी के उपदेश का निमित्त नहीं बनेगा, इसलिए यह मान्यता मिथ्या हैं। (२) श्रावकपना,मुनिपना,श्रेणीपना और अरहंतपने के अभाव का प्रसंग उपस्थित होवेगा। (३) गुणस्थानों के अभाव का प्रसंग उपस्थित होवेगा।(४) शास्त्रों की रचना नहीं होगी,क्योंकि विशेष रूप से श्रावक और भावलिंगी मुनियों को शास्त्रादि रचने का विकल्प हेय बुद्धि से आता हैं।

इसलिए सम्यग्दर्शन होते ही पूर्णता होनी चाहिए, यह बात मिथ्यादृष्टियों की हैं, और उनका कहना असत्यार्थ हैं।

प्र० ७५—ध्रुव धाम की धुन रूपी ध्यान वह धर्म है, इससे क्या तात्पर्य है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—एक मात्र अनादि अनन्त जो परम पारिणामिक ध्रुवधाम जो आत्मा हैं उसी के आश्रय से धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती हैं और किसी के आश्रय से नहीं होती है।

(१) जैसे ऊपर ध्रुवतारा है। उसके चारों तरफ सात तारे चक्कर लगाते रहते हैं, परन्तु वह ध्रुवतारा एक ही जगह रहता है। समुद्र में उस ध्रुवतारे के सहारे जहाज भी चलते हैं; उसीप्रकार अनादि अनन्त ध्रुवधाम है। उसी के आश्रय से धर्म की शुरूआत वृद्धि, पूर्णता होती है औरों के आश्रय से नहीं।

(२) जैसे एक आदमी के हाथ में एक पक्षी था। उसने वृक्ष पर दो पक्षी बैंठे देखे। देखकर उसने हाथ का पक्षी छोड़ दिया और उन दोनों को पकड़ने दौड़ा, तो वे दोनों भी उड़ गये; उसीप्रकार अनादि काल से अज्ञानी अपना जो अनादि अनन्त ध्रुवधाम आत्मा है उसे छोड़ता है और अध्रुव स्त्री-पुत्र-धनादि, शुभाशुभभावों का आश्रय करता है, तो दुःखी होता है। इसलिए हे आत्मा! जो तेरा ध्रुव-धामरूपी अनादि अनन्त आत्मा है उसका आश्रय ले, तो भला हो और पर द्रव्य, विकारी, अविकारी पर्यायों का आश्रय छोड़।

(३) जैसे एक मजबूत खूंटे से बड़ी मोटी भैंस बँधी है। भैंस जोर मारती है। लोग कहते हैं भैंस जोरावर है परन्तु जोर है खूंटे का, जो हिलता ही नहीं; उसी प्रकार अज्ञानी लोग बाहरी क्रिया का, शुभभावों का जोर देखते हैं, लेकिन जोर है अपने त्रिकाली ध्रुवधाम का। इसलिए अपने ध्रुवधाम की धुनरूपी ध्यान से धर्म प्रगट करना चाहिए।

(४) एकबार छोटी उम्र में पूज्य गुरुदेव ध्रुव का नाटक देखने गये। नाटक में दिखाया गया, ध्रुव बच्चा है, वह अपने बाप की गोद में बैठने जा रहा है उसी समय उसकी दूसरी मां ने टोका, तू तू

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उसका पुत्र है, गोद में कैसे जाता है ? वह यह देखकर जंगल में चला गया और ऐसा ध्यान लगाया कि आँख उठाकर ऊपर को देखता ही नहीं था। तब स्वर्ग से दो अप्सरा उसे डिगाने आईं, उन्होंने बड़ा हावभाव प्रगट किया, परन्तु ध्रुव ने उनकी तरफ आँख उठाकर देखा ही नही। तब उन अप्सराओं ने कहा—ध्रुव तुम इतनी छोटी उम्र में क्यों ध्यान करते हो ? तुम अभी हमारे साथ भोग करो— आनन्द लो। बाद में दीक्षा ले लेना, तब भी ध्रुव ने अपनी नजर ऊँची ना की। अप्सराओं ने कहा, हे ध्रुव जरा एकबार हमारी ओर नज़र उठाकर के तो देख लो। तब ध्रुव ने आँख खोलकर उनसे कहा, हे माता, यदि मुझे जन्म लेना पड़े, तो मैं तेरी कोख में उत्पन्न होऊँगा, तब वह अप्सराएँ निराश चली गईं; उसीं प्रकार यह जीव अनादि से एक-एक समय करके परकी ओर देखकर पागल हो रहा है। यदि एकबार अपने ध्रुवधाम की ओर दृष्टि करें, तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति होती है।

(५) जैसे एक आदमी ने एक लाख रुपया दान देने को कहा और वाद में मुकर गया। तो जो मुकर जाता है उसका कोई विश्वास नहीं करता; उसीप्रकार संसार की सब पर वस्तु और शुभभाव फिरने वाले हैं, जो इनका विश्वास करता है, धोखा खाता है और जो न फिरने वाला अपना ध्रुवधाम है, उसका आश्रय ले तो धर्म की प्राप्ति होती है।

(६) क्षायिक, क्षयोपशम, औदयिक, औपशमिक भाव अध्रुव हैं। इनके आश्रय से धर्म की प्राप्ति नहीं होती है और जो अपना परम पारिणामिक त्रिकाली ध्रुवधाम है, उसका आश्रय ले तो धर्म की प्राप्ति होती है।

(७) हे आत्मा (१) परवस्तुओं से (२) विकारी भावों से, (३) अपूर्ण पूर्णशुद्ध पर्यायों से जों कि सब अध्रुव है इनसे दृष्टि उठा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

और जो अपना ध्रुवधाम ज्ञायक भगवान है उसका आश्रय ले, तो सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होकर श्रावकपना, मुनिपना, श्रेणीपना, अरहंतपना-सिद्धपना की प्राप्ति हो, इसलिए अपने ध्रुवधाम की धुनरूपी ध्यान से ही धर्म की प्राप्ति, वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्र० ७६—सर्वज्ञ है, इसकी सिद्धि किस प्रकार हो ?

उ०—पंचास्तिकाय जयसेनाचार्य गा० २९ में तथा वृहत्‌द्रव्य संग्रह गा० ५० की टीका में सर्वज्ञ की सिद्धि की है :

प्र० ७७—कोई सर्वज्ञ का निषेध करने वाला कहता है कि 'सर्वज्ञ है ही नहीं, क्योंकि देखने में नहीं आते ?

उ०—हे भाई : यदि तुम कहते हो 'सर्वज्ञ नहीं है' तो हम पूछते हैं कि सर्वज्ञ कहाँ नहीं है। इस क्षेत्र में, और इस काल में नहीं है अथवा तीनोंकाल में और तीनों लोकों में नहीं है।

यदि तुम यह कहते हो कि 'इस क्षेत्र में और इस काल में सर्वज्ञ नहीं है,' तो हम भी ऐसा ही मानते हैं।

यदि तुम यह कहते हो कि 'तीनोंकाल और तीनों लोको में सर्वज्ञ नहीं है।'

तो हम तुमसे पूछते हैं कि यह तुमने कैसे जाना ? यदि तीनों लोक को और तीनों काल को सर्वज्ञ के विना तुमने देख-जान लिया तो तुम्हीं सर्वज्ञ हो गये, क्योंकि जो तीन लोक और तीनकाल को जाने, वही सर्वज्ञ है। इसलिए सर्वज्ञ का निषेध योग्य नहीं है।

प्र० ७८—देवागम स्तोत्र में समन्तभद्र स्वामी और महावीर स्वामी की क्या वार्ता है ?

उ०—भगवान महावीर ने समन्तभद्र से पूछा कि, तुम मुझे भगवान इसलिए मानते हो, कि मुझे देवता चक्रवर्ती आदि नमस्कार करते है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

समन्तभद्र ने कहा—नहीं भगवान।

भगवान ने फिर पूछा—चामर, छत्र आदि विभूति है, आकाश में गमन होता है इसलिए मुझे भगवान मानते हो ?

समन्तभद्र ने कहा—नहीं भगवान। इन कारणों से आप हमारे लिए महान नहीं हैं, ऐसी बातें तो मायावी इन्द्रजाली आदि में भी पाई जाती हैं।

भगवान ने कहा, तब फिर तुम मुझे किसलिए भगवान मानते हो ?

समन्तभद्र ने कहा—मेरे में पहले बहुत दोष थे और ज्ञान का उघाड़ भी बहुत कम था। और अब दोष बहुत कम हो गये हैं और ज्ञान भी बढ़ गया है। जब मेरा दोष कम हुआ, तो कोई दोष रहित भी होना चाहिए और मेरा ज्ञान बढ़ा, तो कोई पूर्ण ज्ञानवाला भी होना चाहिए।

सो हे प्रभो, मैं आपको दोष रहित वीतरागरूप और पूर्ण केबल-ज्ञानी पाता हूँ, इसलिए मैं आपको नमस्कार करता हूँ। और आपकी वाणी पूर्वापर विरोध रहित ही होती है। कहा है :—

देवागम, नभोयान, चामरादि विभूतयः।
मायाविष्वपि दृश्यन्ते, नातस्त्वमसि नो महान ॥२॥
दोषावरणयोर्हानिर्निः शेषास्त्यतिशायनात्।
क्वचिद्यथा स्व हेतुभ्यो, बहिरन्तर्मलक्षयः ॥४॥

हे भगवान, आपने एक समय में प्रत्येक द्रव्य में उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य बताया है, यह सर्वज्ञ की निशानी है।

प्र० ७९—क्या मिथ्यात्वी भगवान को नहीं पूज सकता ?

उ०—यथार्थतया नहीं पूज सकता है, क्योंकि मुनिसुव्रतनाथ की स्तुति करते हुए स्वयंभूस्तोत्र में श्लोक नं० १३९ में लिखा है कि:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

हे जिन सुर असुर तुम्हें पूजें, मिथ्यात्वी चित्त नहीं तुम्हें पूजे ॥

जिस जीव ने अपनी आत्मा का अनुभव किया, उसने ही सर्वज्ञ को माना, और जाना। क्योंकि सर्वज्ञ स्वभावी आत्मा की श्रद्धा किये बिना, सर्वज्ञ और सर्वदर्शी की श्रद्धा नहीं होती है। इसलिए सम्यग्दर्शन होने पर ही भगवान को सत्य रूप से माना, इससे पहिले नहीं माना। प्रवचनसार गा० ८० में कहा हैं कि—

जो जाणदि अरहंतं, दव्वत्त गुणत्त पज्जयत्तेहिं।
सो जाणदि अप्पाणं मोहो खलु जादि तस्य लयं ॥८०॥

जिस जीव ने अपनी वर्तमान पर्याय को अपने त्रिकाली भगवान की ओर सन्मुख किया, उस समय उसका मोह का अभाव हो जाता है तब अरहंत भगवान को जाना और माना।

प्र० ८०—उत्साह, आदर, भावना और फल से तात्पर्य क्या है ?

उ०—(१) जिसकी रुचि—उसकी सावधानी। (२) जिसकी सावधानी—उसकी मुख्यता (३) जिसकी मुख्यता—उसकी महिमा। (४) जिसकी महिमा—उसका आदर (५) जिसका आदर—उसका उत्साह। (६) जिनका उत्साह—उसकी भावना। (७) जिसकी भावना—उसका फल। (८) जिसका फल—उसका जीवन में टोटल हर समय आता है। इससे यह पता लगता है कि जीव कहाँ खड़ा है और कहाँ सावधान है।

प्र० ८१—पुद्‌गल कर्म की किस अवस्था, रागादि में निमित्त है ?

उ०—(१) कर्म सत्ता में पड़ा हो, वह रागादि में निमित्त नहीं है।

(२) कर्म की प्रकृति भी रागादि में निमित्त नही है।
(३) कर्म के प्रदेश भी रागादि में निमित्त नहीं है।
(४) कर्म की स्थिति भी रागादि में निमित्त नहीं है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५) एक मात्र पुराने कर्म का उदय (अनुभाग) रागादि में निमित्त पड़ता है।

प्र० ८२ पुद्गल को विकारी दशा का क्या नाम है ?

उ०—स्कन्ध है।

प्र० ८३—पुद्गल की अविकारी दशा का क्या नाम है ?

उ०—परमाणु है।

प्र० ८४—संयोग की पृथकता, विभाव की विपरीतता और स्वभाव को सामर्थ्यता पर से तीन बोल कौन-कौनसे है और इनको जानने से क्या लाभ हैं ?

उ०—(१) अनादि काल से आज तक अनन्त शरीर धारण किये, उसमें से एक भी रजकण अपना नही हुआ।

(२) अनादि काल से आज तक असंख्यात लोक प्रमाण विभाव भाव किया। वह "वह का वह रहता नहीं"। जो अपने साथ न रहे, वह अपना है ही नहीं।

(३) अखण्ड ज्ञायक स्वभाव की सामर्थ्यता का भान हो, तो सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर मोक्ष का पथिक बने। जो अपना कल्याण चाहता हैं वह संयोग जो पृथक है उससे अपना ध्यान हटावे। शुभाशुभ विकारी भाव विपरीत रूप हैं इनसे भी जीव का कल्याण नहीं होता है। एकमात्र स्वभाव की सामर्थ्यता की ओर दृष्टि करे, तो शान्ति प्राप्त हो।

प्र० ८५—कई पण्डित, त्यागी नाम धराने वाले कहते हैं कि केवली धर्म-अधर्म-आकाश-काल, शुद्ध जीव- शुद्ध पुद्गल की तो भूत, भविष्य, वर्तमान पर्यायों को जानते हैं परन्तु अशुद्ध जीव और अशुद्ध पुद्गल को नहीं जानते हैं, क्या यह उनकी बात ठीक है ?

उ०—ऐसा कहने वाले वस्तु स्वरूप को जानते नहीं है क्योंकि:—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१) ६ महिना ८ समय में ६०८ जीव निगोद से निकलतेहैं और इतने ही जीव मोक्ष जाते है, विचारों यह बात कहाँ से आयी।

(२) धर्मद्रव्य की शुद्ध पर्याय किस अशुद्ध जीव और स्कन्ध को किस समय निमित्त होगी और अधर्म द्रव्य की शुद्ध पर्याय, किस-किस जीव और पुद्‌गल को निमित्त होगी। विचारो, यह बात कहाँ से आयी।

(३) छः महिने पहले इन्द्र को पता चल जाता है कि भगवान किसके गर्भ में आवेंगे ? कहाँ पैदा होंगे ? वह छः महिने पहिले रत्नों की वर्षा करता है। इन्द्र को पता चल जावे, केवली को पता न चले, यह बात कहाँ से आयी।

(४) ६ उत्सर्पिणी, ६ अवसर्पिणी काल होंगे, चौथे काल में २४ तीर्थंकर होंगे, यह बात कहाँ से आयी।

(५) प्रथमानुयोग में २०-२० भवों के वर्णन आते है। उनको अवधि ज्ञानी और मनःपर्यय ज्ञानी बताते हैं। उसको छद्‌मस्थ तो जाने और केवली ना जाने, विचारों यह बात कहाँ से आयी।

(६) भरतजी ने भूत, भविष्य, वर्तमान चौबीसी की स्थापना कैलाशपर्वत पर की। अरे भाई ! विचारो, यह बात कहाँ से आई।

(७) किस-किस गुणस्थान में कैसे-कैसे भाव होते हैं और वहाँ पर कर्म की प्रकृति-स्थिति-अनुभाग का वर्णन कहाँ से आया।

(८) यह जीव इतने काल में मोक्ष जावेगा, यह बात कहाँ से आयी।

(९) यदि अशुद्ध जीव, अशुद्ध पुद्‌गल का ज्ञान केवली को ना हो, तो चारों अनुयोग झूठे हो जावेंगे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१०) श्रेणिक पहला तीर्थंकर, रावण १८ वाँ तीर्थंकर- लक्ष्मण धातकी खण्ड का तीर्थंकर, सीता रावण की गणधर बनेगी। आदि बातें कहाँ से आयी। केवली अशुद्ध जीव और अशुद्ध पुद्गल को नहीं जानते, ऐसा कहने वाले मिथ्यादृष्टि हैं।

(११) 'सर्वद्रव्यपर्यायेषु केवलस्य' तत्त्वार्थ सूत्र का यह सिद्धान्त वाक्य झूठा ठहरेगा।

इसलिए सर्वद्रव्यों की शुद्ध-अशुद्ध पर्याय केवली भगवान एक समय में जानते है, ऐसी सर्वज्ञ की श्रद्धा करने वाले को अनादि काल की पर में कर्ता-भोक्तापने की बुद्धि का अभाव होकर धर्म की प्राप्ति होती है। पात्र जोवोंको निर्णय करके, सम्यग्दर्शन प्राप्त करके, निर्वाण की ओर गमन करना चाहिए।

प्र० ८६—हमारे में थोड़ी बुद्धि है हमें ऐसी बात बताओ-जिससे हमारा कल्याण हो जावे ?

उ०—देखो भाई ! भगवान महावीर के निर्वाणोत्सव पर हम सब लड्डू चढ़ाते हैं। तब आप एक चतुर बाई के पास निर्वाणोत्सव के लड्डू बनवाये गये। तो बाई ने चूल्हे पर कढ़ाई रखी और पानी गेरा। आपसे कहा, लाओ चीनी। तब आपने डिब्बा जिसमें चीनी थी उसको दिया। उसने कढ़ाई में चीनी गेरकर, डिब्बा तुम्हें पकड़ा दिया। थोड़ी देर में उसमें उफान आया, तो बाई ने आपसे दूध माँगा। तो आपने दूध का लोटा पकड़ा दिया, बाई ने दूध गेरकर लोटा वापस कर दिया। चीनी में मैल आया, बाई ने उसे उतार फैंक दिया। तब आपने कहा, बाई जी ! तुम तो बहुत हुश्यार हो, तुमने चीनी से मैल अलग कर दिया। अब जरा मिठास को अलग कर दो। बोली, मिठास अलग नहीं हो सकता; उसी प्रकार जिसमें थोड़ी बुद्धि है और अपना कल्याण करना चाहता है तो (१) डिब्बा,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

की तरह अपनी आत्मा के अलावा अनन्त आत्माएं, अनन्तानन्त पुद्गल, धर्म-अधर्म-आकाश एकेक और लोक प्रमाण असंख्यात काल द्रव्य है-इनसे दृष्टि उठावो, (२) चीनी में मैल की तरह हिंसा, झूठ आदि पापभाव हैं और दया, दान, पूजा, अणुव्रत, महाव्रत का भाव पुण्यभाव हैं-इनसे भी दृष्टि उठावो, (३) जैसे चीनी से मिठास अलग नहीं हो सकता; उसी प्रकार अनन्त गुणों का अभेद पिण्ड जो अपना आत्मा है उस पर दृष्टि दो, तो तुरन्त कल्याण होता हैं।

८७—मनुष्य भव के लिए ज्ञानी देवता भी तरसते हैं यह बात कैसे है ?

उ०—एक राजा था। उसे अपनी दौलत का बहुत बड़ा अभि—मान था। वह चाहता था कि मैं सबको अपनी सम्पत्ति दिखलाऊँ, लेकिन मौका नही मिलता था। एक बार भगवान का समोशरण आया। उसने समोशरण में जाने के लिए रणभेरी बजवादी। उसने सोचा-अब अपनी सम्पत्ति दिखलाने का अच्छा मौका है। उसने अपनी तमाम दौलत, फौज, हाथी आदि सजाकर लोगों को दिखाकर समोशरण में जाने का विचार किया। उसके विचार को इन्द्रने जान लिया इन्द्र ने राजा का मान गलाने के लिये बड़े-बड़े हाथी, और हाथी की सूँड़ पर अप्सरा नृत्य करती हुई, बड़ाभारी वैभव निकलवाया; इन्द्रके वैभव को देख कर राजा का मान गल गया।

इन्द्र और राजा भगवान के समोशरण में पहुँचे और राजा ने इन्द्र को ललकारा हे इन्द्रदेव ! तुमने दौलत सम्बन्धी मेरे मान को नीचा दिखाया, अब मैं भगवती जिनेश्वरी दीक्षा लेता हूँ, तुम्हारे में शक्ति है तो आ जावो। तब इन्द्र कहता है, तुम बड़े भाग्यशाली हो, जो भगवती जिनदीक्षा ले रहे हो। मेरे इन्द्रपद से भी मनुष्यभव विशेष दुर्लभ है, क्योंकि मैं मनुष्यभव मैं ही दीक्षा अंगीकार करके मोक्ष प्राप्त कर सकता हूँ।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भाई विचारो, जो जीव मनुष्यभव पा करके पाँचों इन्द्रियों के विषयों में ही अपना जीवन खो देते हैं, उन्हें सौ-सौबार धिक्कार है। वास्तव में बालकपन सम्यग्दर्शन है। जवानी मुनिपना है। बुढ़ापा केवल ज्ञान हैं। इसके बदले जो जीव "बालपने में ज्ञान न लह्यौ, तरुण समय तरणी रत रह्यो। अर्धमृतक सम बूढ़ापनो, कैसे रूप लखै आपनो"। यदि मनुष्यभव होने पर धर्म को प्राप्ति ना की, तो त्रस की स्थिति पूर्ण होने वाली है, निगोद तैय्यार है। सावधान-सावधान।

प्र० ८८—मोक्षमार्ग प्रकाशक में मनुष्यभव के इस विषय में क्या लिखा है ?

उ०—एक मनुष्य पर्याय में कोई अपना भला होने का उपाय करे तो हो सकता हैं जैसे—काने गन्ने की जड़ व उसका ऊपरी फीका भाग तो चूसने योग्य ही नहीं है, और बीच की पोरी कानी होने से वे भी नहीं चूसी जाती। कोई स्वाद का लोभी उन्हें बिगाड़े तो बिगाड़ो, परन्तु यदि उन्हें बो दे, तो उनसे बहुत से गन्ने हों, और उनका स्वाद बहुत मीठा आवे; उसी प्रकार मनुष्य पर्याय का बालक वृद्धपना तो सुखयोग्य नहीं है; और बीच की अवस्था रोग क्लेशादि से युक्त है, वहाँ सुख हो नहीं सकता; कोई विषय सुख का लोभी उसे बिगाड़े तो बिगाड़ो, परन्तु यदि उसे धर्म साधन में लगाये, तो बहुत उच्च पद को पाये, वहाँ सुख बहुत निराकुल पाया जाता है। इसलिए यहाँ अपना हित साधना, सुख होने के भ्रम से मनुष्यभव को वृथा ना खोना।

प्र० ८९—मिथ्यादृष्टि को सम्यग्दृष्टि से ज्यादा पुण्य का बंध होता है क्या ऐसा शास्त्रों में आया है ?

त्रस की स्थिति तो बहुत थोड़ी है, उसे काकतालीय न्यायवत् कहीं, वह क्यों कही जाती है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—मिथ्यादृष्टि को साता का बंध उत्कृष्ट १५ कोड़ा-कोडी सागरोपम का बँधता है। सम्यग्दृष्टि को साता का बंध उत्कृष्ट अन्त: कोडा-कोडी का बँधता है। अज्ञानी कहता है देखो, मिथ्या दृष्टि का पुण्य कितना लम्बा बँधा है। अज्ञानी को मालूम नहीं, कि मिथ्यादृष्टि की स्थिति बड़ी; संसार बढ़ा और सम्यग्दृष्टि की स्थिति घटी, अनुभाग बढ़ा। त्रस की उत्कृष्ट स्थिति कुछ अधिक दो हजार सागर है।

यह मिथ्यादृष्टि के १५ कोडा-कोडी से बहुत ज्यादा है,इतना पुण्य भोगने का स्थान है नहीं। तो मिथ्यादृष्टि त्रस की स्थिति पूर्ण होने से पहले-पहले शुभ का अभाव करके अशुभ करके एकेन्द्रिय में चला जावेगा, जिसका दृष्टान्त द्रव्यलिंगी मुनि है। वह भगवान के कहे हुए व्रतादि का अतिचार रहित पालन करता है और उससे शुभभाव द्वारा नववें ग्रैवेयक में चला जाता है परन्तु फिर निगोद चला जाता है "जो विमानवासी हूँ थाय, सम्यग्दर्शन बिन दु:ख पाय, तहँ तै चय थावर तन धरै यों परिवर्तन पूरे करै॥" [छहढ़ाला] इतना लम्बा पुण्य भोगने का स्थान नहीं है।

सम्यक्दृष्टि को अन्त: कोड़ाकोड़ी सागरो पम का उत्कृष्ट पुण्य बंधता है। अन्त: कोड़ाकोडी सागरोपम से त्रस की स्थिति ज्यादा है, तो सम्यग्दृष्टि पुण्य का अभाव कर अल्प काल में पूर्ण शुद्ध होकर नियम से मोक्ष चला जाता है-जिसका दृष्टान्त सम्यग्दृष्टि है,जो नियम से मोक्ष प्राप्त करता है।

अब जिसको मनुष्य भव मिला, देवगुरु शास्त्र का सम्बन्ध मिला, सोनगढ़ के पूज्य कानजी स्वामी का समागम मिला कि जिन्होंने पंचम काल को चौथा काल जैसा बना दिया है और भगवान के विरह को भुला दिया है ऐसे समय में जो जीव अपने स्वभाव का आश्रय नहीं लेता है, निमित्त से कार्य होता है या शुभभाव से भला

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

होता है ऐसा माने तथा आत्मा आत्मा की बातें तो करे, परन्तु अपना आश्रय ना ले, तो समझ लो उसकी त्रस की स्थिति पूरी होने को आई है। हे भव्य ! तू सावधान होजा, सावधान होजा, ऐसा अवसर मिलना कठिन है और सावधान नहीं हुआ, तो निगोद तैयार है।

(मोक्षमार्ग प्रकाशक पृष्ठ ३२ में लिखा है कि "परिभ्रमण करने का उत्कृष्ट काल पृथ्वी आदि स्थावरों में असंख्यात कल्पमात्र हैं और दो इन्द्रियादि से पंचेन्द्रिय पर्यंन्त त्रसों में साधिक दो हजार सागर है।" इस प्रकार अधिकांश तो एकेन्द्रिय पर्यायों का ही धारण करना है। अन्य पर्यायों की प्राप्ति (त्रस पर्यायों की प्राप्ति) तो काकतालीय न्यायवत् जानना।

प्र० ८०—क्या द्रव्यकर्म-नोकर्म-भावकर्म से ज्ञानकी हानि-वृद्धि होती है ?

उ०—नहीं, ऐसा नहीं है। द्रव्यकर्म, नोकर्म, भावकर्म से ज्ञान का सम्बन्ध नहीं है। (१) **नोकर्म**—जैसे एक आदमी का पैर कट गया, शरीर के अंग में तो कमो हुई, परन्तु कट गया ऐसा ज्ञान तो हुआ। किसी के पास ५० हजार रुपया था, उसमें से २५ हजार रुपये घट गये, परन्तु घट गये इतना ज्ञान तो बढ़ गया। इसलिए नोकर्म के कारण अर्थात् नोकर्म में कमी हो, तो ज्ञान घट जावे-यह बात गलत है। (२) **द्रव्यकर्म**—कोई कहे, ज्ञानावरणीय के उदय से ज्ञान रुकता है। तो विचारो, पहिले कर्म सत्ता में था, अब उदय में आया। उदय में आया-इतना ज्ञान बढ़ा—इसलिए द्रव्यकर्म के कारण ज्ञान घटता है या बढ़ता है-ऐसा नहीं है। (३) **भावकर्म**—चारित्र-गुण का विभाव रूप कार्य है। ज्ञान हुआ वह ज्ञान गुण का कार्य है। राग हुआ और ज्ञान हुआ दोनों का समय एक है। ज्ञान गुण की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पर्याय नें राग को जाना। तो विचारो इतना ज्ञान बढ़ा, इसलिए भावकर्म के कारण भी ज्ञान में रुकावट नहीं होती है। इससे निश्चित होता है कि आत्मा को ज्ञान और सुख उत्पन्न करने में शरीर आदि नोकर्म, पाँचों इन्द्रियों के विषय, द्रव्यकर्म और भावकर्म किंचित् भी कार्यकारी नहीं है। एकमात्र नोकर्म, भावकर्म, द्रव्यकर्म से दृष्टि उठाकर अपनें ज्ञायक स्वभावी पर ही दृष्टि देने से सम्यग्ज्ञान, और अतीन्द्रिय सुख उत्पन्न होता है।

प्र० ८१—धर्मी बनने पर साधक के चारित्र गुण में क्या होता है ?

उ०—सम्यग्दर्शन होनें पर चारित्र गुण की पर्याय में दो अंश हो जाते हैं। जितनी शुद्धि है वह वीतराग रूप है और जितनी अशुद्धि है वह बन्ध रूप है।

प्र० ८२—चौथे गुणस्थान में भूमिकानुसार कैसा कैसा भाव होता है ?

उ०—चौथे गुणस्थान में निश्चय सम्यग्दर्शन हो जाता है और वहाँ पर अनन्तानुबन्धी क्रोध, मान, माया लोभ के अभावरूप स्वरूपाचरण चारित्र प्रगट होता है। जो शुद्धि है वह धर्म रूप है और अशुद्धि में उस जीव को सच्चे देव गुरु-धर्म के प्रति हेय बुद्धि से राग आता है, कुगुरु-कुदेव,कुधर्म के प्रति नहीं, जिसको प्रत्यक्ष मद्य-मांस-मधु कहते हैं, उसके खाने का विकल्प भी नहीं आता। संसार के तमाम पदार्थों में इष्ट अनिष्ट की बुद्धि का श्रद्धा में सर्वथा अभाव वर्तता है। चारित्र अपेक्षा जितना राग है उसे बंध का कारण जानते हैं।

प्र० ८३—पाँचवे गुणस्थान में भूमिकानुसार कैसा कैसा भाव आता है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान के क्रोध, मान, माया, लोभ के अभावरूप देशचारित्र प्रगट होता है, वह वीतरागरूप है, उस भूमिका में १२ अणुव्रतादि का विकल्प हेयबुद्धि से आता हैं।

प्र० ९४—छठ्ठे गुणस्थान में भावलिंगी मुनि को किस-किस प्रकार का भूमिकानुसार राग होता है ?

उ०—अनन्तानुबंधी, अप्रत्याख्यान, प्रत्याख्यान क्रोध, मान माया, लोभ तीन चौकड़ी के अभावरूप शुद्धि तो निरन्तर वर्तती है। जो शुद्धि है, वह वीतरागरूप है, सकलचारित्र नाम पाती है। उसके साथ भावलिंगी मुनि को २८ मुलगुण के पालन आदि का विकल्प हेयबुद्धि से आता है वह उसे क्लेश और कलंकरूप मानते हैं।

प्र० ९५—आत्मा मात्र शुद्ध या अशुद्ध भाव ही कर सकता है,तो फिर हम शरीर की क्रिया, दान देना, पूजा आदि की क्रिया करे या नहीं ?

उ०—जैसे बढ़वाण में एक नदी बहती है। उसमें बहुत सूक्ष्म बालू होता है। अब हमें बालू से तेल निकालना है; उस तेल निकालने की मशीन का आर्डर अमेरिका को दे या रूस को दे। अरे भाई जब बालू से तेल निकलता ही नहीं तब आर्डर देने की बात कहाँ से आई ? उसी प्रकार जब आत्मा शरीर की क्रिया, रुपया-पैसा देने की क्रिया करता ही नहीं, तब हम करे या नहीं—यह प्रश्न ही झूठा है। जीव तो मात्र भाव ही कर सकता है। मिथ्यादृष्टि की मर्यादा विकारी भावों तक है। ज्ञानी की मर्यादा शुद्ध भावों तक है। परन्तु द्रव्यकर्म-नोकर्म की क्रिया तो ज्ञानी-अज्ञानी कर सकता ही नहीं, तब मैं करूँ या न करूँ, यह प्रश्न मिथ्यात्व से भरा हुआ है।

प्र० ९६—जो यह कहता है कि अभी तो हम बच्चे हैं, जवान होकर गृहस्थी के मजे ले,-ले, घर—बाल बच्चों का इन्तजाम करदें, तब बाद में धर्म करूँगा, तो क्या यह बात ठीक है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—अरे भाई ! क्या तुझे निश्चय है कि मैं अगले समय रहूँगा या नहीं, इसलिए जो कहता है धर्म फिर करूँगा, वह कभी धर्म को प्राप्त न कर सकेगा। और ऐसे विचारों में ही चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद् चला जावेगा।

(१) जैसे एक आदमी था। उसकी स्त्री बड़ी लड़ाका थी। उस आदमी ने एकबार कबीर से कहा—क्या गृहस्थी में धर्म नहीं हो सकता ? तब कबीर उसे अपने घर ले गया और उससे कहा, घर में धर्म हो सकता हैं। तब उस आदमी ने कहा, तुम मुझे प्रत्यक्ष दिखाओ, तब मैं मानूंगा। कबीर बुननें का काम करता था। उसने दिन के १२ बजे अपनी स्त्री से कहा—लालटेन लाओ। स्त्री लालटेन लेकर आई, कबीर ने उसकी तरफ देखा भी नहीं। एक घण्टे के बाद कहा—आप इतनी देर क्यों खड़ी रहीं। लालटेन जलाओ। उसने लालटेन जलाई, तब वह एक घण्टा फिर खड़ी रही। तब कबीर ने कहा, अच्छा लालटेन को ले जाओ। तब उस आदमी ने कहा, मैं भी तुम्हारे पास रहकर धर्म सींखूंगा, लेकिन जरा घर का, पुत्रों का, लड़कियों का इन्तजार कर आऊं।

उसे जाते हुए देखकर कबीर ने आश्रम देखने को कहा, तुम सब तरफ घूमो, फिरो, परन्तु इस घड़े को मत छूना, जरा मैं अभी आता हूँ। कबीर बाहर चले गये। उसके हृदय में घड़े को ही देखने की इच्छा रही। जैसे ही उसने घड़े को उघाड़ा, तो उसमें से तीन बड़े-बड़े मेंढक उछलकर निकल पड़े। वह उन्हें पकड़ने के लिए दौड़ा। उनमें से दो तो भाग गये, एक को पकड़ कर लाया,और उस घड़े में रखने लगा तो उसमें से तीन और निकलकर भाग गये; उसी प्रकार यह जीव विचार करता है—अभी तो बच्चा है, खूब खाओ-पीओ। जवानी में विषय भोग करो, आनन्द लो, जरा-लड़का हो जावे, बड़ा हो जावे, जरा इसका ब्याह कर दूं आदि झगड़ों में ही पूरा

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मनुष्य जन्म खो देता है। हे भव्य आत्मा, धर्म के कार्य को प्रथम कर, अगला समय आया या ना आया, कौन जान सकता है।

(२) एक धोबी उड़द की दाल, लहसन आदि खाकर निर्मल जल से भरे हुए तालाब में कपड़े धोने लगा। उसे प्यास लगी–तो विचारता है अभी तो दो ही वस्त्र धुले है, थोड़े और धुलने पर पानी पीऊँगा। फिर प्यास जोर से लगी 'ये धोने के बाद ये धोने के बाद, जल पीऊंगा। इस प्रकार संकल्प विकल्प करता रहा और मगज में गरमी चढ़ गई, इससे वेसुध होकर जल में गिर गया और वही मर गया।

उसी प्रकार निगोद से लगाकर द्रव्यलिंगी मिथ्यादृष्टि मुनि तक सब संसारी जीव सोचते हैं कि यह करने के बाद, गुरु के उपदेश द्वारा सम्यग्ज्ञान रूपी जल पीकर सुखी होऊँगा, यह करने बाद, यह करने के बाद, ऐसा करता करता मरकर पता नहीं कहाँ चला जाता है। इसलिए हे आत्मा तुरन्त चेत, देर मत कर।

इसलिए पात्र जीव को एक समय की भी देरी न करके, अपना कल्याण तुरन्त कर ही लेना चाहिए।

यह जीव इसी प्रकार मनुष्य जन्म पाकर विषयों के लुभाव में पागल होकर चारों गतियों में घूमकर निगोद में चला जाता है, इसलिए हे भव्य! अब सर्व प्रकार अवसर आया हैं, ऐसा अवसर मिलना कठिन है तू अपने भगवान का आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति कर, सावधान हो, देर मत कर।

प्र० ८७—परिणामों की विचित्रता कैसी है?

उ०—देखो, परिणामों की विचित्रता। (१) कोई जीव तो ११ वें गुणस्थान में यथाख्यात चारित्र प्राप्त करके पुनः मिथ्यादृष्टि होकर किंचित् न्यून अर्द्ध पुद्गल परावर्तन काल पर्यन्त संसार में

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

परिभ्रमण करता है। (२) और कोई जीव नित्य निगोद से निकलकर मनुष्य होकर मिथ्यात्व छूटने के पश्चात् अन्तर्मुहूर्त में केवलज्ञान प्राप्त करता है। (३) सीता को रावण हरण करके ले गया। रामचन्द्र जी वृक्षों से पूछते हैं, मेरी सीता तुमने देखी है। वही सीता घर आने पर, लोगों के कहने से रावण के पास से आई हुई सीता को वनवास में भिजवा दिया। अग्नि-परीक्षा होने पर वही रामचन्द्र सीता से कहते है, घर चलो, तुम्हें पटरानी बनाकर रखूँगा। सीता अर्जिका बन जाती है। सीता का जीव मरकर १६ वें स्वर्ग में देव हो जाता है। रामचन्द्र जिनेश्वरी दीक्षा ग्रहण करते हैं, सीता का जीव स्वर्ग से आकर सीता का रूप बनाकर रामचन्द्र जी को डिगाने का प्रयत्न करती है। अरे भाई, देखो परिणामों की विचित्रता। ऐसा जानकर अपने परिणाम बिगड़ने का भय रखना और उनके सुधारने का उपाय करना।

"जीवन के परिणामनि की यह, अति विचित्रा देखहु ज्ञानी॥"

प्र० ९९८—श्रुतज्ञान में ही नय पड़ते हैं और ज्ञान की पर्यायों में नय क्यों नहीं पड़ते हैं ?

उ०—श्रुतज्ञान विचारक ज्ञान है। श्रुतज्ञान में त्रिकाली स्वरूप क्या है, वर्तमान स्वरूप क्या है, दो बातें चलता हैं, इसलिए श्रुतज्ञान में नय पड़ते हैं। मतिज्ञान, सीधा जानता है। अवधि और मनःपर्यय ज्ञान का विषय पर है और विकल प्रत्यक्ष हैं। केवलज्ञान सकल प्रत्यक्ष है, इसलिए इन चार ज्ञानों में नय नहीं पड़ते हैं। मात्र भाव श्रुतज्ञान में ही नय पड़ते हैं।

प्र० ९९९—कोई हमें गाली दे, क्या हम उसे सुनते ही रहे, हम उसे थप्पड़ न मारे ?

उ०—वस्तु स्वरूप समझे, तो शान्ति प्राप्त होगी।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

गाली दी—इसमें पाँच बोल हैं। (१) गाली क्या है ? अ से लेकर ह तक स्वर-व्यंजन का परिणमन है इसका कर्ता भाषा वर्गणा है, जीव नहीं। इसलिए मुझे गाली दो, यह बात झूठ है। यदि गाली सुनते ही गुस्सा आवे, तो सब जगह एक सा सिद्धान्त होना चाहिए, परन्तु सुसराल में साली गाली देवे, तो कितनी अच्छी लगती है। इसलिए गाली सुनने से किसी को भी दुःख-सुख नहीं होता, मात्र अपने राग-द्वेष के कारण ही दुःख-सुख होता है ऐसा माने-जाने, तो क्रोध नहीं अवेगा।

(२) उसने मुझे गालियाँ दी।

क्या कोई जीव शब्द का परिणमन करा सकता है ? आप कहेंगे, नहीं। गाली देने वाले ने अपने ज्ञाता दृष्टा स्वभाव को भूलकर मात्र गाली देने का भाव किया। वह द्वेष भाव है। वह द्वेष भाव से स्वयं दुःखी है। क्या दुःखी को दुःखी करना भले आदमी का कार्य है ? नहीं, क्योंकि दुःखी जीव तो दया का पात्र है।

(३) उसने तुम्हारे जीव को देखा है ? आप कहेंगे, नहीं। उसने नाम—शरीर को उद्देश्य करके गाली देने का द्वेष भाव किया। विचारों, नाम—शरीर तो तुम नहीं। नाम—शरीर तुम्हारा न होने पर भी उसको (शरीर, नाम को) अपना मानना, भूल है। अज्ञानी जीव शरीर और नाम को अपना मान बैठा है, इसलिए दुःखी होता है। ज्ञानी जानता है मैं आत्मा हूँ, शरीर और नाम मैं नहीं, ऐसा जाने-माने तो क्रोध नहीं आवेगा।

एक साधु अपने चेलों के साथ चला जा रहा था। रास्ते में एक आदमी साधु महाराज को गालियाँ दे रहा था। चेलों को बहुत गुस्सा आया। साधु ने चेलों को चुप रहने का आदेश दिया। चलते-चलते साधु की कुटिया आ गयी। साधु चेलों सहित अन्दर

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चला गया, गाली देने वाला देखता ही रहा। वाद में साधु ने चेलों को बुलाया—देखो कोई हमको १० रुपया देता हैं, हम ना ले, तो किस पर रहे ? उसी पर रहे; उसी प्रकार उसने गालियाँ दीं, हमने नहीं ली, वह उसी पर रह गयी। ऐसा जाने-तो शान्ति आ जावेगी।

(४) विचारों—गाली का जीव के भाव के साथ कैसा सम्बन्ध है ? ज्ञेय-ज्ञायक सम्वन्ध है, कर्ता-कर्म सम्बन्ध नहीं हैं। तुम एक आत्मा, आत्मा में अनन्त गुण हैं। ज्ञान गुण में प्रत्येक समय पर्याय होती है। जब तेरी क्षयोपशम रूप ज्ञान की पर्याय अपनी योग्यता से गाली सम्बन्धी ज्ञान की होती है उस समय गाली मात्र ज्ञान का ज्ञेय है क्योंकि जब तेरे ज्ञान का उघाड़ जिस प्रकार हो, उस समय ज्ञेय भी उसके अनुकूल ही होता है।

सामने गाली आई—तो ज्ञान बढ़ा। पहले गाली सम्बन्धी ज्ञान नहीं था। अब गाली का ज्ञान हुआ। हमें गुरु ज्ञान देवे,उसका उपकार मानना चाहिए या उस पर गुस्सा करना चाहिए।

(५) अज्ञानी कहता है मुझे गाली नहीं चाहिए अर्थात् मुझे उस सम्बन्धी अपनी ज्ञान की पर्याय नही चाहिए। ज्ञान पर्याय आती है ज्ञान गुण से और ज्ञान गुण है आत्मा का। अर्थात् मुझे आत्मा नही चाहिए। ऐसी मान्यता वाले को शास्त्रों में आत्मघाती-महा पापी कहा है।

प्र०—आत्मघाती, महापापी, मूढ़ कहाँ पर लिखा है ?

उ०—पुद्गल दरव वहुभांति, निन्दा-स्तुति-वचन रूप परिणमे।
सुनकर उन्हें 'मुझको कहा गिन रोष तोष जु जीव करे॥
पुद्गल दरव शव्दत्व परिणत, उसका गुण जो अन्य है।
तो नहीं कहा, कुछ भी तुझे, हे अबुध ! रोष तूं क्यों करे॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

यह जानकर भी, मूढ़ जीव पावै नहीं, उपशम अरे।
शिव बुद्धि को पाया नहीं, वो पर ग्रहण करना चहे॥

इसलिए वस्तु स्वरूप को जानने से ही जीवन में शान्ति आ सकती है और उपाय नहीं है।

प्र० १००—तीन प्रकार के ईश्वर कौन-कौन से है उनके जानने से क्या लाभ है ?

उ०—(१) जड़ेश्वर (२) विभावेश्वर, (३) स्वभावेश्वर।

(१) जड़ेश्वर—प्रत्येक द्रव्य गुणों का समूह है। पुद्गल द्रव्य वह भी गुणों का समूह है। भाषा, मन, वाणी, कर्म आदि परिणमन पुद्गल का स्वयं स्वत: है,प्रत्येक पुद्गल जडेश्वर है जड़ेस्वर आत्मा से किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है, तब जड़ेश्वर जाना।

(२) विभावेश्वर—हिंसादि भाव, अहिंसा आदि भाव विभावेश्वर कहलाते हैं। अज्ञानी को हजारों तीर्थंकरादि भी ज्ञानी नहीं बना सकते, क्योंकि अज्ञानी विभाव करने में भी ईश्वर है।

(३) स्वभावेश्वर—अनन्त गुणों का पिण्ड जो अपनी आत्मा है, वह मेरा स्वभावेश्वर है, जीव स्वभाव रूप परिणमन करे, उसे अनन्त प्रतिकूलता रुकावट नहीं कर सकती हैं। ऐसा जानकर अपने ज्ञायक स्वभाव का आश्रय लेकर धर्म की प्राप्ति हो, तब तीनों ईश्वर का पता चलता है।

प्र० १०१—धर्म प्राप्ति के लिए क्या करना चाहिए ?

उ०—(१) अनादि काल से आजतक अनन्त शरीर धारण किये, परन्तु एक रजकण भी अपना नहीं बना। रजकण कहता है, मैं तेरा स्वामीपना स्वीकार नहीं करता हूँ, लेकिन तू ज्ञान स्वभावी आत्मा होने पर भी अपनी मूर्खता से मेरा स्वामी बनता हैं। तू मेरा स्वामी बन तो नहीं सकता, परन्तु मान्यता में स्वामी बनने से तुझे

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

आकुलता हुए विना नहीं रहेगी। जबतक तू मेरा स्वामीपना मानता रहेगा तबतक चारों गतियों में घूम-घूम कर निगोद की सैर करता रहेगा।

(२) अनादिकाल से आज तक असख्यात लोक प्रमाण विकार भाव किया लेकिन वह का वह विकार नहीं रहा। जैसे पाँच दिन पहले हमारी किसी से लड़ाई हुई, उस समय जो लाल-पीले हुए थे—अब आज विचार करने पर वैसा लाल-पीला पना दृष्टि में नहीं आता है अर्थात् वह का वह विकार नहीं रहता। विकार आकुलता का कारण है, शुभाशुभ दोनों आकुलता रूप है-दुःख रूप है, इसलिए पात्र जीवों को इनसे दृष्टि उठा लेनी चाहिए।

(३) अनादिकाल से आज तक एक रूप रहने वाला जो अपना त्रिकाली स्वभाव है उसका लक्ष्य नहीं किया है, यदि उसका लक्ष्य करे, तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति होती है। राग विकार और पर वस्तु फिरने वाली है, अध्रुव है और अपना ज्ञायक स्वभाव फिरने वाला नहीं है, ध्रुव है; वह ही प्राप्त करने योग्य है, अध्रुव शरीर-धन-विकार-लक्ष्मी आदि प्राप्त करने योग्य नहीं है।

प्र० १०२—ज्ञानी को बंध नहीं होता और अज्ञानी को होता है वह क्यों ?

उ०—जैसे किसी की आँख पर पट्टी बाँध दो, तो (१) वह पर पदार्थों को नहीं देख सकता, (२) पट्टी को भी नहीं देख सकता है, (३) शरीर को भी नहीं देख सकता है। यदि जरा पट्टी को दूर करदो, तो वह (१) पर पदार्थों को भी देख सकता है, (२) पट्टी को भी देख सकता है, और (३) शरीर को भी देख सकता हैं; उसी प्रकार अज्ञानी के ऊपर अनादिकाल से एक-एक समय करके मोहराग-द्वेष रूप मिथ्यादर्शन-ज्ञान-चारित्र की पट्टी बँधीं हुई हैं, उसी पट्टी के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नशे में (१) नहीं स्व को जानता है (२) नही पर को जानता है (३) नहीं विकार को जानता है। यदि अपने त्रिकाली स्वभाव के आश्रय से पट्टी को दूर कर दे, तो (१) स्व को जानता है (२) पर को जानता है और (३) विकार को भी जानता है। मिथ्यादृष्टि को जैसा वस्तु स्वरूप है, वैसा दृष्टि में नहीं आता है इसलिए बंध होता है और ज्ञानी को जैसा वस्तु स्वरूप है वैसा ही ज्ञान में आता है इसलिए बंध नहीं होता है। समयसार जी में १९ वीं गाथा में मिथ्यादृष्टि की पहिचान और ७५ वीं गाथा में ज्ञानी की पहिचान बतलाई है।

प्र० १०३—पर का दोष देखने वाले अज्ञानी के स्वभाव को ज्ञानीयों ने 'अनीति' 'हरामजादीपना आदि शब्दों से क्यों सम्बोधन किया है ?

उ०—जैसे कोई पतली सी चादर ओढ़कर सो रहा हो, उस पर कोई जरा धीरे से हाथ फेरे, तो तुरन्त जाग जाता है; उसी प्रकार पात्र जीव को ज्ञानी कहते हैं तेरा कार्य तो मात्र ज्ञाता-दृष्टा है, पर से विकार से तेरा सम्बन्ध नहीं है। इतना कहते ही ज्ञानी हो जाता है। और जैसे जिसने अपने ऊपर मोटे मोटे ३ गद्दे गेर रक्खे हो, उस पर कोई लाठियाँ भी बरसावे तो वह जागता नहीं है; उसी प्रकार अनादि के अप्रतिबुद्ध को ज्ञानी बारम्बार समझाते हैं परन्तु वह समझता नहीं है इसलिए ज्ञानियों ने "हरामजादीपना" आदि शब्दों द्वारा उसके भले के लिए ही सम्बोधन किया है। यह उनका बड़ा उपकार है।

प्र० १०४—जब जीव विकार करता है, तब उसी के अनुसार कर्म का बंध होता है यह बात तो ठीक है, परन्तु दूसरा पक्ष कहता

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

है कि कार्माणवर्गणा में से जब कर्म बंध होने की योग्यता होती है, तब जीव को विकार कहना ही पड़ेगा, यह आप क्यों नहीं कहते ?

उ०—(१) उस समय होगा कोई जगत में ऐसा अज्ञानी जो विकार करता होगा। तुझे विकार करना पड़ेगा, यह बात कहाँ से आई। (२) यह जीव स्वयं असने अपराध से विकार करता है ऐसा जाने, तो स्वभाव के आश्रय से विकार को दूर भी कर सकता है (३) यदि कर्म का उदय विकार कराये तो कभी मोह-राग-द्वेष का अभाव नहीं होगा, क्योंकि कर्म का उदय तो समय-समय होता है। (४) जयसेनाचार्य प्रवचनसार गा० ४५ में कहा हैं कि 'द्रव्यमोह का उदय होने पर भी जीव शुद्धात्म भावना केवल द्वारा विकार न करे तो बंध नहीं होता परन्तु निर्जरा होती हैं। (५) यदि द्रव्यकर्म विकार कराये तो जीव जहाँ पड़ा है वहीं पड़ा रहेगा, कभी निगोद से भी न निकलेगा। (६) जैसे अपने घर पर कोई मेहमान आवे, आप उसका आदर न करे, तो वह चला जाता है; उसी प्रकार कर्म का उदय आने पर आप विकार करने रूप उसका आदर न करे तो वह भी चला जाता हैं अर्थात् उसको निर्जरा हो जाती हैं लेकिन अज्ञानी जीव मूर्खता करता है, तब कर्म आकर बंध जाता हैं।

प्र० १०५—समयसार गा० ५० से ५५ तक २९ बोलों को तीन बोलों में किस-किस प्रकार बाँटा है, और इनसे क्या-क्या लाभ है ?

उ०—(१) रंग (पुद्गल) (२) राग (विकार) (३) भेद (गुणभेद) इन तीनों के आश्रय से अधर्म की प्राप्ति होती है, धर्म की प्राप्ति नहीं। इनसे दृष्टि हटा कर स्वभाव पर दृष्टि दे, तो भला हो। अर्थात् (१) नीरंग, (२) नीराग, (३) निर्भेद जो अपना त्रिकाली स्वभाव हैं उसका आश्रय ले, तो ही धर्म की शुरूआत होकर, वृद्धि होकर, मोक्ष की प्राप्ति होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० १०६—करूँ, विस्मरूँ और मरूँ पना मानता है उसका फल क्या है ?

उ०—(१) मैं पर का करूँ-करूँ, (२) तो आत्मा को समय समय विस्मरूँ, और (३) समय-समय भयंकर भाव-मरण से मरूँ,

इसलिए जो जीव पर के करने-धरने के भाव में लगा रहता है, उसका फल निगोद है और उसका मिथ्यात्व गुणस्थान है।

प्र० १०७—मैं परका ना करू, ऐसे श्रद्धानादि का क्या फल है ?

उ०—(१) मैं परका कुछ ना करूँ किन्तु आत्मा को स्मरूँ (चौथा गुणस्थान) (२) अपने स्वरूप में ठहरूँ (६-७वाँ गुणस्थान) (३) रागादि को सर्वथा परिहरूँ (१२वाँ गुणस्थान) (४) मोक्ष लक्ष्मी को करूँ (१३-१४ वां गुणस्थान और सिद्धदशा)।

प्र० १०८—नो के अंक को अफर क्यों कहते हैं ?

उ०—नो का पहाड़ा पढ़ते जावे, तो सबका जमा नौ ही होता है, इसलिए नो के अंक को अफर कहा जाता है। जैसे (१)९ दूनी १८= तो १ और ८ जोड़ ९ हुए। (२) ९ तीया २७=तो २ और ७ का जोड़ ९ हुआ, इसी प्रकार आगे जानना।

प्र० १०९—आत्मा में जोड़, बाकी गुणा और भाग कैसे करना चाहिये ?

उ०—(१) जोड़—अपनी आत्मा में शुद्धता का जोड़ करना। (२) बाकी—अपनी आत्मा में से राग विकार का बाकी करना। (३) गुणा—शुद्धि का गुणाकार रूप करना। (४) भाग—भाग करते हुए जो एक ज्ञायक भाव बचा, वह "मैं" यह आत्मा का जोड़, बाकी गुणा और भाग हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ११०—सबसे सूक्ष्म कौन है और उसके जानने से क्या लाभ है ?

उ०—(१) जब औदारिक शरीर को स्थूल कहे, तो वैक्रियिक शरीर सूक्ष्म है। (२) जब वैक्रियिक शरीर को स्थूल कहे, तो आहारक शरीर सूक्ष्म है। (३) जब आहारक शरीर को स्थूल कहे, तो तैजस शरीर सूक्ष्म है। (४) जब तैजस शरीर को स्थूल कहे, तो कार्माण शरीर सूक्ष्म है। (५) जब कार्माण शरीर को स्थूल कहे, तो पुण्य-पाप विकारी भाव सूक्ष्म हैं। (६) जब विकारी भावों को स्थूल कहे, तो शुद्ध पर्याय सूक्ष्म है। (७) जब शुद्ध पर्याय को स्थूल कहे, तो त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव सूक्ष्म है।

इसलिए एक मात्र अपना त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव अति सूक्ष्म है। उसका आश्रय लेने से ही धर्म की शुरूआत, वृद्धि और पूर्णता होती है। त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव की अपेक्षा सब स्थूल है। स्थूल का आश्रय लेने से चारों गतियों में परिभ्रमण करना पड़ता है।

प्र० १११—पात्र धीर पुरुष कौन है ?

उ०—जैसे जब राक्षसों ने देवों को तंग किया, तब वह भगवान के पास गये, कि हमें राक्षस तंग करते हैं। तब भगवान ने कहा, राक्षसों से बचने के लिए यदि समुद्र में से अमृत निकाल कर पी लिया जावे, तो राक्षस नुकसान नहीं पहुँचा सकेंगे। तब देवों ने समुद्र को मथना शुरू किया तो उसमें से कीमती रत्न निकले, तो उन्होंने उसकी परवाह नहीं की, क्योंकि उनको तो अमृत की आवश्यकता थी। फिर मथते-मथते हलाहल जहर निकला, तब भी घबड़ाये नहीं, क्योंकि उनको तो अमृत चाहिए था। फिर बाद में मथते-मथते अमृत की प्राप्ति हुई तब राक्षसों से देवों की रक्षा हुई; (यह लौकिक दृष्टान्त है) उसीप्रकार यह जीव अनादि से

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

एक-एक समय करके दुःखी हो रहा है, तब वह दुःखी जीव भगवान के समोशरण में गया, तो भगवान को दिव्यध्वनि में आया, यदि यह जीव दुःखों से बचना चाहता है, तो अपना जो त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव समुन्द्र है, उसका आश्रय ले तो यह दुःखों से मुक्त हो सकेगा। तब पात्र जीव स्वभाव का आश्रय लेने का प्रयत्न करता है, तो बीच में शुभभाव आता है तो पात्र जीव उसकी ओर दृष्टि नहीं करता, क्योंकि उसे तो सम्यग्दर्शनादि की आवश्यकता है। कोशिश करते-करते कभी अशुभ पाप का उदय भी आ जाता है,तब भी पात्र जीव घबराते नहीं, क्योंकि उनको तो रत्नत्रय की आवश्यकता है। फिर विशेष पुरुषार्थ किया तो सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हुई,तब मोह राग द्वेषरूप राक्षसों से बचा ऐसे धीर पुरुष सम्यग्दृष्टि आदि हैं।

प्र० ११२—दिगम्बर नाम धराने पर भी, क्या बौद्ध, सांख्य, चार्वाक, श्वेताम्बर हो सकता है ?

उ०—(१) दिगम्बर जैन कहलाने पर भी, लड़का मरने से वह मर गया, संसार के पदार्थों में इष्ट-अनिष्ट परिवर्तन होने पर अपने में इष्ट-अनिष्ट पना मानना वह स्वयं क्षणिक वादी बौद्ध है। (२) साँख्य मतावलम्बी—दिगंम्बर जैन नाम धराके, आत्मा तो सर्वथा त्रिकाल शुद्ध ही है, कर्म ही रागद्वेष कराता है,कर्म ही संसार-मोक्ष कराता है ऐसी मान्यता वाला स्वयं सांख्य मतावलम्बी है। (३) चार्वाक—दिगम्बर जैन नाम धराके अरे भाई ! शरीर की सम्हाल रक्खो। यदि शरीर को ठीक ना रक्खोगे, तो धर्म नहीं होगा इत्यादि मान्यता वाला स्वयं चार्वाक है। (४) दिगम्बर नाम धराके शुभभाव करो तो तुम्हें धर्म का लाभ होगा इत्यादि मान्यता वाला स्वयं श्वेताम्बर है।

प्र० ११३—इन्द्रियों को जीतना क्या है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—ज्ञानी कहते हैं कि शास्त्रों में कथन आया है कि इन्द्रियों को जीतो। अज्ञानी कहता है इन्द्रियाँ तो ज्ञान में निमित्त पड़ती हैं, उन्हें क्यों जीतना चाहिए ? ज्ञानी कहते हैं इन्द्रियाँ ज्ञान में निमित्त है, तो भोग में भी निमित्त हैं, इसलिए इन्द्रियों को जीतना चाहिए। अज्ञानी कहता है जितनी भोग में निमित्त है उसे जीतो और जो ज्ञान में निमित्त है उसे मत जीतो। ज्ञान कहता है इन्द्रियाँ पुद्गलों के जानने में निमित्त है अतीन्द्रिय ज्ञायक स्वभावी आत्मा को जानने में निमित्त नहीं है इसलिए इन्द्रियों को जीतना चाहिए।

प्र० ११४—इन्द्रियों का जीतना क्या है ?

उ०—द्रव्येन्द्रिय भावेन्द्रिय, इन्द्रियों के विषयभूत पदार्थों से सर्वथा पृथक् अपनी आत्मा का अनुभव होना वह इन्द्रियों को जीतना है। [देखो, निश्चय स्तुति पाठ सातवाँ]

प्र० ११५—नन्द, आनन्द, महानन्द, सहजानन्द और परमानन्द से क्या तात्पर्य है तथा इनमें गुणस्थान लगाकर बताओ ?

उ०—(१) नन्द—अपना त्रिकाली भगवान है उसकी मर्यादा में जो रहता है उसे आनन्द की प्राप्ति होती है। अपने नन्द की विशेष एकाग्रता करने से महानन्द की प्राप्ति होती है। नन्द में और विशेष एकाग्रता करने से सहजानन्द की प्राप्ति होती है और फिर पूर्ण एकाग्रता करने से परमानन्द की प्राप्ति होती है।

(१) नन्द=त्रिकाली ज्ञायक स्वभाव। (२) आनन्द=चौथा गुणस्थान। (३) महानन्द=सातवाँ गुणस्थान। (४) सहजानन्द=१२वाँ गुणस्थान। (५) परमानन्द=१३-१४वाँ गुणस्थान और सिद्ध दशा।

जो अपने नन्द का आश्रय ना ले उल्टा पर नन्द का आश्रय, शरीर का आश्रय, विकार का आश्रय, शुद्ध पर्याय का आश्रय लेता है, वह चारों गतियों में घूमता हुआ निगोद में चला जाता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० ११६—अमृतचन्द्राचार्य जी ने सम्यग्दर्शन की प्राप्ति का उपाय क्या बताया है ?

उ०—(१) जीव को अनादिकाल से अपने स्वरूप की भ्रमणा है, इसलिए प्रथम आत्मज्ञानी पुरुष से आत्मा का स्वरूप सुनकर युक्ति द्वारा आत्मा ज्ञान-स्वभावी है—ऐसा निर्णय करना।

(२) फिर पर पदार्थ की प्रसिद्धि के कारण जो इन्द्रिय तथा मन द्वारा प्रवर्तित बुद्धि को मर्यादा में लाकर अर्थात् पर पदार्थों की ओर से लक्ष्य हटाकर स्वसन्मुख लक्ष करना।

(३) पश्चात् "आत्मा का स्वरूप ऐसा ही है, अन्यथा नहीं" ऐसा निर्णय हुआ।

(४) निर्णय किये हुए आत्मा के बोध को दृढ़तारूप से धारण करना यह सम्यक् मतिज्ञान हुआ।

(५) तत्पश्चात् अनेक प्रकार के नय पक्षों का आलम्बन करने वाले विकल्पों से आकुलता उत्पन्न करनेवाली श्रुत ज्ञान की बुद्धि को भी गौणकर उसे भी आत्माभिमुख करता हुआ विकल्पों को पारकर स्वानुभव दशा प्राप्त करता है।

[समयसार गाथा १४४ के आधार से]

प्र० ११७—ज्ञानी के पास जाकर, क्या करे तो कल्याण का अवकाश है ?

उ०—जैसे एक गरीव आदमी था। उसके चार लड़के थे। उस आदमी ने ४ काँच के टुकड़े लाकर जमीन में दाब दिये और अपने लड़कों को बुलाकर कहा बेटा, मेरे मरने के बाद जब तुम भूखे मरने लगो तब तुम ऐसा करना-मैंने ४ हीरे जमीन में दाब दिये हैं। उनमें से एक हीरा निकालकर धन्नालाल सेठ के पास जाना, वह तुम्हें ठीक पैसे दे देगा, उससे अपना गुजारा चलाना।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

पिता तो मर गया—खाने को रहा नहीं तब उन्होंने जमीन खोदकर हीरों को निकाला और एक हीरे को लेकर धन्नालाल सेठ के पास गये। धन्नालाल समझ गया। उसने कहा, यह हीरा बहुत कीमती है इसका ग्राहक इस समय नहीं है। तुम इस हीरे को इस अलमारी में रख दो और जितना रुपया गुजारे के लिए चाहिए ले जाओ और आज से यहीं काम सीखना शुरू कर दो। तो उन्होंने ऐसा ही किया। काम करते-करते दो साल हो गये, तब धन्नालाल सेठ ने कहा, तुम आज अपने हीरे को निकाल कर लाओ, आज उसका खरीददार आया है। तब उसने अलमारी में से निकाला और देखकर फेंक दिया और सेठ से आकर कहा, सेठ जी वह तो काँच का टुकड़ा था, आपने उसे कीमती कैसे बताया था। सेठ ने कहा—भाई जिसदिन तुम उसे लेकर आये थे, यदि मैं काँच का टुकड़ा कहता तो तुम विश्वास ना करते और यह कहते कि यह सेठ हमें ठगना चाहता है इसलिए मैंने ऐसा कहा था; उसीप्रकार अज्ञानी ने अनादिकाल से दिगम्बर धर्म धारण करने पर भी शुभभाव करते-करते धर्म हो जावेगा, ऐसी मान्यता पक्की कर ली है। इसलिए जब हम ज्ञानी के पास जावे तो अपनी मान्यता को तिजोरी में बन्द करके उनकी बात सुने और विचारे, तो कल्याण का अवकाश है। अतः प्रथम सच्चे गुरु का निर्णय करके, जैसा गुरुने कहा, देव ने कहा, और जैसा उपदेश दिया। वैसा ही निर्णय करके, अपने अन्तरंग में जब तक भावभासन ना हो तबतक पात्र जीव को बराबर उद्यम करना चाहिए परन्तु जो गुरु की बात झूठी माने, उसके कल्याण का अवकाश नहीं है।

प्र० ११८—जे विनयवन्त सुभव्य उर, अम्बुज प्रकाशन भान है। जे एक मुख चारित्र भासत, त्रिजग माहीं प्रधान है" इसका क्या अर्थ है?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—जिनेन्द्र भगवान की वाणी में आया है कि तीन काल और तीन लोक में चारित्र ही प्रधान है (यहाँ 'मुख' का अर्थ मुख्य है) इसलिए विनयवन्त सुभव्य (अति आसन्न) जीवों को चारित्र ग्रहण करना चाहिए। यदि चारित्र धारण ना कर सके तो श्रावकपना ग्रहण करना चाहिए और यदि श्रावकपने को भी प्राप्त ना कर सके, तो सम्यग्दर्शन तो प्राप्त कर ही लेना योग्य है।

प्र० ११९—यह कहाँ आया है कि पहले चारित्र का उपदेश और जो चारित्र ना ग्रहण कर सके, तो फिर श्रावक, सम्यक्त्व का उपदेश देना चाहिए ?

उ०—पुरषार्थसिद्धिउपाय गाथा १७ में लिखा है कि जो जीव सम्पूर्ण निवृत्तिरूप मुनिदशा को कदाचित् ग्रहण न कर सके, तो उसे गृहस्थाचार का कथन करे। तथा १८ वें श्लोक में "जो उपदेशक मुनिधर्म का उपदेश न देकर श्रावक धर्म का उपदेश देता है उस उपदेशक को सिद्धान्त में दण्ड पाने का स्थान कहा हैं।

प्र० १२०—दिव्य विपट पहुपन की वर्षा, दुन्दुभि आसन वाणी
सरसा, छत्र चमर भामण्डल भारी, ये तुव प्राप्तिहार्य मनहारी॥

इस छन्द का क्या अर्थ है ?

उ०—इस शान्ति पाठ में भगवान के आगे जो आठ प्रातिहार्य होते हैं उनके नाम है :—

१. दिव्य विपट (अशोकवृक्ष) २. पहुपन की वर्षा (पुष्पों की वर्षा का होना) ३. दुन्दुभि (बाजों का बजना) ४. आसन (सिंहासन) ५. वाणी सरसा (दिव्यध्वनि) ६. छत्र ७. चमर ८. भामण्डल

प्र० १२१—साम्यवाद कितने प्रकार का है ?

उ०—तीन प्रकार का है :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१) भोगभूमि का साम्यवाद=पुण्य का करीब साम्यपना। (२) निगोद का साम्यवाद=अनन्त दुःख। (३) सिद्धदशा का साम्यवाद=अनन्त अव्याबाध सुख।

प्र० १२२—चार प्रकार की मुक्ति को कार्माण शरीर की अपेक्षा बाँटो ?

उ०—(१) दृष्टि मुक्ति में=७॥ कर्म का सम्बन्ध है (२) मोह मुक्ति में=सात कर्म का सम्बन्ध है। (३) जीवन मुक्त मुक्ति में=चार अघाति कर्म का सम्बन्ध है (४) विदेह मुक्ति में=किसी भी कर्म का सम्बन्ध नहीं है।

प्र० १२३—जगत में एक समय में पूरा होने वाला अदभुत कार्य क्या-क्या हैं ?

उ०—(१) सिद्ध भगवान एक समय में मध्यलोक से लोक के अग्रभाग में चले जाते है। (२) जाने में एक समय में धर्मास्तिकाय का निमित्त होता है। (३) केवली भगवान जबकि केवल समुद्घात करते हैं तब सम्पूर्ण कालाणु एक समय में एक साथ निमित्त होते हैं। (४) एक परमाणु एक समय में चौदह राजू गमन कर जाता है। (५) जीव की पर्याय में रागादि विकार एक समय का है और भगवान आत्मा के लक्ष्य से नाश को प्राप्त हो जाता है।

प्र० १२४—धर्म का अवकाश कब है ?

उ०—(१) जिसको आगम ज्ञान ना हो, उसे कभी भी आतम ज्ञान नहीं होगा। (२) परन्तु जिसको आगम ज्ञान हो, उसे आतम ज्ञान होवे ही होवे, ऐसा नियम नहीं है। (३) लेकिन जिसको आतम ज्ञान होता है उसे आतम ज्ञान होता ही है, किन्तु आगम ज्ञान में अटक नही रहती है। (४) आतम ज्ञान होने पर ही आगम ज्ञान कहा जाता है, क्योंकि उपादान-के बिना निमित्त नहीं होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० १२५—शास्त्र ज्ञान कब कार्यकारी कहा जाता है और कब नहीं ?

उ०—(१) भिन्न वस्तु भूत आत्मा का भान ना हो तो शास्त्र ज्ञान कार्य कारी नहीं, परन्तु अनर्थकारी बन जाता है। (२) भिन्न वस्तु भूत आत्मा का भान होना ही शास्त्र ज्ञान का प्रयोजन है।

प्र० १२६—किसके आश्रय से शुद्ध पर्याय नियम से प्रगट हो ?

उ०—अपने त्रिकालीकारण परमात्मा की ओर दृष्टि करे तो नियम से शुद्ध पर्याय प्रगट होती है और पर द्रव्यों के और विकार के आश्रय से शुद्ध पर्यायें कभी भी प्राप्त ना हो। जैसे भावनगर नरेश ने एक नौकर को निकाल दिया तो वह भावनगर के नरेश के पास आया। तो नरेश ने पूछा तुम क्यों आये ? उसने कहा "सरोवर के पास कौन न आवे ? भावनगर नरेश ने कहा, जाओ तुम्हारी नोकरी दी; उसीप्रकार जो अपने सरोवर रूप त्रिकाली कारण परमात्मा भगवान के पास जावे, उसे धर्म की प्राप्ति नियम से होती है।

प्र० १२७—सिद्धान्त (नियम) किसे कहते हैं ?

उ०—जिसमें कोई अपवाद ना हो वह सिद्धान्त (नियम) है। जैसे दो और दो चार होते हैं चाहे अमरिका में जावे या रुस में जाओ; उसी प्रकार सिद्धान्त हमेशा एकसा होता है, जिसमें कहीं भी अन्तर नहीं आता है।

प्र० १२८—निगोद किसका फल है ?

उ०—एक ज्ञानी की विराधना का फल निगोद है अर्थात् अपने ज्ञायक स्वभाव की विराधना का फल निगोद है। जहाँ एक ज्ञानी की विराधना हैं वहाँ अनन्त ज्ञानी की विराधना हैं।

प्र० १२९—मोक्ष किसका फल है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—एक ज्ञानी की आज्ञा का आराधन का फल मोक्ष है अर्थात् अपने ज्ञायक स्वभाव की आराधना, सो मोक्ष है। जहाँ एक ज्ञानी की आराधना हैं वहाँ अनन्त ज्ञानियों की आराधना हैं।

प्र० १३०—निश्चय गति कितनी हैं ?

उ०—निगोद और मोक्ष बाकी चार तो मात्र हवा खाने की हैं। जैसे आप बम्बई समुद्र पर सैर करने गये वहाँ पर आपने चार घण्टे सैर की फिर वापस घर को; उसी प्रकार यह जीव निगोद से निकलकर मनुष्य आदि पर्याय पायी, अपनी ओर नहीं झुका तो फिर निगोद है और अपनी ओर झुका तो मोक्ष है।

प्र० १३१—मनुष्य गति मिलने पर भी अपनी आराधना ना की तो क्या फल होगा ?

उ०—त्रस की स्थिति का उत्कृष्ट काल दो हजार सागर से कुछ अधिक है यदि दो हजार सागर के अन्दर आत्मा को यथार्थतया समझले तो मोक्ष की प्राप्ति हो जाती है। यदि ना समझे तो त्रस की स्थिति पूर्ण होने पर निगोद में चला जावेगा—जिसका दृष्टान्त द्रव्यलिंगी मुनि मिथ्यात्व के कारण अल्पकाल में निगोद चला जाता है। सम्यग्दृष्टि को शुभभाव हेय बुद्धि से आता है वह उसका अभाव करके शुद्ध रूप परिणत होकर अल्पकाल में मोक्ष में चला जाता है।

प्र० १३२—भिकारी कौन है और राजा कौन है ?

उ०—(१) जो अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों का, (२) औदारिक आदि शरीरों का, (३) विकारी भावों का, (४) अपूर्ण-पूर्ण शुद्ध पर्यायों का माहात्म्य मानने वाला भिकारी हैं। अपने स्वभाव का आश्रय लेने वाला, वह राजा भगवान हैं।

प्र० १३३—अपराध क्या है और राध क्या है ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—(अ)(१) पर पदार्थों का, (२) विकारी भावों का, (३) अपूर्ण-पूर्ण पर्यायों का आश्रय मानना अपराध है।

(आ) अपसे स्वभाव का आश्रय लेना वह राध हैं, प्रसन्नता हैं सुखीपना है।

प्र० १३४—गुरु के कहे अनुसार आज्ञा का पालन करने वाला शिष्य कैसा होता है ?

उ०—अमावस्या की अन्ध रात्रि में १२ बजे गुरु ने शिष्य को जगाया और कहा, देख, मध्यान्ह का सूर्य कैसा प्रकाशित हो रहा है।"

शिष्य ने कहा, हाँ भगवान, ठीक है।

अगले दिन शिष्य ने गुरु से पूछा, हे भगवान ! जो आपने कहा था "देखो मध्यान्ह का सूर्य कैसा प्रकाशित हो रहा है" यह मेरी समझ में नहीं आया, कृपा करके समझाइए। गुरु ने कहा, हमारा तात्पर्य यह था कि तुझे सम्यग्दर्शन तो हो गया है। अब जल्द ही केवलज्ञान रूप मध्यान्ह का उदय होने वाला है।

प्र० १३५—भगवान की भक्ति क्या है और ज्ञानी भगवान की भक्ति कैसे करता है ?

उ०—भगवान की भक्ति का भाव पुण्य भाव है, बंध का कारण है; लेकिन ज्ञानी को अशुभ बंचनार्थ भक्ति का भाव आता है। वह उसे हेय मानता है और भावना भाता है कि—(१) हे भगवान, मेरा वर्तमान आपका भूत काल जैसा है। (आप भी भूत काल मैं रागी-द्वेषी थे, जैसे मैं वर्तमान में हूँ। (२) मेरा भविष्य, आपके वर्तमान जैसा हो। ऐसी भक्ति सम्यग्दृष्टि करता है।

प्र० १३६—मरण के भय का अभाव कैसे हो ?

उ०—जिसे मरण का भय लगता है, उसे आयु के बंध का भय लगना चाहिए। आयु का बंध शुभाशुभ भावों के कारण होता है,

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

इसलिए जिसे आयु का बंध ना करना हो, उसे शुभाशुभ से रहित अपनी आत्मा का आश्रय लेना चाहिए।

फिर शुभाशुभ भावों की उत्पत्ति नहीं होगी। जब शुभाशुभ भावों की उत्पत्ति नहीं होगी, तब आयु का बंध नहीं होगा, फिर मरण का भय रहेगा ही नहीं।

प्र० १३७—वस, खस, रस, कस से क्या तात्पर्य है ?

उ०—इतना करो तो बस। स्वमें वस, पर से खस, आयेगा आत्मा में अतीन्द्रिय रस, वही है अध्यात्म का कस।

प्र० १३८—ज्ञानी प्रतिकूलता के समय क्या विचारते हैं ?

उ०—(१) कोई गाली दे (तो विचारो) उसने मुझे पीटा तो नहीं। (२) यदि पीटे तो (विचारो) उसने जान से तो नहीं मारा। (३) यदि जान से मारे (तो विचारो) उसने तड़फा कर के तो नहीं मारा (४) यदि तड़फा करके मारे (तो विचारो) उसने मेरी आत्मा का तो नाश नहीं किया और मैं तो आत्मा हूँ। उसका कोई नाश कर सकता ही नहीं, अतः उनको दुःख नहीं होता।

प्र० १३९—अज्ञानी लोग कहते हैं पहिला सुख नीरोगी काया, दूसरा सुख लड़का चार, तीसरा सुख सुकुल की नारी, चौथा सुख कोठी में जार, क्या यह ठीक है ? और ज्ञानी क्या कहते हैं ?

उ०—(१) अज्ञानी लोग पहला सुख नीरोगी काया कहते हैं। ज्ञानी कहते हैं अपने ज्ञायक स्वभाव का लक्ष्य करे तो मिथ्यात्वरूपी महारोग का अभाव होता है वह आत्मा की नीरोग दशा है यह पहला सुख है।

(२) अज्ञानी लोग दूसरा सुख चार लड़का कहते हैं। ज्ञानी कहते हैं—अनन्तचतुष्टय की प्राप्ति, वह दूसरा सुख चार लड़का है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) अज्ञानी लोग तीसरा सुख सुकुल की नारी कहते है। ज्ञानी कहते हैं कि शुद्ध परिणति वह सुकुल की नारी है।

(४) अज्ञानी लोग चौथा सुख कोठी में जार अर्थात् कोठी में नाज भरने को कहते हैं। ज्ञानी कहते हैं मेरी कोठीमें असंख्यात प्रदेश और उनमें अनन्तगुण भरे हुए हैं उसमें मग्न रहना यह कोठी में जार चौथा सुख है।

प्र० १४०—शास्त्र श्रवण में नींद आवे तो क्या नुकसान होगा ?

उ०—(१) जैसे एक सेठ स्नान करके सो गया और नल खुला रह गया, तमाम कमरे में पानी-पानी भर गया, घर का सब कीमती सामान खराब हो गया; उसी प्रकार जो शास्त्र में जहाँ-जन्म मरण के अभाव की बात चलती हो, वहाँ सोवे तो कितना नुकसान होगा ? जरा विचारो।

(२) जैसे नई दुल्हन घर में आई। उसने दूध आग पर रक्खा और उसे नींद आ गयी, तमाम दूध जल गया; उसी प्रकार जो जीव शास्त्र में सोता है, अवसर चला जावेगा, चारों गतियों में भटकेगा।

(३) एक बाई ने घी कढ़ाई में डालकर उसमें पूरी डाली, तो उसे नींद आ गई, तो तमाम घी जल गया, पूरी भी काली हो गयीं; उसी प्रकार जो जीव जहाँ जन्म-मरण के अभाव करने की बात चलती है, वहाँ सोता है या उस बात को सुनकर अपने अन्दर नहीं डालता, वह चारों गतियों में घूमकर निगोद चला जाता है। इसलिए पात्र जीव को शास्त्र में कभी नहीं सोना चाहिए बल्कि उस बात को सुनकर अपना कल्याण तुरन्त कर लेना चाहिए ऐसा अवसर आना कठिन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० १४१—निश्चय के बिना व्यवहार पर आरोप क्यों नहीं आता ?

उ०—एक आदमी बढ़िया बादाम ४०) रुपया का १ सेर लाया और घर पर आकर उनको फोड़ा, तो उसमें आधा सेर गिरी निकली—बाकी रहा छिलका वह भी आधा सेर रहा। क्या कोई उस छिलके के २०) देगा ? एक पैसा भी ना देगा; क्योंकि बादाम की गिरी होने के कारण छिलके की कीमत कही जाती है, है नहीं; उसी प्रकार निश्चय हो, तो व्यवहार नाम पाता है। अकेला व्यवहार हो तो वह व्यवहार नाम भी नहीं पाता है। इसलिए निश्चय के बिना व्यवहार का आरोप भी नहीं किया जा सकता है।

प्र० १४२—सम्वर क्या है ?

उ०—शुभाशुभ भावों का रुकना, शुद्धि प्रगट होना, वह सम्वर है।

प्र० १४३—सम्वर में क्या-क्या होता है ?

उ०—त्रिकाली स्वभाव, शुद्ध पर्याय का प्रगट होना, अशुद्धि का उत्पन्न नहीं होना और द्रव्यकर्म का नहीं आना, यह चार बातें होती हैं।

प्र० १४४—इन चार बातों से क्या लाभ रहा ?

उ०—प्रत्येक कार्य में एक ही समय में चार बातें नियम से होती हैं, चाहे वह परिणमन शुद्ध हो या अशुद्ध।

प्र० १४५—प्रत्येक कार्य में चार बातें एक ही समय में नियम से होती हैं, इसका खुलासा कीजिए ?

उ०—जीव अनन्त, पुद्गल अनन्तानन्त, धर्म, अधर्म, आकाश एकेक और लोक प्रमाण असंख्यात कालद्रव्य हैं। इन द्रव्यों में प्रत्येक-

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रत्येक-में अनन्त-अनन्त गुण हैं एक-एक गुण के कार्य में एक ही समय में यह चारो बातें घटित होती हैं। जैसे औपशमिक सम्यक्त्व का उत्पाद, मिथ्यात्व का व्यय, आत्मा का श्रद्धा गुण ध्रौव्य और दर्शन मोहनीय का उपशम।

प्र० १४६—चार बातें कौन-कौनसी हैं?

उ०—उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य और निमित्त।

प्र० १४७—सम्वर में चार बातों के जानने से क्या लाभ है?

उ०—जब प्रत्येक कार्य में चारों बातें एक साथ होती हैं, तो फिर करना क्या? एकमात्र अपने स्वभाव पर दृष्टि दें, तो एक ही समय में अशुद्धि का अभाव, शुद्धि की उत्पत्ति, द्रव्यकर्म का न आना स्वयमेव हो जाता है।

प्र० १४८—तत्व अभ्यास का क्या फल है?

उ०—प्रत्येक द्रव्य में अनन्त-अनन्त गुण हैं एक-एक गुण में एक समय में चारों बातें (उत्पाद, व्यय, ध्रौव्य, निमित्त) होती थी, हो रही है, और होती रहेगी, यह पारमेश्वरी व्यवस्था है। जब सब में ऐसा होता ही है, तब करना क्या रहा? मात्र जानना देखना रहा यह तत्त्व अभ्यास का फल है।

प्र० १४९—तत्व के अभ्यास का और फ़ल क्या है?

उ०—तत्त्व के अभ्यास से संसार का कोई पदार्थ इष्ट-अनिष्ट ना प्रतिभासै, तब स्वयमेव धर्म उत्पन्न होकर, वृद्धि होकर, पूर्णता की प्राप्ति होती है। जब एक-एक गुण में चार बातें अनादिअनन्त होती हैं, होती रहेंगी, और होती थी, ऐसा मानसिक ज्ञान में लेकर सूक्ष्म रीति से गहराई में उतरे तो, तुरन्त सम्यग्दर्शन की प्राप्ति होती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० १५०—कैसा शुभभाव करे-तो कल्याण का अवकाश है, और कैसे-कैसे भाव का, कैसा-कैसा फल है ?

उ०—[(१) कोई जीव दान देता है, इसलिए कि यह लोग बार-बार तंग करते हैं-लो ले जावो। क्या वह दान है, उसका क्या फल होगा और क्या फल नहीं होगा ?]

यह तो तीव्र कषाय भाव है। रुपया गया रुपयों के कारण वह तो जड़ की क्रिया है। उसमें जीव का कुछ कार्य नहीं, वह तो क्रियावती शक्ति का कार्य है। परन्तु मेरे को विशेष तंग ना करे इसलिए क्रोध पूर्वक दान दिया, इससे तो पाप का ही बन्ध है। इससे अगले भव में तिर्यंचादि का संयोग मिलेगा, वहाँ तुझे भी लोग तंग करने पर रोटी का टुकड़ा डाल देगें; बस इसका फल यह है इससे धर्म की प्राप्ति नहीं होगी।

[(२) मेरा नाम हो, अगले भव में मुझे विशेष संपत्ति मिले,ऐसा विचार कर दान देवे, तो उसका क्या फल होगा और क्या फल नहीं होगा ?]

जो जीव कपड़ा आहार औषधादिक देने का भाव करता है उसमें यदि मंद कषाय हो तो पापानुबन्धी पुण्य होगा। कपड़ा-आहार-औषधादिक तो पुद्‌गल का कार्य है उसमें जीव का कुछ कार्य नहीं। उस भाव में एकत्व बुद्धि करे तो मिथ्यात्व सहित का पुण्य बन्ध होता है। इससे अगले भव में शरीर की अनुकूलता, रुपया-पैसे-महल आदि का संयोग मिलेगा, धर्म की प्राप्ति नहीं होगी।

[(३) यात्रा करूँ, पूजा करूँ, शास्त्र पढ़ूँ ऐसा विचार करे, तो इसका क्या फल होगा और क्या फल नहीं होगा ?]

यात्रा करूँ, भगवान की भक्ति करूँ, पूजा करूँ, शास्त्र पढ़ूँ आदि का भाव मन्द कषाय रूप पुण्य का बन्ध है। शरीर के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

चलने, पाठ आदि बोलनें, हाथ जोड़नें आदि की क्रिया तो पुद्गल की हैं । मात्र जो भाव किया है उससे अनुकूल संयोग मिलेगा, धर्म की प्राप्ति ना होगी । जो यात्रा करके आया और आते ही मुनीम पर गुस्सा हो जावे, तुमने हमारा खाने का इन्तजाम नहीं किया, पैर दबाने वाले का इन्तजाम नहीं किया, ऐसे जीव की बात यहाँ पर नहीं हैं, क्योंकि इससे तो पाप का ही बन्ध होता है।

[(४) अध्यात्म शास्त्र का अभ्यास करलूँ, ताकि मेरा आत्मा का भला हो, तो इसका फल क्या होगा और क्या नहीं ?]

अध्यात्म शास्त्रों का अभ्यास करके वस्तुस्वरूप समझकर अपनी आत्मा का हित करलूँ (जो जीव अध्यात्म शास्त्र का अभ्यास इसलिए करता है लोग मेरा आदर करे, मैं बड़ा कहलाऊँ, सब शास्त्र जवानी याद हो जावे, मुझे रुपया-पैसा, आदर-मान आदि की प्राप्ति हो, उस जीव की बात यहाँ पर नहीं है) ऐसा भाव पूर्वक जो अभ्यास करता है, यदि उसका विशेष पुरुषार्थ बढ़ जावे, तो तुरन्त धर्म की प्राप्ति हो जाती है। यदि तत्त्व का अभ्यास करते-करते आयु पूरी हो जावे तो बाद में सच्चे देव-गुरु का ऐसा संयोग मिलेगा कि जिनके निमित्त से सम्यक्त्व आदि की प्राप्ति हो जावे।

इसलिए तत्त्व का अभ्यास विशेष रुचिपूर्वक करने वाले को ही धर्मकी प्राप्ति का अवकाश है।

प्र० १५१—जीव का कल्याण क्यों नहीं होता, इसका कारण क्या है ?

उ०—संसार परिभ्रमण में स्वयं का दोष हैं, परन्तु परका दोष देखता हैं इसलिए इसका कल्याण नहीं होता है। संसार-परिभ्रमण में मेरा ही दोष है ऐसा जानकर निर्दोष स्वभाव का आश्रय ले, तो तुरन्त कल्याण हो जाता है। इस बात को १३ दृष्टान्तों से समझाते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(१) जैसे १० वर्ष का बच्चा ८ वर्ष के बालक को पीट रहा हो, तो लौकिक सज्जन हैरान करने वाले १० वर्ष के बच्चे को ही डाटते हैं; उसीप्रकार यदि कर्म आत्मा को हैरान करते हो, तो लौकोत्तर भगवान सर्वज्ञ हैं। उन्हें हैरान करने वाले कर्म को उपदेश देना चाहिए परन्तु भगवान कहते है, यह जीव अपनी भूल से ही स्वयं हैरान हो रहा है। यदि यह अपनी भूल को जाने और दोष रहित स्वभाव का आश्रय ले तो कल्याण हो जावे और यदि पर का दोष निकालता रहेगा, कभी भी कल्याण ना होगा।

(२) जैसे मुँह पर दाग हैं शीशे में वह दिखाई देता है उसे दूर करने के लिए शीशे को रगड़े, तो क्या दाग साफ हो जावेगा? नहीं; उसीप्रकार अपनी गलती के लिए कर्म से प्रार्थना करे तो क्या वह हट जावेगा? नहीं मुँह के दाग को कपड़े से साफ करदें, तो शीशे में भी साफ दिखाई देगा; उसीप्रकार हम अपनी ओर दृष्टि करे, तो कर्म स्वयं भाग जावे।

(३) जैसे एक डाकू को पचास पुलिस के पहरे में रखा जाता है, ताकि वह भाग न जावे। अज्ञानी लोग पुलिस का जोर देखते हैं; वास्तव में जोर डाकू का है, क्योंकि एक डाकू के लिए ५० पुलिस रखनी पड़ती हैं; उसीप्रकार एक आत्मा को बन्धन में रखने के लिए निमित्त कारण रूप अनन्त रजकण हैं। देखो, अज्ञानी लोग कर्म का जोर देखते हैं, वास्तव में जोर आत्मा का ही है। इसलिए हे भव्य! तेरा स्वभाव अनादि अनन्त हैं। उसका आश्रय ले, तो कल्याण हो जावे और कर्म का दोष देखे, तो कल्याण ना हो।

(४) तत्त्व निर्णय न करने में कर्म का दोष नहीं है, तेरा ही दोष है। जो कर्म का दोष निकालते हैं यह अनीति हैं। यदि मोक्ष की सच्ची अभिलाषा हो तो कर्म का दोष ना निकाले। अपना दोष देखकर निर्दोष स्वभाव का आश्रय ले, तो कल्याण हो जावे।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५) जैसे मुंह टेड़ा करके शीशे से कहे, सीधा हो जा। तो क्या कभी सीधा होगा? नहीं; उसी प्रकार गलती हम करे और कर्म से कहे गलती दूर करो, क्या कभी दूर होगी? नहीं। जैसे हम मुँह को सीधा कर लें तो शीशे में भी सीधा दिखाई देगा; उसी प्रकार हम सीधे हो जावें अर्थात् स्वभाव का आश्रय ले-ले तो कर्म स्वयं ही सीधा है।

(६) गिरनार बहुत ऊँचा पहाड़ है। उस पर ८० वर्ष की बुढ़िया चढ़े तो गिरनार पर्वत समाप्त हो जावेगा, परन्तु बुढ़िया समाप्त ना होगी; उसी प्रकार कर्म की स्थिति प्रवाह रूप से है वह समाप्त हो जावेगी। परन्तु तू अनादि अनन्त रहने वाला समाप्त नहीं होगा। इसलिए हे भव्य! तू स्वयं अनादि अनन्त हैं, उसका आश्रय ले तो संसार समाप्त हो सकता है, पर का आश्रय ले, तो संसार समाप्त नहीं होगा।

(७) दर्शन मोहनीय की स्थिति ७० कोड़ा कोड़ी की है। लोग उसे वलवान कहते हैं। देखो, सबसे पहिले दर्शन मोहनीय ही भागता है। इसलिए हे आत्मा! तू स्वयं बलवान है, उसका आश्रय लेते ही प्रथम मोहनीय भागता है और मोह के जाते ही ज्ञानावरणीय, दर्शनावरणीय, अन्तराय भी भाग जाते हैं। अतः अनन्त चतुष्ट्यमयी अपनी आत्मा का आश्रय ले, तो कल्याण हो जाता है।

(८) दोष तो जीव का है कर्म का देखता है, यह तेरा हरामजादीपना है ऐसा आत्मावलोकन में आया है। ऐसा जाने तो कल्याण का अवकाश है।

(९) बाई जल भरने गई कलशा नीचे गिर गया उसमें खड्डा पड़ गया। उस खड्डे को दूर करने के लिए ऊपर से चोट मारे, क्या खड्डा ठीक होगा? कभों नहीं; उसी प्रकार अपने कल्याण के

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

लिए पर का, कर्मों का, विकारी भावों से लाभ माने, तो क्या कल्याण होगा ? कभी नही। जैसे कलशे में उपर पत्थर रखकर अन्दर से चोट मारे, तो ठीक हो जाता है; उसी प्रकार जीव स्वभाव का आश्रय ले, तो पर्याय में से दोष चला जाता है, कल्याण हो जाता है।

(१०) जैसे कृष्ण के शंखनाद से, धनुष चढ़ाने से पद्मोत्तर राजा की सेना भाग गई और पद्मोत्तर राजा भी भागकर द्रौपती के पास गया हे माता ! मेरी रक्षा करो। तब द्रौपती ने कहा, तुम साड़ी पहर कर श्री फल लेकर मेरे भाई के पास जाओ, वह स्त्री पर हाथ नहीं उठाता: उसीप्रकार यह जीव एकबार अपने स्वभाव का आश्रय ले, तुरन्त कल्याण हो जाता है।

(११) जैसे बन्दर की उलझन इतनी ही है वह मुट्ठी नहीं खोलता; उसी प्रकार यह मात्र अपने स्वभाव का आश्रय नहीं लेता। जैसे बन्दर मुट्ठी खोलदे, तो छूटा ही है; उसी प्रकार जीव अपना आश्रय ले-ले तो संसार अलग पड़ा है।

(१२) तोते की उलझन इतनी ही है कि वह नलिनी को नहीं छोड़ता, यदि छोड़ दे, तो छूटा ही पड़ा है; उसी प्रकार जीव की उलझन उतनी सी है कि स्वभाव का आश्रय नही लेता, यदि ले-ले, तुरन्त कल्याण हो जावे।

(१३) जैसे-मृग मरीचिका में जल मानकर दौड़ता है। इसी से वह दुःखी है; इसींप्रकार यह जीव पर को अपना मानता है, इसीलिए दुःखी है। न माने और स्वभाव का आश्रय ले तो तुरन्त कल्याण हो जावे।

प्र० १५२—जैन किसे कहते हैं और जैन कितने प्रकार के हैं ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—अपनी आत्मा के आश्रय से मोहराग द्वेष को जीत लिया हो वह जैन है।

प्र० १५३—जैन कितने प्रकार के हैं ?

उ०—तीन सच्चे जैन हैं, और चार झूठे प्रकार के हैं।

प्र० १५४—तीन सच्चे जैन कौन-कौन से है ?

उ०—(१) उत्तम जैन=अरहंत और सिद्ध। (२) मध्यम जैन =सातवें गुणस्थान से १२ वें गुणस्थान तक। (३) जघन्य जैन= ४-५-६ गुणस्थान वर्ती जीव।

प्र० १५५—चार झूठे प्रकार के जैन कौन-कौन से हैं ?

उ०—(१) सधैया=जो रोज मन्दिर जाते हैं, शास्त्र पढ़ते हैं, लेकिन शास्त्र का मतलब क्या है, इसका पता नहीं। यह तो जैसे अन्यमतावलंबी है, वैसे यह रहे।

(२) भदैय्या=जो मन्दिर में मात्र भादवे के दश दिनों में ही आते हैं।

(३) लडैय्या=जो मात्र कभी कभी मदिर में लड़ाई करने आते हैं।

(४) मरैय्या=जो चौधरी बनकर मात्र जब कोई लौकिक प्रसंग हो तो उसके यहाँ आते है। हे भाई ! एकबार अपनी आत्मा का आश्रय लेकर सम्यग्दर्शन प्रगट करके देख, फिर अपूर्व आनन्द आवेगा।

प्र० १५६—क्या मोक्षार्थी को जरा भी राग नहीं करना चाहिए ?

उ०—(१) पंचास्तिकाय गा० १७२ में लिखा हैं कि "मोक्षार्थी को सर्वत्र, किंचित् भी राग नहीं करना चाहिए।"

(२) राग कैसा ही हो, वह अनर्थ सन्तति का क्लेश रूप विलास ही है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) ज्ञानी का अस्थिरता सम्बन्धी राग भी मोक्ष का घातक, दुष्ट, अनिष्ट है, बंध का कारण है।

(४) मिथ्यादृष्टि राग को उपादेय मानता है इसलिए उसका राग अनर्थं परम्परा निगोद का कारण है।

(५) परमात्मप्रकाश अध्याय प्रथम गा० ९८ में ज्ञानी का राग पुण्य बंध का कारण और मिथ्यादृष्टि का शुभराग पाप बंध का कारण हैं, ऐसा लिखा है।

प्र० १५७—पद्मनन्दी पंच विंशति में एकत्व अधिकार में (१) सर्व (२) सर्वत्र, (३) सर्वदा और (४) सर्वथा की बात क्यों ली है ?

उ०—हे भव्य ! (१) सर्व द्रव्यों को, (२) सर्वत्र अर्थात् सर्व क्षेत्रों को, (३) सर्वदा अर्थात् सर्वपर्यायों को भूत-भविष्य-वर्तमान कालों को, (४) सर्वथा अर्थात् सबके सर्व गुणों को जानना, तेरा स्वभाव है। ऐसा तू जान, ऐसा जानने से तुझे मोक्ष की प्राप्ति होगी :

और (१) सर्व पर द्रव्यों में, (२) सर्वत्र=सब द्रव्यों के क्षेत्रों में, (३) सर्वदा=सर्व द्रव्यों की भूत, भविष्य, वर्तमान पर्यायों में, (४) सर्वथा=सब द्रव्यों के गुणों में कर्ता-भोक्ता की बुद्धि निगोद का कारण हैं।

ऐसा जानकर ज्ञाता-दृष्टा रहने के लिए एकत्व अधिकार में सर्व सर्वत्र, सर्वदा और सर्वथा की बात की है।

प्र० १५८—पात्र जीव भगवान के दर्शन के समय क्या विचारता है ?

उ०—हे भगवान ! मेरा वर्तमान—आपके भूत जैसा है लेकिन मेरा भविष्य आपके वर्तमान जैसा हो, ऐसी मेरी भावना हैं।

प्र० १५९—धर्म क्या है ?

उ०—(१) वस्तु का स्वभाव वह धर्म है।

(२) चारों गतियों से छूटकर उत्तम मोक्ष सुख में पहुंचावे वह धर्म है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(३) स्वद्रव्य में रहना सुगति अर्थात् धर्म हैं और २८ मूलगुण पालने का भाव; १२ अणुव्रतों का भाव, भगवान के दर्शन का भाव, जिस भाव से तीर्थंकर गोत्र का बंध होता हैं ऐसा सोलह कारण का भाव आदि सब दुर्गति है धर्म नही है।

(४) निश्चय सम्यग्दर्शन-ज्ञानचारित्र की एकता धर्म है, व्यवहार रत्नत्रय धर्म नहीं है।

प्र० १६०—अनन्त चतुष्टय क्या है, किसको इसकी प्राप्ति है ?

उ०—अनन्त दर्शन, अनन्त ज्ञान, अनन्त सुख और अनन्त वीर्य यह चार अनन्त चतुष्ट्य हैं। इनकी प्राप्ति अरहंत भगवान को है और शक्ति रूप से प्रत्येक आत्मा के पास हैं।

प्र० १६१—स्व चतुष्ट्य और पर चतुष्ट्य किस में होता है ?

उ०—प्रत्येक द्रव्य में होता हैं।

प्र० १६२—हम अनन्त चतुष्ट्य की प्राप्ति कैसे करें।

उत्तर :—

(१) मेरी आत्मा अनन्त गुण-पर्यायों-का पिण्ड स्व द्रव्य है।

(२) असंख्यात प्रदेशी मेरा स्व-क्षेत्र हैं।

(३) मेरी अनन्त पर्यायें वह मेरा स्वकाल है।

(४) अनन्त गुणों का पिण्ड मेरा स्वभाव है।

(१) मेरी आत्मा के अलावा अनन्त पर द्रव्यों के गुणपर्यायों का पिण्ड वह परद्रव्य हैं।

(२) इसके अलावा शरीर, कर्म, गिरनारादि का क्षेत्र पर क्षेत्र हैं।

(३) पर द्रव्यों की पर्यायें मेरे लिए पर काल है।

(४) बाकी द्रव्यों के गुणों का पिण्ड मेरे लिए परभाव हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रथम मोटे रूप से पर द्रव्यों के द्रव्य-क्षेत्र-कालभाव को पृथक करे। फिर दूसरे प्रकार से इस प्रकार विचारें—

(१) अनन्त गुणों-पर्यायों का पिण्ड ऐसा विकल्प पर द्रव्य है।
(२) मेरा असंख्यात प्रदेशी क्षेत्र ऐसा विकल्प पर क्षेत्र हैं।
(३) मेरी पर्याएँ—ऐसा विकल्प पर काल है।
(४) अनन्त गुणों का पिण्ड ऐसा विकल्प परभाव है।

(१) निर्विकल्प मात्र वस्तु वह स्व द्रव्य है।
(२) आधार मात्र वस्तु का प्रदेश वह क्षेत्र है।
(३) वस्तु मात्र की मूल अवस्था, स्वकाल है।
(४) वस्तु की मूल की सहज शक्ति वह स्वभाव है।

ऐसा जाने, मानें तो सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति होकर, क्रमशः निर्वाण की प्राप्ति हो।

प्र० १६३—भाव दीपिका में सम्यग्दृष्टि को आप्त क्यों कहा हैं, जबकि आप्त का लक्षण वीतराग, सर्वज्ञ, हितोपदेशी है ?

उ०—(१) जैसे खजांची लाखों रुपया का लेन-देन करता है, परन्तु उसे अपना नहीं मानता; उसी प्रकार सम्यग्दृष्टि को राग के स्वामीपने के अभाव के कारण वीतराग कहा हैं।

(२) सर्वज्ञ=सम्यग्दृष्टि को जितना ज्ञान का उघाड़ हैं और जितने पदार्थों को जानता है, उन्हें जानता ही हैं और जानने का कार्य मेरा है। मैं पर पदार्थों का करूँ या भोगूँ ऐसी एकत्व बुद्धि का अभाव होने से मात्र उनको जानने के कारण सर्वज्ञ कहा है।

(३) हितोपदेशी=तुम अपने आश्रय से ही शुद्धता प्रगट करो, दयादान-पूजा आदि भाव आस्रव बंध का कारण है, निमित्त से उपादान में कार्य नहीं होता है, कार्य उस समय की योग्यता-क्षणिक उपादान से ही होता है, ऐसा हित का उपदेश ही सम्यग्दृष्टि की

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

वाणी में आने से उसे हितोपदेशी कहा है। इसलिए भाव दीपिका में सम्यग्दृष्टि को आप्त कहा है। आप्त के तीन भेद हैं :

(१) अरहंत भगवान=उत्तम आप्त है।

(२) ५ वें गुणस्थान से १२ गुणस्थान तक मध्यम आप्त है।

(३) ४ गुणस्थान वाला जघन्य आप्त है।

प्र० १६४—१२वें गुणस्थान तक आगम में अज्ञानी कहा है, आप चौथे गुणस्थान में ज्ञानी कैसे कहते हो ?

उत्तर—(१) 'जिसमें ज्ञान हो वह ज्ञानी', इस अपेक्षा निगोद से लगाकर सिद्धदशा तक सब ज्ञानी। (२) सम्यग्दृष्टि सो ज्ञानी और मिथ्यादृष्टि सो अज्ञानी, इस अपेक्षा तीसरे गुणस्थान तक अज्ञानी, चौथे गुणस्थान से सब ज्ञानी। (३) 'केवलज्ञानी सो ज्ञानी बाकी सब अज्ञानी; इस अपेक्षा से मति-श्रुत, अवधि, मनःपर्यय ज्ञानी गणधर भी अज्ञानी हैं; मात्र केवलज्ञानी ज्ञानी हैं।

प्रत्येक पात्र जीव को अपेक्षा समझनी चाहिये [समयसार गा० १७७-१७८ के भावार्थ से तथा गा० ३२० के भावार्थ से]

प्र० १६५—श्री पंचास्तिकाय गा० ३ में "समवाओ" शब्द आया है उसमें से अमृताचन्द्रचार्य जी ने कौन कौन से अर्थ निकाले है ?

उत्तर—तीन शब्द निकाले हैं। १ समबाद, २ समवाय, ३ सम् अवाय।

प्र०—(१) समवाद (शब्द समय) किसे कहते हैं ?

उ०—रागद्वेष रहित शब्द को अर्थात् समदर्शिता को उत्पन्न करने वाला कथन, (भगवान की वाणी को) शास्त्रारूढ़ निरुपण, वह समवाद है। समवाद कहो, शब्दसमय कहो, एक ही बात हैं। ज्ञान द्वारा जाने हुए पदार्थ का प्रतिपादन शब्द द्वारा होता है इसलिये उस शब्द को शब्दनय कहते हैं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० १६६—समवाय (अर्थ समय) किसे कहते हैं ?

उ०—समवाय अर्थात् समूह। पंचास्तिकाय के समूह को अर्थात् सर्व समूह पदार्थ को, समवाय कहते हैं। समवाय कहो, अर्थ समय कहो, एक ही बात है। ज्ञान का विषय पदार्थ है, इसलिए शब्दनय से प्रतिपादित किये जाने वाले पदार्थ को भी नय कहते हैं वह अर्थ समय है। शब्द से उस पदार्थ का ज्ञान होना वह अर्थ समय है।

प्र० १६७—सम्‌अवाय (ज्ञान समय) किसे कहते हैं ?

उ०—सम् अर्थात् सम्यक् प्रकार से (मिथ्यादर्शन के नाशपूर्वक), अवाय अर्थात् ज्ञान का निर्णय (सम्यग्ज्ञान) वह सम् अवाय है। सम् अवाय कहो, ज्ञान समय कहो, एक ही बात है। वास्तविक प्रमाण ज्ञान हैं, वह (प्रमाण ज्ञान) जब एक देशग्राही होता है तब उसे नय कहते हैं, इसलिये उसे ज्ञान नय कहा है।

प्र० १६८—समवाद (शब्द समय), समवाय (अर्थ समय), सम् अवाय (ज्ञान समय) दृष्टान्त देकर समझाओ।

उ०—(१) जैसे हमारे रजिस्टर में सौ रुपया लिखा है, वह शब्द समय है (२) तिजोरी में नकद सौ रुपया है, वह अर्थ समय है। (३) हमारे ज्ञान में भी सौ रुपये आये, वह ज्ञान समय हैं; उसी प्रकार गुरुदेव ने कहा, आत्मा तो आत्मा शब्द वह शब्दनय हैं। (२) आत्मा पदार्थ मैं हूँ यह अर्थ समय है। (३) आत्मा का अनुभव होना, वह ज्ञान समय है। जैसे मिसरी शब्द शब्दनय, मिसरी पदार्थ अर्थ समय और मिसरी का अनुभव रूप ज्ञान ज्ञान समय है।

१	शब्दनय	खाते में १००)	आत्मा शब्द	पांच अस्तिकाय कथन
२	अर्थनय	तिजोरी में नकद १००)	आत्मा पदार्थ	पांच अस्तिकाय पदार्थ
३	ज्ञाननय	ज्ञान में १००)	अत्मा का अनुभव	पांच अस्तिकाय का ज्ञान

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रश्न १६९ (१) शब्दसमय, (२) अर्थसमय, (३) ज्ञानसमय आगम के शब्दों में समझाओ ?

उ०—(१) भगवान की वाणी में पाँच अस्तिकाय, ६ द्रव्य, सात तत्व, नौ पदार्थ, निश्चय-व्यवहार, उपादान-उपादेय, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, छह कारक, त्याग करने योग्य मिथ्यादर्शनादि, ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शनादि, आश्रय करने योग्य एकमात्र अपना त्रिकाली भगवान हैं, ऐसा जो कथन आया है, या शास्त्रों में है, यह तो शब्दसमय है।

(२) पाँच अस्तिकाय, ६ द्रव्य, सात तत्त्व; नौ पदार्थ, निश्चय-व्यवहार, उपादान-उपादेय, निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध, छह कारक, त्यागने योग्य मिथ्यादर्शनादि और ग्रहण करने योग्य सम्यग्दर्शनादि, आश्रय करने योग्य एकमात्र अपना त्रिकाली भगवान है ऐसा पदार्थ, वह अर्थ समय है।

(३) जैसा है वैसा ही सब ज्ञान में आना, वह ज्ञान समय है।

प्र० १७०—तीनों समय कब माने कहा जाय ?

उ०—(१) जैसा कथन हो, (२) वैसा ही पदार्थ हो, (३) वैसा ही ज्ञान हो, तीनों समय को माना।

प्र० १७१—शास्त्रों में जैसा कथन आता है और जैसा देवगुरु कहते हैं वैसा ही हम मानते हैं, फिर हमारे अन्दर क्यों नहीं उतरता है ?

उ०—(१) जैसा घर-कुटुम्ब, बेटा-बेटी से प्रीति-प्रेम है; वैसा ही स्व सम्यग्ज्ञानमयी परमात्मा से तन्मय-अचल प्रीति-प्रेम हो जाय, तो सहज में अर्थात् परिश्रम किये विना अन्दर बात उतर जावे परन्तु ऐसा प्रेम न होने के कारण अन्दर बात नहीं उतरती हैं।

(२) जैसे लड़की १६ वर्ष तक माँ-बाप के यहाँ रहती है, उसका पति के साथ सम्बन्ध होते ही सारा प्रेम वहीं आ जाता है; उसी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्रकार देव-गुरु-शास्त्र के कथन के प्रति प्रेम आ जाय, तो अन्दर उतर जावे। परन्तु ऊपर-ऊपर से कहता है कि देव-गुरु-शास्त्र ऐसा कहते हैं—मानता नहीं, इसलिए अन्दर नहीं उतरता है।

(३) एक मालदार आदमी था। उसका रिस्तेदार बहुत गरीब था और बाजार में बोरियाँ ढ़ोने का काम करता था। मालदार आदमी ने रिस्तेदार को बुलाकर कहा, देखो! तुम बाजार में बोरी ढ़ोते हो, हमें बुरा लगता है। अब तुम इस काम को छोड़ दो, और तुम इस मकान में आराम से रहा करो, खूब खाओ, पिओ, रेडियो सुना करो, और खर्चे के लिए जो चाहे मुनीम जी से ले लिया करो। उसने कहा बहुत अच्छा, परन्तु वहाँ पड़े-पड़े उसका मन ना लगे और घर वालों की नजर बचाकर बाहर निकल जाता और बाजार में जाकर बोरी ढ़ोने का काम शुरू कर देता। बोरी उठाकर कहता, अरे जीव! तुझे सब मने करते हैं, बोरी मत उठा, तू आराम कर, इसी प्रकार रोज करता और कहता; उसीप्रकार अनादि से तीर्थंकर, गणधर, आचार्य, ज्ञानी श्रावक, सम्यग्दृष्टि, और शास्त्र कहते हैं कि हे आत्मा! तेरा अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों से, शरीर आँख, नाक, कान, मन, वाणी से और आठ कर्मों से तो किसी भी प्रकार का सम्बन्ध नहीं है। और जो तू दुःखी हो रहा है एकमात्र मोह-राग-द्वेष के साथ एकत्व-बुद्धि से ही हो रहा है और एकमात्र अपने स्वभाव का आश्रय ले तो तेरा कल्याण हो। यह अज्ञानी रोज ऐसा कहता है, परन्तु अपनी खोटी एकत्वबुद्धि को छोड़ता नही है। इसलिए देव-गुरु-शास्त्र के अनुसार कहने पर भी अन्दर नहीं उतरता है। और जैसा देव-गुरु-शास्त्र कहते हैं वैसा ही निर्णय करके अन्तर्मुख होकर सावधान हो जावे तो, तुरन्त अनादि के मिथ्यादर्शनादि का अभाव होकर सम्यग्दर्शनादि की प्राप्ति हो जावे। योगसार में कहा है :—

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ज्यों मन विषयों में रमें, त्यों हो आतम लीन।
शीघ्र मिले निर्वाण पद, धरै न दे नवीन ॥५०॥
व्यवहारिक धंधे फंसे, करे व आतम ज्ञान।
यही कारण जग जीव ये, पावे नहिं निर्वाण ॥५२॥

प्र० १७२—अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ का क्या स्वरूप है ?

उ०—(१) क्रोध—स्वरूप की अरुचि, पर द्रव्य-परभाव की रुचि। (२) मान—पर वस्तु से, शुभाशुभ भावों से अपने को बड़ा मानना तथा पर द्रव्य की क्रिया मैं कर सकता हूँ ऐसा मान्यता। (३) माया—अपने स्वरूप की आड़ मारना अर्थात् पचमकाल है, इस समय किसी को मोक्ष की प्राप्ति तो होती नहीं इसलिए वर्तमान में शुभभाव करो और करते-करते धर्म की प्राप्ति हो जावेगी, यह मायाचारी है। (४) लोभ—पुण्य की संग्रहबुद्धि। मिथ्यादृष्टि को एक ही समय में चारों कषाय एक साथ ही होती हैं, चाहे वह द्रव्यलिंगी मुनि क्यों ना हो। सम्यग्दृष्टि लड़ाई में खड़ा हो, तीर पर तीर छोड़ रहा हो, ९६ हजार स्त्रीयों के वृन्द में बैठा हो, उसे अनन्तानुबंधी क्रोध, मान, माया, लोभ नहीं है।

प्र० १७३—सम्यग्द्रष्टि को अशुभभाव होने पर भी ऐसा क्यों है ?

उ०—अनादि संसार अवस्था में इन चारों ही का निरन्तर उदय पाया जाता है। परम कृष्ण लेश्यारूप तीव्र कषाय हो—वहाँ भी और शुक्ललेश्यारूप मन्द कषाय हो—वहाँ भी, निरन्तर चारों का ही उदय रहता है; क्योंकि तीव्रमन्द की अपेक्षा अनन्तानुबंधी आदि भेद नहीं है' सम्यक्त्वादि का घात करने की अपेक्षा यह भेद हैं। मोक्षमार्ग होने पर इन चारों में से तीन, दो, एक का उदय रहता है, फिर चारों का अभाव हो जाता है। सम्यग्दृष्टि का भव बढ़ता भी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

नही और भव बिगड़ता भी नहीं, क्योंकि सम्यग्दृष्टि के पास सदैव ज्ञायक स्वभावी अमृत की संजीवनी बूटी है। याद रक्खो :—

वाह्य संयोग के अनुसार राग-द्वेष का माप नहीं और बाह्य राग-द्वेष के अनुसार अज्ञानी-ज्ञानी कां का माप नहीं है।

प्र० १७४—मोह-राग-द्वेष क्या है ?

उ०—(१) मोह : अपने स्वरूप की असावधानी और पर में सावधानी।

(२) राग : अपनी आत्मा के अलावा पर पदार्थों में तथा शुभ-भावों में यह मेरे लिए लाभकारक है ऐसी मान्यता पूर्वक प्रीति वह राग है।

(३) द्वेष :— अपनी आत्माके अलावा पर पदार्थों में तथा अशुभ-भावों में यह मेरे लिए नुकसान कारक है ऐसी मान्यता पूर्वक अप्रीति वह द्वेष है।

प्र० १७५—सम्यकत्व होने पर मोह-राग-द्वेष का क्या होता है ?

उ०—मिथ्यात्व का अभाव होने से अपने स्वरूप की सावधानी होती है। कोई भी पर पदार्थ लाभ या नुकसान का कारण है ऐसी मान्यता छूट जाने से अनन्त रागद्वेष छूट गया। ऐसा होने पर स्वरूप में जितनी लीनता करता जाता है, उतनी-उतनी शुद्धता की वृद्धि होकर अल्प काल में परमपद की प्राप्ति हो जाती है।

प्र० १७६—क्या मोह-रागद्वेष के अभाव किये बिना जैन नहीं हो सकता ?

उ०—नहीं हो सकता, क्योंकि निज शुद्धात्म द्रव्य के आश्रय से मिथ्यात्व राग-द्वेषादि को जीतने वाली निर्मल परिणति जिसनै प्रगट की है वही जैन है। वास्तव में जैनत्व का प्रारम्भ निश्चय

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

सम्यग्दर्शन से ही होता है इसलिए पात्र जीव को प्रथम अपने स्वभाव का आश्रय लेकर मोह-राग-द्वेष रहित मेरा स्वरूप है, ऐसा निर्णय कर सम्यग्दर्शन सहित स्वरूपाचरण चारित्र-प्रगट करना अपना परम कर्तव्य हैं।

प्र० १७७—आराधना किसे कहते हैं और कितनी हैं ?

उ०—अपने आत्मा की आराधना अर्थात् आधि-व्याधि और उपाधि से रहित आत्मा की स्वस्थता वह आराधना है।

आराधना चार है—दर्शन, ज्ञान, चारित्र और तप।

प्र० १७८—आधि, व्याधि और उपाधि किसे कहते हैं और समाधि क्या है ?

उ०—(१) आधि=मन के विकल्पों के साथ एकत्व बुद्धि का होना।

(२) व्याधि=शरीर इन्द्रियों के साथ एकत्व का होना।

(३) उपाधि=पर के साथ एकत्व बुद्धि का होना।

आधि-व्याधि-उपाधि रहित आत्मा में स्थिरता होना उसका नाम समाधि है।

प्र० १७९—शंकित कौन होता है और कौन नहीं होता ?

उ०—जो चोरी आदि के अपराध करता है वह लोक में घूमता हुआ मुझे कोई चोर समझकर पकड़ ना ले इस प्रकार शंकित होता हुआ घूमता हैं; और जो अपराध नहीं करता वह लोक में निशंक घूमता है उसे कभी बँधने की चिन्ता उत्पन्न नहीं होती है; उसी प्रकार अज्ञानी पर वस्तुओं से, शरीर इन्द्रियों से, कर्मों से, शुभाशुभ भावों से लाभ-नुकसान मानने के कारण निरन्तर शंकित रहता है। और ज्ञानी की दृष्टि अपने सकल निरावरण अखण्ड एक-प्रत्यक्ष प्रतिभासमय, अविनश्वर शुद्ध पारिणामिक परमभाव लक्षण निज परमात्म द्रव्य पर होने से कभी शंकित नहीं होता है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

प्र० १८०—ज्ञानी पर द्रव्यों के ग्रहण का भाव क्यों नहीं करता ?

उ०—समयसार गा० २०७ में लिखा है कि—

पर द्रव्य, यह मुझ द्रव्य, यों तो कौन ज्ञानी जन कहै।
निज आत्म को निज का परिग्रह, जानता जो नियम से ॥२०७॥

अर्थ—ज्ञानी अपने अनन्त गुणों के अभेद पिण्ड को ही अपना परिग्रह जानता है।

क्या सम्यग्दृष्टि लक्ष्मी, सोना, चांदी, मकान, शरीर, इन्द्रियाँ मन, वाणी, आठ कर्मों, शुभाशुभ विकारीभाव, गुण भेद और अपूर्ण पूर्ण शुद्ध पर्याय को अपना कहेगा ? कभी नहीं कहेगा। क्योंकि एक तरफ राम (अपनी आतमा) और दूसरी तरफ गाम (पर, शरीर, इन्द्रियाँ, कर्म, विकार, शुद्ध पर्याय) के भेद विज्ञान की सच्ची दृष्टि प्रगट होने से ज्ञानी को पर द्रव्यों के ग्रहण का भाव नहीं होता है।

[समयसार गा० २०८] में लिखा है कि—

परिग्रह कभी मेरा बने, तो मैं अजीव बनू अरे।
मैं नियम से ज्ञाता हि, इससे नहिं परिग्रह मुझ बने ॥२०८॥

अर्थ—यदि पर द्रव्य मेरा परिग्रह वने तो, जैसे अज्ञानी ज्ञानी से कहे, आप ५० करोड़ रुपये के स्वामी हैं। ज्ञानी कहते हैं—भाई मुझे ऐसी गाली मत दो, क्या मुझे जड़ बना देना चाहते हो क्योंकि जड़ का स्वामी जड़ होता है।

अज्ञानी कहे—आप बहुत पुण्य शाली हैं जहाँ जाते हैं वहाँ सम्मान होता है।

ज्ञानी कहते हैं—अरे भाई, हमें गाली मत दो क्योंकि में पुण्य शाली अर्थात् विकार शाली नहीं हूँ मैं तो अनन्त ज्ञायक चैतन्य स्वभावी भगवान हूँ। पर द्रव्य को अपना नहीं मानने वाला ज्ञानी कहता है कि (समयसार में कहा कि :—)

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

छेदाय या भेदाय, को ले जाय, नष्ट बनो, भले ।
या अन्य को रीत जाय, पर परिग्रह न मेरा अरे ॥२०९॥

अर्थ—छिद जावे, भिद जावे, कोई ले जावे, नष्ट हो जावे, तथा चाहे जिस प्रकार से चला जावे, वास्तव में यह पर पदार्थ मेरा परिग्रह नहीं है ऐसा जानता हुआ ज्ञानी पर द्रव्यों के ग्रहण का भाव नहीं करता है।

प्र० १८०—ज्ञानी अपनी आत्मा का किस-किस से प्रदेश भेद जानता है ?

उ०—(१) अत्यन्त भिन्न पर पदार्थों से, (२) शरीर, इन्द्रियाँ मन, वाणी से, (३) आठ कर्मों से, (४) शुभाशुभ विकारीभावों से, (५) गुण भेदों से, (६) एक समय की शुद्ध पर्याय जितना भी मेरा स्वरूप नहीं है; इसलिए ज्ञानी इन सबसे अपना प्रदेशभेद जानता है।

प्र० १८१—ज्ञानी अपना निवास कहाँ रखता है, और कहाँ नहीं रखता ?

उ०—जहाँ दुख कभी न प्रवेशी सकता, तहाँ निवास ही राखिए।
सुख स्वरूपी निज आत्म में ज्ञाता होके राचिए ॥१॥

जैसे (१) क्या नारकी नरक में पड़ा ऐसा मानता है-कि में स्वर्ग में पड़ा हूँ ? नहीं मानता है। (२) स्वर्ग का देव स्वर्ग में पड़ा हुआ क्या ऐसा मानता है-कि मैं नरक में पड़ा हूँ ? नहीं मानता है; उसी प्रकार ज्ञानी अनन्त प्रकाश युक्त असंख्यात प्रदेशी मेरा क्षेत्र है, वह सुखधाम स्वरूप है उसमें रहता हुआ ज्ञानी कभी मैं पर द्रव्यों में, शरीर इन्द्रियों में, कर्मो में, विकारी भावों में पड़ा हूँ-ऐसा मानेगा ? कभी भी नहीं।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(२) जहाँ राग कभी न प्रवेशी सकता, तहाँ निवास ही राखिए।
वीतराग स्वरूपी निजआत्म में वस ज्ञाता होके राचिए ॥२॥
(३) जहा भेद कभी न प्रवेशी सकता, तहाँ निवास ही राखिए।
अभेद स्वरूपी निज आत्मं में वस ज्ञाता होके राचिए ॥३॥
(४) जहाँ चार भाव कभी न प्रवेशी सकता, तहाँ निवास ही राखिए।
पारिणामिक स्वभावी निज आत्म में, वस ज्ञाता होके राचिए ॥४॥

श्री समयसार जी के कलश ६६ में लिखा है कि "जो नयों के पक्षपात को छोड़कर सदा अपने स्वरूप में गुप्त होकर निवास करते है वह ही विकल्प जाल से रहित साक्षात् अमृतपान करते है।" और जो पर, विकार, भेदकर्भ, अभेदकर्म, नय के पक्ष में पड़े रहते हैं, उनका विकल्प कभी मिटेगा नहीं और उन्हें वीतरागता की प्राप्ति भी नहीं होगी। इसलिए ज्ञानी तो एक मात्र अपने त्रिकाली ज्ञायक स्वभावी अखण्ड एक आत्मा में हो निवास करता है पर में नहीं करता।

प्र० १८३—किस-किस गति में किस-किस कषाय की मुख्यता है ?

उ०—(१) क्रोध की मुख्यता नरक गति में है, (३) मान की मुख्यता मनुष्य गति में है, (३) माया की मुख्यता तिर्यंच गति में है, (४) लोभ की मुख्यता देव गति में है।

प्र० १८४—यदि व्यवहार बढ़े, तो निश्चय बढ़े, क्या यह ठीक है ?

विल्कुल गलत है क्योंकि, (१) द्रव्यलिगी को व्यवहाराभास जिनागम अनुसार है, उसे निश्चय होता ही नहीं है। (२) ८-६-१० वें गुणस्थान में निश्चय है वहाँ देव, गुरु, शास्त्र, अणुव्रत, महाव्रतादि का विकल्परूप व्यवहार है ही नहीं। (३) केवली भगवान को निश्चय है, व्यवहार है ही नहीं। इसलिए व्यवहार बढ़े तो निश्चय बढ़े यह बात मिथ्यादृष्टियों को है।

प्र० १८५—(१) हमको सम्यग्दर्शन तो हो गया है अब हम क्या

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करे ? (२) हमें सम्यग्दर्शन हुआ है या नहीं, इसकी पहचान क्या है ? (३) ऐसे कौनसे कारण हैं जितने हमको पता चल जावे, कि हमको सम्यग्दर्शन है या नहीं ? (४) कोई कहे, हमें सम्यग्दर्शन है या नहीं, यह केवली जाने ? (५) सम्यग्दर्शन तो हमको है, लेकिन ध्यान कैसे करे ?

उ०—पाँचों प्रश्न मिलते-जुलते ही है। अनादिकाल से एक-एक समय करके जीव को पता नहीं है कि "मैं कौन हूँ ? जिसका मेरे साथ सम्बन्ध है ? किस के साथ मेरा सम्बन्ध नहीं है ? किसको छोड़ूँ ? किसको ग्रहण करूँ ? अज्ञानी जहाँ-जहाँ जाता है, वहाँ-वहाँ प्रत्येक पर में अपनत्व की बुद्धि कर लेता है। मनुष्य पर्याय पाई महान आत्माओं का सत्संग किया, परन्तु जैन धर्म का रहस्य समझ में नहीं आया। कुछ कहना आ गया, मान लिया अपने को ज्ञानी। फिर बन गया त्यागी। ले लिया हाथ मैं पीछी कमण्डल। अपने को मानने लगा वड़ा आचार्य। अरे भाई, अपने को समझे बिना यह सब अनर्थ हो गया, क्योंकि ११ अंग ९ पूर्व का पाठी भी मिथ्यादृष्टि रह जाता है। समयसार गा० २७३ में लिखा है कि भगवान के कहे अनुसार समिति-गुप्ति पालता हुआ भी मिथ्यादृष्टि है। प्रवचनसार में द्रव्य-लिंगी मुनि को संसारतत्त्व कहा है। समयसार गा० १५४ में लिखा है कि अपने त्रिकाली आत्मा का आश्रय नहीं लिया और अशुभ भाव को छोड़कर महाव्रतादि शुभ-भावों को धर्म का कारण मानने लग गया वह नपुसंक है।"

सम्यग्दर्शन होता है उसे स्वयं भासित हो जाता है, किसी से पूछना नहीं पड़ता है। सम्यग्दर्शन चारों गति के संज्ञी जीवों को जो अपने स्वभाव का आश्रय लेते हैं उसको हो सकता है और सम्यग्दर्शन होते ही स्वरूपाचरण चारित्र की प्राप्ति चौथे गुणस्थान में हो जाती है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

जिसने अपनी आत्मा को जाना, उसे समस्त जैन शासन का पता चल जाता है, ऐसा समयसार गा० १५ में कहा है।

सम्यग्दर्शन होते ही ज्ञानियों को सिद्ध दशा कैसी, अरहंत दशा कैसी, श्रेणी कैसी, मुनि दशा कैसी, श्रावक दशा कैसी, सम्यग्दृष्टि की दशा कैसी और मिथ्यादृष्टि कैसे होते हैं उस सबका पता उसी समय चल जाता है। फिर भी कोई पूछे, मुझे है या नहीं, आदि पाँचों प्रश्न मिथ्यादृष्टियों को उठते हैं।

प्र० १८६—नैगमादि सात नयों का अध्यात्मिक रहस्य क्या है ?

उ०—(१) मैं सिद्ध समान शुद्ध हूँ ऐसा संकल्प वह संकल्प ग्राही नैगमनय है; (२) मैं अनन्त गुणों का पिण्ड हूँ यह अभेद ग्राही संग्रह-नय है; (३) मैं दर्शन-ज्ञान-चारित्र वाला हूँ ऐसा भेदग्राही व्यवहार-नय है। (४) पूर्णता के लक्ष से शुरूआत करता हूँ यह ऋजुसूत्र नयका विषय है। (५) जैसा विकल्प उठा है वैसा परिणमन होना शब्दनय का विषय है। (६) उसमें कचास ना रह जावे ८ से १२वें गुणस्थान तक समभिरूढनय का विषय है (७) शुद्धि आगे वढ़ती रहे ऐसा १३-१४ वां गुणस्थान यह एवं भूतनय का विषय है।

प्र० १८७—इन सातों नयों में और क्या विशेषता है ?

उ०—सातों नय एक दूसरे की अपेक्षा सूक्ष्म हैं। नैगमनय की अपेक्षा सूक्ष्म है संग्रहनय और संग्रहनय की अपेक्षा सूक्ष्म हैं व्यवहार नय। इसी अपेक्षा से एवंभूतनय सबसे सूक्ष्म है। अर्थात् एवं भूतनय का विषय अति सूक्ष्म है।

प्र० १८८—नैगमनय का पेट बड़ा भारी है यह क्यों कहां जाता है ?

उ०—नैगमनय...वर्तमान में जो जीव मिथ्यादृष्टि हो उसे सम्यग्दृष्टि कह देता है। जैसे भरत महाराज का पुत्र आदिनाथ

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

भगवान का पोता मारीच जो कि उस समय गृहीत मिथ्यादृष्टि था उसे महावीर कह दिया जबकि मारीच के बड़े-बड़े भव जिसमें निगोद भी शामिल है तब भी नैगमनय की अपेक्षा महावीर कह दिया। निर्विकल्प अवस्था होने पर सिद्ध कह देना तथा राजा श्रेणिक जो कि वर्तमान में पहिले नरक में दु:ख भोग रहा है उसे तीर्थंकर कह देना, इसी अपेक्षा कहा जाता है कि नैगमनय का पेट बड़ा भारी है।

प्र० १८९—सातों नय कौन-कौन से गुणस्थान में होते हैं?

उ०—(१) नैगमनय, संग्रहनय, व्यवहारनय पहला और चौथा गुणस्थान में होता है। (२) ऋजुसूत्रनय—चौथा, पाँचवा, छटा गुणस्थान वाले अविरत, श्रावक, और मुनिपने को स्वीकार करता है। (३) शब्दनय—४-५-६ स्थिति उपदेशकरूप भूमिका है वैसा भाव परिणमित होता है। (४) समभिरूढ़नय—८-९-१०-१२ श्रेणी माँडनेवाले जीवों पर ही लागू होता है। क्योंकि वे श्रेणी में आरूढ़ हो गये हैं। श्रेणी चढ़ गया वह समभिरूढ़नय में गिना जाता है। (५) एवंभूतनय—जैसा द्रव्य है वैसी ही पर्याय में हो जाना। १३–१४वां गुणस्थान का ग्रहण एवंभूतनय में होता है।

प्र० १९०—८-९-१०-१२-१३-१४ वें गुणस्थान वालों को तो उस समय ऐसा विकल्प नहीं आता कि—हम श्रेणी मांड रहे हैं फिर ऐसा क्यों कहा?

उ०—जो जीव सम्यग्दृष्टि हैं और ४-५-६ गुणस्थान में हैं वे जीव विचारते हैं कि ऐसी-ऐसी अवस्था कौन कौन से गुणस्थान में होती है। तथा १३-१४वां गुणस्थान नयों से अतिक्रान्त होने पर भी साधक जीव उसका विचार करते हैं।

प्र० १९१—अध्यात्म में नय किसे कहते हैं?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—"तद् गुण संविज्ञान, सो नया ॥"

अर्थ—जो गुण जैसा है उसका वैसा ही ज्ञान करना वह नय है। इससे यह साबित हुआ जो पर के साथ किसी भी प्रकार का सम्बन्ध हो अध्यात्म उसे नय ही नहीं कहता। पंचाध्यायीकार ने पर के साथ के सम्बन्ध को नयाभास कहा है।

प्र० १९२—नय किसको लागू होते हैं और किसको नहीं ?

उ०—मिथ्यादृष्टि और केवली को नय नहीं होते हैं क्योंकि नय तो भावश्रुत ज्ञान का अंश है। वह सम्यग्दर्शन होने पर ही लागू होता है और केवली नय से रहित है। चौथे गुणस्थान से १२वें तक नय का विषय है।

प्र० १९३—उपचरित सदभूत व्यवहारनय का पृथक-पृथक अर्थ करो ?

(१) पर का उपचार आता हैइसलिए उपचरित कहा। राग पर, परका उपचार आता है इसलिए उपचरित कहा जाता है। (२) अपने में होता है (राग अपनी पर्याय में होता है) इसलिए सदभूत कहा (३) भेद पड़ता है इसलिए व्यवहार कहा (४) श्रुतज्ञान का अंश है इसलिए नय कहा।

प्र० १९४—अनुपचरित असदभूत व्यवहारनय का पृथक-पृथक अर्थ करो ?

उ०–(१) पर का उपचार नहीं आता है इसलिए अनुप चरित कहा। (२) अपना नहीं है इसलिए असद्भत कहा (३) भेद पड़ता है इसलिए व्यवहारनय कहा (४) श्रुतज्ञान का अंश है इसलिए नय कहा।

प्र० १९५—मिथ्यादृष्टि के अबुद्धि पूर्वक राग को बुद्धि पूर्वक और सम्यग्दृष्टि के बुद्धि पूर्वक राग को अबुद्धिपूर्वक क्यों कहते हैं ?

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

उ०—श्रद्धा की अपेक्षा से सम्यग्दृष्टि की राग सहित अवस्था भी अबुद्धिपूर्वक में गिनी जाती है क्योंकि सम्यग्दृष्टि को राग का स्वामीपना नही है और मिथ्यादृष्टि का राग चाहे वह अबुद्धिपूर्वक हो वह सब बुद्धिपूर्वक ही गिना जाता है क्योंकि उसके राग का स्वामीपना है।

प्र० १९६—अनुमान किसे कहते है ?

उ०—साधन से साध्य के ज्ञान को अनुमान कहते हैं। जैसे (१) बम्बई के समुद्र का एक किनारा देखने से, दूसरे का निर्णय होना। (२) समोशरण से तीर्थंकर भगवान का निर्णय करना (३) प्रशम, संवेग, अनुकम्पा और आस्तिक्य सहित सच्चे देव, गुरु, शास्त्र की यथार्थ श्रद्धा देखकर सम्यग्दृष्टि का निर्णय करना। (४) सम्यग्दर्शन ज्ञान पूर्वक १२ अणुव्रतादि देखकर श्रावक पने का निर्णय करना। (५) शुद्धोपयोग पूर्वक २८ मूलगुण देखकर भावलिंगी मुनि का निर्णय करना। (६) स्पर्श देखने से पुद्गल का निर्णय करना। (७) गतिहेतुत्व से धर्म द्रव्य का निर्णय करना। यह सच्चा अनुमान ज्ञान है।

प्र० १९७—निक्षेप किसे कहते है और निक्षेप से क्या तात्पर्य है ?

उ०—प्रमाण और नयके अनुसार प्रचलित लोक व्यवहार को निक्षेप कहते है। (१) नाम निक्षेप=ज्ञेय का नाम। (२) स्थापना निक्षेप=ज्ञेय का आकार। (३) द्रव्य निक्षेप=ज्ञेय की लायकात। (४) भाव निक्षेप=ज्ञेय की प्रगटता।

प्र० १९८—रत्न प्रगट करने की विधि क्या है ?

उ०—आत्मा को प्रथम द्रव्यार्थिक और पर्यायार्थिक नय द्वारा यथार्थतया जानकर, पर्याय पर से लक्ष्य हटाकर, अपने त्रिकाली सामान्य चैतन्य स्वभाव जो शुद्ध द्रव्यार्थिक नय का विषय है—उसकी

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

ओर दृष्टि करने से और उपयोग को उसमें लीन करने से शुद्धता और निश्चय रत्नत्रय प्रगट होता है।

प्र० १९९—सम्यग्दर्शन होने पर केवलज्ञान कैसे प्रगट होता है ?

उ०—साधक जीव प्रारम्भ से अन्त तक निश्चय की मुख्यता रखकर, व्यवहार को गौण ही करता जाता है, इसलिए साधक को साधक दशा में निश्चय की मुख्यता के बल से शुद्धता की वृद्धि ही होती जाती हैं और अशुद्धता हटती जाती है। इस तरह निश्चय की मुख्यता के बल से ही पूर्ण केवलज्ञान प्रगट होता है।

प्र० २००—समयसार गाथा ४१३ में व्यवहार विमूढ़ किसे बताया है ?

उ०—व्यवहार करते-करते या उसके अवलम्बन से निश्चय प्रगट हो जावेगा, ऐसी जिसकी मान्यता है, उसको व्यवहार विमूढ़ कहा है।

प्र० २०१— आत्मा की क्रिया का स्पष्टीकरण करो ?

उ०—आत्मा पर्याय में मात्र तीन भाव कर सकता है। (१) अशुभ भाव; (२) शुभ भाव, (३) शुद्ध भाव।

(१) मिथ्यात्व हिंसादि भाव अशुभ भाव है और पाप तत्त्व है।

(२) दया-दया-पूजादि का भाव शुभभाव हैं और पुण्य तत्त्व है।

(३) वीतरागता आत्मा का शुद्ध भाव है। वही सम्यग्दर्शन-ज्ञान चारित्र रूप है, धर्म रूप है। इसका फल पूर्ण अतीन्द्रिय सुख रूप मोक्ष है।

मिथ्यादृष्टि की मर्यादा मात्र अशुद्ध भाव तक ही है। साधक ज्ञानी को पर्याय में अल्प शुभाशुभ भाव होने पर भी वह उनका स्वामी नही बनता है, अतः उनको ज्ञान चेतना है अतः ज्ञानी को

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

मर्यादा शुद्ध भाव तक है। द्रव्यकर्म-नोकर्म आदि में ज्ञानी या अज्ञानी किसी भी जीव का हस्तक्षेप नहीं हैं। इसलिए हे भगवान आत्मा ! तू अपने परम पारिणामिक भाव का आश्रय लेकर, धर्म की प्राप्ति कर, यह जिन, जिनवर और जिनवर वृषभों का आदेश है।

प्र०—जीव संसार में परिभ्रमण क्यों करता है ऐसा कहीं ब्रह्म विलास में बताया है ?

उ०—जैसे कोऊ स्वान परयो कांच के महल बीच,
ठौर ठौर स्वान देख भूंस भूंस मर्‌यो है।
बानर ज्यों मूठी बांध पर्‌यो है पराये वश,
कुए में निहारि सिंह आप कूद पर्‌यो है॥
फटिक की शिला में विलोक गज जाय अर्‌यो,
नलिनी के सुवटा को कौने धों पकर्‌यो है॥
तैसे ही अनादि को अज्ञान भाव मान हंस,
अपनो स्वभाव भूलि जगत में फिर्‌यो है॥
द्वै द्वै लोचन सबधरै, मणि नहिं मोल कराहिं।
सम्यक्‌दृष्टि जोंहरी, विरले इहि जग माहिं॥

प्र० १—जिन शासन क्या है ?

उ०—(१) जो यह अबद्धस्पृष्ट,, अनन्य, नियत, अविशेष और असंयुक्त ऐसे पाँच भाव स्वरूप अर्थात् एक स्वरूप आत्मा की अनुभूति है। वह निश्चय से समस्त जिन शासन कीं अनुभूति है।

[समयसार गा० १५]

(२) पदार्थों का उत्पाद-व्यय-ध्रौव्य स्वभाव भलीभाँति पहिचान ले तो भेद ज्ञान होकर स्व द्रव्य के ही आश्रय से निर्मल पर्याय का उत्पाद और मलिनता का व्यय उसका नाम जैन शासन है।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

[तत्वार्थ सूत्र पाँचवा अध्याय सूत्र २९, ३० का मर्म]

(३) मोक्ष की प्राप्ति कराने वाला जिनधर्म ही है वह ही जिन शासन है। [भाव पाहुड गा० ८२]

(४) (अ) जो प्राणियों को पंच परावर्तन रूप संसार के दुःखतैं निकाल उत्तम सुख में पहुँचावें वह जिन शासन है। वह जिन शासन आत्मा का धर्म है। (ब) धर्म के ईश्वर भगवान तीर्थंकर परमदेव सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र को जिन शासन कहा है।

(५) आत्मा रागादिक समस्त दोषों से रहित होकर आत्मा ही में रत्त हो जावे वह जिनशासान है। [भावपाहुड श्लोक ८५]

(७) मोहक्षोभ रहित जो आत्मा का परिणाम वह जैन शासन है। [प्रवचनसार गा० ७]

वास्तव में अपनी आत्मा का अनुभव होने पर जैन शासन की शुरूआत वृद्धि और पूर्णता होती है।

प्र० १०—अजैन शासन क्या है ?

उ०—(१) द्रव्यकर्म, नोकर्म और भावकर्म एकत्व बुद्धि वह अजैन शासन हैं। [समयसार गा० १९]

(२) सर्वज्ञ देव ने अज्ञानी के व्रत्तपादि को बालतप तथा बालव्रत को अजैन शासन कहा है। [समयसार गा० १५२]

(३) परम पदार्थ रूप ज्ञान स्वरूप आत्मा का अनुभव नहीं है और व्रतादि में रत हैं वह जैन शासन नहीं है। [समयसार गा० १५३]

(३) शुभभावों से धर्म मानने वाले जीव नपुसंक जैन शासन से बाहर है। [समयसार गा. १५४]

(४) त्रिकाली आत्मा को छोड़कर व्रत नियमादि में प्रवर्तते हैं उनको कभी जैन शासन की प्राप्ति नहीं है। [समयसार गा. १५६]

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(५) आत्मा रागादि के साथ जो ऐक्य को प्राप्त होता है। वह अजैन शासन है। [कलश १६४]

(६) जो पर को मारने जिलाने का, सुखी-दुखी करने का अभिप्राय रखते हैं। वे अपने स्वरूप से च्युत होते हुए मोही, रागी-द्वेषी होकर अपना घात करते हैं वह जैन शासन से बाहर है। [कलश १६९]

(७) जिनेद्र देव के द्वारा व्रत, समिति, गुप्ती, शील तप करता हुआ भी जैन शासन से बाहर है। [समयसार गा. २७३]

(८) जो जीव शास्त्र पढ़ता हैं परन्तु आत्मा ज्ञान स्वभावी करने धरने की खोटी मान्यता से रहित है ऐसा अनुभव नहीं करता वह जैन शासन नहीं है। [समयसार गा. २७४]

तात्पर्य यह है कि जो जीव रूपी कार्यों में विकारी भावों में अपने पने की बुद्धि रखते हैं वह जैन शासन से बाहर चारों गतियों के पात्र है।

प्र०—ज्ञानियों के वचनामृत क्या क्या हैं ?

उ०—(१) रे जीव ! तीन लोक में सबसे उत्तम महिमावंत अपना आत्मा है उसको तू उपादेय जान। वही महा सुन्दर सुख रूप है, जगत् में सर्वोत्कृष्ट ऐसे आत्मा को तू स्वानुभव गम्य कर। तेरा आत्मा ही तुझे आनन्द रूप है, अन्य कोई वस्तु तुझे आनन्द रूप नहीं है। आत्मा के आनन्द का अनुभव जिसने किया है ऐसे धर्मात्मा का चित्त अन्य कहीं भी नही लगता। बार-बार आत्मा की ओर ही झुकता है। आत्मा का अस्तित्व जिसमें नहीं, आत्मा का जीवन जिसमें नहीं, ऐसे परद्रव्यों में धर्मी का चित्त कैसे लगे ? आनन्द का समुद्र जहाँ देखा है वहाँ ही उनका चित्त लगा है।

(२) स्वानुभव यह मूल चीज है। वस्तु स्वरूप का यथार्थ निर्णय करके, मति-श्रुत ज्ञान को अन्तरमुख करके स्वद्रव्य में परिणाम को एकाग्र करने पर सम्यग्दर्शन व स्वानुभव होता है। जब ऐसा अनुभव

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

करे तब ही मोह की गाँठ टूटती है और तब ही जीव भगवान के मार्ग में आता है।

(३) भाई ! यह तो सर्वज्ञ का निर्ग्रंथ मार्ग है। यदि तूने स्वानुभव के द्वारा मिथ्यात्व की ग्रन्थि नहीं तोड़ी तो निर्ग्रन्थ मार्ग मैं तू कैसे आया ? जन्म-मरण की गाँठ को यदि न तोड़ दी तो निर्ग्रन्थ के मार्ग में जन्म लेकर के तूने क्या किया ? भाई ! ऐसा सुअवसर तुझे मिला तो अब ऐसा उद्यम कर जिससे यह जन्म-मरण की गाँठ टूटे और अल्प-काल में मुक्ति हो जाय।

(४) एक जीव बहुत शास्त्र पढ़ा हो और बड़ा त्यागी होकर हजारों जीवों में पूजा जाता हो परन्तु यदि शुद्धात्मा के श्रद्धान रूप निश्चय सम्यक्त्व उसे न हो तो सभी जानपना मिथ्या है। दूसरा जीव छोटा सा मेंढक, मछली, सर्प, सिंह या बालक दशा में हो, शास्त्र का शब्द पढ़ने को भी नहीं आता हो किन्तु यदि शुद्धात्मा के श्रद्धान रूप निश्चय सम्यक्त्व से सहित है उसका सभी ज्ञान सम्यक है और वह मोक्ष के पंथ में है।

(५) एक क्षण का स्वानुभव हजारों वर्षों के शास्त्र-पठन से बढ़ जाता है जिसको भव समुद्र से तिरना हो उसे स्वानुभव की विद्या सीखने योग्य है।

(६) एक क्षण भर के स्वानुभाव से ज्ञानी के जो कर्म टूटते हैं अज्ञानी के लाख उपाय करने पर भी इतने कर्म नहीं टूटते। सम्यक्त्व की व स्वानुभव की ऐसी कोई अचित्य महिमा है, यह समझ कर रे जीव! इसकी आराधना में तू तत्पर हो।

(७) अहो ! यह आत्मा हित के लिए अत्यन्त प्रयोजनभूत स्वानुभव की उत्तम बात है। स्वानुभव की इतनी सरस वार्ता भी महान भाग्य से सुनने को मिलती है तब उस अनुभव दशा कीं तो क्या बात।

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

(८) मोक्ष-मार्ग का उद्घाटन निर्विकल्प-स्वानुभव से होता है। स्वानुभूति पूर्वक होने वाला सम्यग्दर्शन ही मोक्ष का दरवाजा है। इसके द्वारा ही मोक्ष मार्ग में प्रवेश होता है इसके लिए उद्यम करना हरेक मुमुक्षु का पहला काम है और हरेक मुमुक्षु यह कर सकता है। हे जीव ! एक बार आत्मा में स्वानुभूति की लगन लगा दे।

(९) स्व सत्ता के अवलम्वन से ज्ञानी निजात्मा को अनुभवते हैं। अहो ! ऐसे स्वानुभव ज्ञान से मोक्ष मार्ग के साधने वाले ज्ञानियों की महिमा की क्या बात ? इनकी दशा को पहिचानने वाले जीव भी निहाल ही हो गये हैं।

(१०) पर में साधने से सम्यग्दर्शन नहीं मिलसकता।

(११) देहादि की क्रिया में या शुभ राग में भी सम्यग्दर्शन नहीं मिल सकता।

भेद विज्ञान जग्यो जिनके घट, शीतल चित्त भयो जिम चन्दन।
केलि करें शिव मारग में, जगमाँहि जिनेश्वर के लघु नन्दन॥
सत्य स्वरूप सदा जिनके, प्रगटयो अवदात मिथ्यात्व निकन्दन।
शान्त दसा तिनकी पहिचान करें कर जोरि बनारसि बन्दन॥

जय महावीर ! जय महावीर !!

॥ सम्पूर्णम् ॥

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi

CC0.In Public Domain. Digitized by Sarayu Trust/eGangotri

श्री वीतराग विज्ञान साहित्य प्रकाशन समिति

उत्तरप्रदेशीय मुमुक्षु मंडल के द्वारा प्रकाशित

पुस्तकों का सूची-पत्र

१	जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला प्रथम भाग	१-६०
२	जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला द्वितीय भाग	१-४०
३	जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला तीसरा भाग	१-६०
४	जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला चौथा भाग	१-४०
५	जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला पाँचवां भाग	२-५०
६	जैन सिद्धान्त प्रवेश रत्नमाला छठा भाग	१-५०
७	लघु दर्शन पूजा तत्त्वचर्चा भजन-संग्रह तथा मुमुक्षुओं के नाम खुलापत्र सहित	०-५०

पात्र जीव नीचे लिखे पतों पर पुस्तकें मंगा सकते हैं।
(डाक व्यय अलग लगेगा)

नेमचन्द्र जैन
जैनबन्धु
पलटनबाजार देहरादून
(यू० पी०)

पदमचन्द्र जैन सर्राफ
चैतन्य विलास ३/२०
महात्मा गांधी रोड
आगरा-२

Ganesh Varni Digambar Jain Institute, Naria, Varanasi